भारतीय चित्रकला में नारी अंकन



डॉ० दिनेश चंद्र गुप्त
(राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित)



धर्मा प्रकाशन

३५५ए/१, सावित्री पार्क
मधवापुर, बैरहना,
इलाहाबाद–२११००३





मूल्य : दो सौ पचास रूपयें

प्रकाशन : धर्मा प्रकाशन
३५५ए/१ सावित्री पार्क
मधवापुर, बैरहना
इलाहाबाद-२११००३
दूरभाष: ६०३६८८

संस्करण : प्रथम, २००३

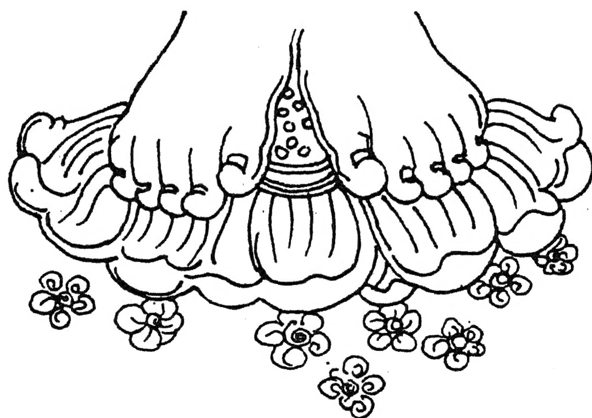
शब्द संयोजक : संध्या डिज़ीटल आर्ट्स
२३४/२९०, मधवापुर, बैरहना
इलाहाबाद-२११००३

मुद्रक : भार्गव प्रेस,
४, बाई का बाग, इलाहाबाद-२११००३

समर्पण

परम पूज्यनीय माता श्री के
श्री चरणों में अपनी यह कृति
समर्पित कर मैं धन्य हुआ।

डॉ० दिनेश चंद्र गुप्त





आर्शीवचन

सत्य, शिव के समन्विता से परम् अलौकिक सौन्दर्य बिन्दु का सृजन ही संसार की परिकल्पना है।

मातृत्व शक्ति उसकी आधार शिला है। सृजन की सारी शक्ति को अपने में केन्द्रित रखने वाली नारी ही अधिष्ठात्री है, धात्री है, धरती और वसुन्धरा है। वही नवांकुर का माध्यम भी, तभी तो वह पूज्य है।

डॉ० दिनेश चन्द्र गुप्त की विलक्षण ग्राह्यता ही इस ग्रन्थ में परिलक्षित होती है। निश्चय ही यह पुस्तक अनुशीलन, विशेष कर उन शोधकर्त्ताओं एवं कला प्रेमियों हेतु, जिनमें कुछ जिज्ञासा है, लालसा है, अवश्य मार्गदर्शन मिलेगा। रत्न तो रत्न ही है उसे चाहे जिस संज्ञा से विभुषित कर दें। पारखी एवं गुणज्ञ उसका मूल्यांकन कर ही लेते हैं।

मुझे आशा और विश्वास है कि इस ग्रन्थ से प्रत्येक कला एवं कला प्रियजनों तथा खोजियों को सही दिशा अवश्य मिलेगी।

शुभकामनाएं एवं आर्शीवाद !

S. N. Saxena

डॉ० सुरेश नारायण सक्सेना

मीरपुर कैन्ट, कानपुर।

निवेदन

चित्रकला सम्बन्धी ग्रन्थ आंगल भाषा में अनेकानेक रचे गये किन्तु मातृभाषा हिन्दी में बहुमूल्य ग्रन्थों का अभाव अवश्य ही खटकता है। इस प्रेरणा से मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना हिन्दी माध्यम में ही करने का प्रयास किया है और हिन्दी की अनवरत प्रवाहित होने वाली धारा में एक अंश सम्मिलित करने का प्रयत्न भी।

प्रस्तुत ग्रन्थ भारतीय चित्रकला में नारी के विविध रूपों पर प्रकाश डालता है। मानव में आदि युग से ही चित्रांकन की प्रवृत्ति विद्यमान थी। इसका मूल कारण नारी की मानव जीवन में प्रधानता ही है। ईश्वर ने नारी को सृजन की क्षमता का वरदान देकर उसे परमावश्यक निरूपित कर दिया है। जैसे सृष्टि के लिए परब्रह्म परमेश्वर का होना आवश्यक है। जीवन के लिए नारी का होना भी उतना ही आवश्यक है। अस्तु चित्रकला में भी नारी की प्रधानता स्वीकार की गयी है। क्योंकि कला का प्राण ही जीवन से सम्बद्ध है और नारी, जीवन की प्राण शक्ति है। नारी एक प्रेरक बिन्दु रही है जिसके विभिन्न रूपों का अंकन सृजन काल से वर्तमान युग तक होता आ रहा है। हाँ कालगत भिन्नता अवश्य है। वैदिक युग की नारी श्रद्धा की पात्र है तथा वीर गाथा काल में नारी का दूसरा ही रूप है। सल्तनत काल में नारी पर्दो में अपना सौन्दर्य छिपाये चित्रित है।

इस नव विकसित कलाशैली के चित्रकारों ने मुगलकालीन चित्रविधा के अवनति काल में अपने को निराश्रित पाकर

निवेदन

चित्रकला सम्बन्धी ग्रन्थ आंगल भाषा में अनेकानेक रचे गये किन्तु मातृभाषा हिन्दी में बहुमूल्य ग्रन्थों का अभाव अवश्य ही खटकता है। इस प्रेरणा से मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना हिन्दी माध्यम में ही करने का प्रयास किया है और हिन्दी की अनवरत प्रवाहित होने वाली धारा में एक अंश सम्मिलित करने का प्रयत्न भी।

प्रस्तुत ग्रन्थ भारतीय चित्रकला में नारी के विविध रूपों पर प्रकाश डालता है। मानव में आदि युग से ही चित्रांकन की प्रवृत्ति विद्यमान थी। इसका मूल कारण नारी की मानव जीवन में प्रधानता ही है। ईश्वर ने नारी को सृजन की क्षमता का वरदान देकर उसे परमावश्यक निरूपित कर दिया है। जैसे सृष्टि के लिए परब्रह्म परमेश्वर का होना आवश्यक है। जीवन के लिए नारी का होना भी उतना ही आवश्यक है। अस्तु चित्रकला में भी नारी की प्रधानता स्वीकार की गयी है। क्योंकि कला का प्राण ही जीवन से सम्बद्ध है और नारी, जीवन की प्राण शक्ति है। नारी एक प्रेरक बिन्दु रही है जिसके विभिन्न रूपों का अंकन सृजन काल से वर्तमान युग तक होता आ रहा है। हाँ कालगत भिन्नता अवश्य है। वैदिक युग की नारी श्रद्धा की पात्र है तथा वीर गाथा काल में नारी का दूसरा ही रूप है। सल्तनत काल में नारी पर्दो में अपना सौन्दर्य छिपाये चित्रित है।

इस नव विकसित कलाशैली के चित्रकारों ने मुगलकालीन चित्रविधा के अवनति काल में अपने को निराश्रित पाकर

पहाड़ों में देशी रियासतों की संरक्षता में कार्य करते हुए जिन विभिन्न चित्रशैलियों में, जो पूर्णतया हिन्दू चित्रकला है, जिनमें भारतीय नारी के नाना रूप तरंगित होते रहें है आज भी वे कृतियां मध्यकालीन चित्रविधा के साथ ही साथ भारतीय चित्रकला की बहुमूल्य धरोहर बनी हुई है।

कहना न होगा कि इतने विस्तृत क्षेत्र की परिकल्पना बिना प्रेरणा व अध्ययन के की गयी हो सम्भव नहीं है। अनेक चित्रविदों एवं साहित्यिक सौन्दर्य अभिव्यक्ति ने ही इस ग्रन्थ की रचना के लिए प्रेरित किया है। कला गुरू अवनिद्र नाथ टैगोर, यामिनी राय, सुधीर खास्तगीर, श्रीधर महापात्र एवं गुरू गरिमामण्डित डॉ० सुरेश नारायण सक्सेना की प्रेरणा ने ही इस ग्रन्थ को सजीवता प्रदान की है।

मैं प्रयाग संग्रहालय के भूतपूर्व निदेशक स्व० डॉ० सतीश चन्द्र काला एवं निदेशक श्री ऋषिराज त्रिपाठी का भी अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने मुझे अपने यहाँ संग्रहीत जैन ग्रन्थों के छायाचित्र सुलभ कराने में पूर्ण सहयोग दिया है। साथ ही सभी सुहृदजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरे आत्मबल को प्रोत्साहित किया और जिनकी प्रेरणा से यह ग्रन्थ आप तक पहुँच सका है।

आपका

२४ जुलाई, २००२

डॉ० दिनेश चन्द्र गुप्त
३५५ए/१, सावित्री पार्क,
मधवापुर, इलाहाबाद-२११००३

अनुक्रमणिका

भूमिका

नारी का इतिहास सृष्टि के आरम्भ से ही अस्तित्वमान है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आत्मा ही थी, जिसे पुरूष की संज्ञा प्रदत्त थी। वह पुरूष रूपा आत्मा अकेली रमण नहीं कर सकती थी अतः उसने सहयोगी एवं साथी की इच्छा की और वहीं से पुरूष दो भागों में विभाजित हो गया, नर और नारी के रूप में। यही नारी शक्ति अतीत से ही मानव की प्रेरणा बिन्दु रही। जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर है। आदि—काल से सभ्य देशों में यही प्रयत्न होता चला आ रहा है कि नर और नारी के नैसर्गिक स्वरूप में विकृति न आने पाये। नारी पुरूषत्व का आधार है, बिना उसके मानव अपने जीवन में एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव करता है। संसार के साहित्य एवं चित्रविद् जिस सीमा तक नारी चित्रण में सफल हो सके हैं उतनी ही मात्रा में उनका देश और साहित्य उन्नत तथा प्रगतिशील समझा गया है। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत इस दिशा में अग्रगण्य है। निसंदेह इस पावन भूमि के ऋषि मुनियों, दार्शनिकों तथा महाकवियों ने नारी सौन्दर्य में पवित्रतम् ब्रह्मानुभूति की झांकी देखी, और उस अलौकिक छवि को महामाया, आदिशक्ति, सीता, राधा; भगवती आदि नामों में उतार लिया। जिस तरह आज इक्कीसवीं शताब्दी में उसे अपनी महानतम शक्ति का आभास है, उसी तरह उसे वैदिक युग में अन्धकार और प्रकाश का पूर्ण ज्ञान था। उस समय विदुषी मैत्रेयी ने परम पुरूष से प्रार्थना की थी— ''तमसो मा ज्योर्तिगमय।'' वैदिक काल की बहुत सी स्त्रियों को मंत्र दृष्टा ऋषि की उपाधि से विभूषित किया गया था।

आदि युग से ही नारी के दो रूप स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक शुद्ध अलौकिक दूसरा भौतिकतामूलक तथा लौकिक। एक तो हमें स्वर्ग की और ले जाता है। दूसरा नरक का सीधा मार्ग प्रशस्त करता है। आध्यात्मिक तत्वज्ञानी महात्मा संत कबीर ने भी लिखा है—

''माया है दुई भांति की देखी ठोक बजाय,
एक मिलावे नाम ते, एक नरक ले जाय।।

बौद्ध युग में भी नारी का आध्यात्मिक जागरण शान्ति और जनकल्याण के वातावरण में तथागत के सत्य और अहिंसा का साथ देता रहा था। मठों संघारामों और विहारों में नारी ने भिक्षुणी का परिधान धारण कर अपनी चिन्तनशक्ति से जागरूकता का काया कल्प किया। यशोधरा, गौतमी, संघमित्रा आदि ने भारतीय संस्कृति के सृजन में योग दिया। गुप्त राजवशों के समय में शकुन्तला के अलौकिकता की रचना करके महाकवि ने नारी के पावन सौन्दर्य का मनोरम उल्लेख प्रस्तुत किया है।

भारतीय कलाओं की आदि भूमि सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है। भारतीय साहित्य कभी भी शिवेत्तर नहीं बन सका। यही कारण है कि जीवन के प्रत्येक स्तर में भारतियों ने दिव्यता का दर्शन किया है। उनके वेद दर्शन, रामायण, महाभारत, भागवत, सबके सब दिव्य हैं। इस दिव्यता की पृष्टिभूमि में वह शक्ति 'नारी' ही है। वैदिक कालीन साहित्य ने पुण्य सलिला सरस्वती के तट पर आर्य दम्पत्ति के अधरों पर स्पन्दित स्वाहा, स्वाहा के मधुर संगीत के ब्रह्म चिन्तन में स्वर्णयुग की अलौकिक रश्मि देखी। भारतीय इतिहासकारों ने इस युग को अत्यन्त समृद्ध और वैभवशाली बतलाया है। नारी शाश्वत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है और उसका प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाला रूप ही कला का प्रेरक बिन्दु है।

भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सौन्दर्य उपासना की गयी है। असुन्दर के प्रति विमुखता और सौन्दर्य का सृजन तथा उसका सम्भोग भारतीय सभ्यता का आधार रहा है। वैदिक कालीन सभ्यता से महाकाव्य काल तक का इतिहास सृजनात्मक प्रवृत्तियों का प्रतिविम्ब प्रस्तुत करता रहा है। चाहे साहित्य हो या चित्र अथवा शिल्प सभी में सृजनात्मक स्वरूप का ही दर्शन होता है। उन सृजित विषयों में सौंदर्य, राग रस सब कुछ विद्यमान है। सर्वाग

स्वरूप को अवलोकित कर हम यही कह सकते हैं कि भारतीय अतीत का इतिहास सौन्दर्ययुक्त, कलामय जीवन का प्रतिरूप है। चित्रकला की प्राचीनता का प्रमाण तो हमारे धर्मग्रन्थ ही हैं। भारतीय चित्रकला की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, चित्रकला सम्बन्धी उल्लेख उपनिषदों के **'कामसूत्र'** में चौंसठ प्रमुख कलाओं का उल्लेख आता है। उसमें भी चित्रकला की प्रधानता वर्णित है। शचीरानी गुर्टू ने लिखा है कि— विष्णु धर्मोत्तर पुराण में एक उक्ति है— **''कलानापं प्रवरं चित्रम्''** अथार्त कलाओं में चित्रकला ही सर्वश्रेष्ठ है। जिस खण्ड में चित्रों का उल्लेख मिलता है उसका नाम ही चित्रसूत्रम है।

भारतीय सभ्यता में कला का विस्तृत अर्थ उजागर होता हैं कला को आनन्द की सीमा तक ही नहीं बल्कि परमानन्द प्राप्ति का साधन माना गया है। भारतीय कलाविदों ने सदा से ही कला में निहित तत्व का ज्ञानार्जन किया है तभी तो यह श्रेष्टता विद्यमान है। कलाकार की कृतियों में साहित्यिक, मानसिक व बौद्धिक विकास का स्वरूप स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य परमतत्व की प्राप्ति है यही कारण है कि कला इस लक्ष्य प्राप्ति का माध्यम बनी और हमारे देश के महान कला विभूतियों ने, विद्वानों नें, कला की सार्थकता विश्रान्ति भोग में नहीं बल्कि परमलक्ष्य यानी परमतत्व को प्राप्त करने में माना है:—

''विश्रान्तिर्यस्त सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे, ययात्मा सा परा कला।

कला की प्राचीनता स्पष्ट है। ऋग्वेद में हमें कला के प्रवाह का ज्ञान मिलता है। नाना कलाओं के उद्धरण वेदों में प्राप्य हैं। चित्रकला का उद्भव यज्ञ वेदिकाओं की रेखाकृतियों से हुआ हैं। वांगमय के वर्णलिपि और चित्रलिपि के स्वरूप का ज्ञान, हमें प्रमाण के रूप में मिलते हैं। इसी प्रकार चित्रकला का भी उद्भव हुआ और भविष्य में यही कला जन—जीवन की प्राण बन गयी। कला का अर्थ बड़ा

व्यापक है। प्रसिद्ध कला समीक्षक डॉ० कुमार विमल ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक 'कला विवेचन' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारों के दृष्टान्तों के आधार पर कला को 'महामाया का चिन्मय विलास' कहा है। प्राचीन कलागत दृष्टिकोण में तीन बातें कही गयी प्रमुख हैं। १—कला के आवरण में तत्ववाद, २—कला में कल्पना का तत्व, ३—कला की ऐतिहासिक परम्परा। उन्होंने कला को महाशिव की आदि शक्ति से सम्बन्ध माना है। 'ललितास्तवराज' से पता चलता है कि जब शिव को लीला के प्रयोजन की अनुभूति होती है, तब महाशक्ति रूपा महामाया जगत् की सृष्टि करती हैं। अत: शिव की लीला सहयोगिनी होने के कारण महामाया को 'ललिता' कहा गया है और यह माना गया है कि इन्हीं 'ललिता' के लालित्य से ललित कलाओं की सृष्टि हुयी है।

मूल रूपेण कला सौन्दर्यानुभूति से परमानन्द की प्राप्ति होती है। फिर सौन्दर्य के सृजनात्मक माध्यम के रूप में नारी ही हमारे समक्ष आती है। निस्सन्देह सृजन की अनोखी क्षमता वाली नारी मानव के लिए प्रेरणास्रोत बनी और चित्रविदों ने नारी को सौन्दर्य का प्रतिरूप माना तथा उसी से प्रेरित होकर अपनी कृतियों को जन्म दिया। ऐसा लगता है जैसे कलाकार और उनकी कृतियों के सृजन में नारी ही पर्याप्त प्रेरणा स्रोतस्विनी रही है। तभी तो भारतीय सभ्यता और संस्कृति में इन कलाओं को और नारी को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। विशेषकर आज ही नहीं प्राचीन युग से ही चित्रकला ने हमारे जीवन को संस्कारमय रूप से संवारने में जितना योग दिया अन्य ने नहीं। चूंकि भारतीय जन—जीवन में पुरूष—नारी सभी कलामय वातावरण से सम्मोहित थे फिर धर्मशास्त्र वेद वेदांग ही कैसे अछूते रहते ? कालान्तर में यही चित्रकला हमारे संस्कृति का आधार बन गयी चाहे वह धर्म से युक्त हो चाहे किसी कर्म से अथवा संस्कार से।

प्रत्येक देश की कला में वहां की सभ्यता व संस्कृति स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है क्योंकि कला वह माध्यम है जिसके द्वारा वहां

दैनिक कार्य सभी दर्पण की भांति कला के द्वारा प्रतिविम्बित हो जाता है। नारी का सहयोग स्पष्ट ही उजागर होता है। वास्तव में कला काम की प्रेरणा शक्ति है। कला प्रेरक है। सत्य तो यह है कि सृष्टि की जीवन—क्रिया ही काम के रूप में प्रगट होती है।

धार्मिक ग्रन्थों से इस बात का पता चलता है कि ब्रह्मा भी जब सृष्टि की संरचना करने में असफल हो गये तब उन्होंने सहयोग के लिए शक्ति की आराधना की। तब शक्ति ने बिन्दु रूप धारण किया। तदन्तर शिव तेजस्वरूप होकर उसमें प्रवेश कर गये। इन दो वस्तुओं के संयोग से नादतत्व (स्त्रीत्व) का जन्म हुआ। इसी नाद और बिन्दू के संयोगिक अवस्था को हम अर्धनारीश्वर कहते हैं। यही संयुक्त बिन्दु पुरूष और स्त्री के आकर्षण का कारण बना। इसीलिए इसे काम की संज्ञा दी गई। हमारा धर्मशास्त्र इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि उपर्युक्त दो विन्दुओं के अतिरिक्त श्वेत बिन्दु (पुरूष) और रक्त बिन्दु (स्त्री) दो अन्य विन्दु होते हैं। ये दोनों बिन्दु मिलकर ही कला का सृजन करते हैं। तभी तो कला के निर्माण में स्त्री की प्रमुख भूमिका है। भारतीय संस्कृति की पोषिका भारतीय नारी ही है, जिसके मनमोहक सौन्दर्य में नाना गुण अन्तर्निहित होते हैं। नाना गुणों के कारण ही नारी को अनेक संज्ञा से विभूषित किया गया है और उनके रूपों का, उन रूपों के भिन्न—भिन्न मुद्राओं का चित्रांकन ही भारतीय चित्रकला की धरोहर हैं। विशेषकर उत्तर—मध्ययुगीन चित्रकला में चित्रों का सर्वथा अभाव तो है ही किन्तु जो लघु चित्रकारी, पुस्तकों में देखने को सुलभ हैं— वे भी नारी के नाना अभिधेयों को उजागर करने में पूर्ण समर्थ हैं। समय—समय पर चित्रांकित जैन गाथाओं में भी नारी अंकन देखने को मिलता है यही नहीं कहीं कहीं भित्ति पट्टों की चित्रकारी में नाना शैलियों में नारी अपना प्रतिनिधित्व करती दिखालायी गयी है। जिसने ब्राह्मण की अष्ठवर्षीय कन्या का वस्त्र, अलंकरण एवं चन्दन से अर्चना कर लिया उसके द्वारा भगवती प्रकृति स्वयं पूजित हो गयीं, ऐसा माना जाता है। सभी प्रकार की

की सभ्यता, वस्त्र विन्यास, धनधान्य, वैभव, ऐश्वर्य, रहन—सहन, सामाजिक स्तर सब कुछ ज्ञात किया जा सकता है। धार्मिक जीवन के संस्कार, दैनिक कर्म, संस्कृति का वास्तविक स्वरूप सब कुछ कला के द्वारा दृष्टिगोचर हो जाता है। नारी का हमसें विशेष साहचर्य है—इस सत्य से हम विमुख नहीं हो सकते। वास्तव में काम का आधार कला भी एक कला ही है, काम के लिए कला प्रेरक है। वास्तव में सृष्टि की जनन क्रिया ही काम कला है।

सृष्टि की आधार शिला नारी—

नारी इस सृष्टि जगत की आधार शिला है। वह जीवन का परम—प्रधान अंग है। ईश्वर ने नारी को सृजन शक्ति का वरदान देकर समाज के लिए उसे अति आवश्यक बना दिया है। उतना आवश्यक जितना सृष्टि के लिए वह स्वयं है। तभी तो भारतीय मनीषियों औरं कलाविदों ने नारी को संसार की उत्पत्ति का आधार तत्व माना है। देवीभागवत की दृष्टि में स्वयं भगवान विष्णु जो संसार के जन्म व पालन कर्ता हैं स्वयं अपने मुखारबिन्दु से उच्चरित करते हैं ''ब्रह्मा हमीश्वरवर: कितते प्रभावतं'' अर्थात तेरी ही शक्ति के प्रभाव से मैं जगत का ईश्वर हूं। इस प्रकार सभी दृष्टिकोंण से सृष्टि का मूलाधार नारी शक्ति को ही माना गया है—

एषा भगवती देवी सर्वेषा कारणं हिन:।
महाविद्या महामाया पूर्ण प्रकृतिर व्यथा।।

इस प्रकार नारी संसार की जननी है यह बात स्वत: सिद्ध हो जाती है। नारी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अपनी पृथकता सिद्ध करती है। शरीर संरचना के वैज्ञानिक आधार पर नारी का विश्लेषण अलग है ही। प्रत्येक देश की कला में वहां की सभ्यता व संस्कृति स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है क्योंकि कला वह माध्यम है जिसके द्वारा ही वहां के सभ्य जीवन, वहां का रहन—सहन, मानवीय स्वरूप, वैभव, एश्वर्य, श्रृंगारसज्जा, वस्त्राभरण, सामाजिक जीवन सभी कुछ जाना जा सकता है। वहां की संस्कृति, संस्कारमय जीवन,

स्त्रियां चाहे वह उत्तम हों, मध्यम हों या निकृष्ट प्राय: हों भगवती प्रकृति की अंग हैं। जो श्रेष्ठ आचारों से युक्त हों उन्हें भगवती का सर्वांशं मानना चाहिए। इन्हीं नारियों को उत्तम कोटि में रक्खा गया है। जिन नारियों को मात्र भोग लिप्त जीवन ही पसन्द है उन्हें राक्षस अंश से उद्‌भूत माना गया है। जो मध्यम श्रेणी में आती हैं, वे सुख भोगने के लिए विवश होकर सदा अपने कार्य में लगी रहती हैं। प्रकृति देवी के तामस स्वरूप से प्रकट नारियां अधम कहलाती हैं। ऐसी स्त्रियां कुल—विहीन, कुरूपा, धूर्त, स्वेच्छा—चारिणी और कलहप्रिय होती हैं, जिन्हें हम कुल्टा की संज्ञा देते हैं, किन्तु भारत पूर्ण विश्व में परम पावन देश है। इस भूमण्डल पर अवतरित होकर इस देश में सभी नारियां आदि युग से ही संपूजित हुई हैं।

यही नहीं साक्षात परब्रह्म भी इनके चलाये ही चलते हैं। परब्रह्म ईश्वर भी प्रकृति के सहयोग के बिना शक्ति शून्य हैं सृष्टि के जनक सृष्टि करने में अस्मर्थ हैं जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्ति स्वरूप हैं। परमात्मा में सर्वगुण सन्निवेश कराने वाली शक्तिदेवी, नारी ही तो है, इसके बिना परमात्मा भी प्रकाश विहीन है। इस प्रकार समस्त भारतीय वांगमय नारी के सौन्दर्य एवं कर्म शक्ति से भरा पड़ा है। सच ही भारतीय भूमि में नारी को जो आदर व श्रद्धा भारतीय मनीषियों ने दिया है वह अत्यन्त दुर्लभ है।

कला में नारी का स्थान—

कला शब्द भारतीय संस्कृति में बड़े ही विस्तृत एवं गूढ़तम अर्थो में लिया गया है। यह शब्द साहित्य के साथ ही साथ जनजीवन से सम्बद्ध है। इसकी प्राचीनता यथार्थ रूप में स्वीकृति है। उसमें कोई भेदा विभेद नहीं है। प्राचीन युग में जो कला, तत्ववाद का प्रतीक थी वही आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर कल्पना की वस्तु बन गई। आध्यात्मिक जगत में कला को महामाया शक्ति का तथा चिन्मय आनन्द का स्वरूप मान कर दार्शनिक अर्थो में लिया

जाने लगा। यही नहीं भारतीय संस्कृति में कला का लक्ष्य ही परमानन्द की प्राप्ति कहा गया। सर्वदा से भारतीय कलाविदों के कलाकृतियों का यही आदर्श रहा है। उनके विचार में कला का लक्ष्य परमतत्व की ओर ही होना चाहिए, क्योंकि कला चाहे जिस माध्यम से अभिव्यक्ति हो उसका सीधा सम्बन्ध मानव की आत्मा से है और वह उस परमतत्व द्वारा प्रेरित होता है।

कला और नारी का सम्बन्ध भी अटूट है क्योंकि नारी अतीत से ही जन—मानस का एक प्रधान अंग रही है, जो प्राचीन कलाओं के ।वकास की चरमाभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचते—पहुंचते वह कला की प्रेरणा—स्रोत बन गयी थी, विशेषकर चित्रकला में। ललितकला के नाना रूपों में 'चित्रकला' ही वह विद्या है, जिसमें श्रेष्ठ तत्वों का स्वरूप दृष्टिगत होता है। अन्य कलायें तो गूढ़तम हो सकती हैं पर चित्रकला में रेखाओं की अभिव्यक्ति तो हमारे मानस पटल को स्पर्श करती है। रंग और रेखाओं के माध्यम से भारतीय चित्रकारों ने अपने हृदय के अनिर्वचनीय विचारों को विश्व के समक्ष जिस रूप में प्रकट किया वह आज भी स्मरणीय है। प्राचीन भारतीय चित्रकला हमारे अतीत का दर्पण बनी हुयी है। आदि युगीन वैभव, वस्त्र, विन्यास, भावमयी मुद्रायें सब कुछ तो उन चित्राकृतियों में दृष्टिगत होता है। जन्म् से मृत्यु पर्यन्त हमारा सारा जीवन ही चित्रकला से ओत प्रोत है भारतीय नारी प्रत्येक स्थल पर सौन्दर्य बिन्दु बनी हुई है। गृह, आंगन, वाहय, सर्वत्र उसका स्वरूप देखने को मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि चित्रकला में जीवन की अभिव्यक्ति निहित है। प्राचीन मूल ग्रन्थों में जैसे ज्योतिष शास्त्रों में, अह्विल चन्द्र अलंकार आलेखनों से युक्त है। पक्षी 'सकुन विचार' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में 'पक्षी तथा नारी' आकृतियों का सुन्दर समावेश देखने को प्राप्य है। 'चित्र प्रश्नम्' ग्रन्थ में भी इसी प्रकार की चित्राकृतियां एवं मानवीय चित्रण दृष्टिगोचर होता है। यह ग्रन्थ ताड़पत्रों पर लौह लेखनी से उरेहे गये है जो चित्रों से परिपूर्ण है। यह ग्रन्थ भविष्य फल द्योतक है।

भारतीय चित्रकला का गूढ़तम अध्ययन करने से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन युग में चार प्रकार के चित्रों का सृजन होता था। ये चार प्रकार के चित्र थे, विद्ध—चित्र, अविद्ध—चित्र, रस—चित्र तथा भूमि—चित्र। विद्ध—चित्र का तात्पर्य है यथार्थ चित्रण यानी मूल रूप में चित्रकार उन उपादानों का वैसे ही अंकन करता है जैसा वह अपनी चक्षुओं से अवलोकन करता है। अविद्ध चित्रों का तात्पर्य काल्पनिक चित्रों से था। चित्रविद् किन्हीं भावनाओं, दृश्यों से उत्प्रेरित होकर कल्पना शक्ति द्वारा जिन चित्रों की रचना करता था वे ही चित्र इस कोटि में आते हैं। रस चित्रों का अंकन दर्शक में विभिन्न रसों की निष्पत्ति कराने हेतु किया जाता था। भूमि चित्रों का सम्बन्ध लोक कलाओं जैसे अल्पना, पात्र अलंकरण, माण्डन, गोदना आदि से था। उपनिषद् काल से लेकर मध्य युग तक की चित्रकला एक कड़ियों की भांति जुड़ा हुआ है। उपनिषद् काल से बौद्ध काल तक की चित्रकला में सौन्दर्यात्मक रूप में नारी अंकन प्राप्य है। भारतीय गुहा चित्रों में जो अति प्राचीन है या गुप्तकालीन हैं सर्वत्र नारी की मोहक व आदर्श रूप का चित्रण, उनकी मोहक भंगिमायें दर्शनीय हैं।

भारतीय कला के सृजन में नारी तो प्रेरणा स्रोत रही ही है बल्कि यदि उसे कला के सृजन का आधार कहें तो अतिश्योक्ति नही कही जा सकती। सौन्दर्य की अधिष्ठात्रि देवी नारी कला के सृजन का प्रमुख और महत्वपूर्ण अंग रही है। चित्रविदों ने तो उसके अंग प्रत्यंगों में सौन्दर्य के छलकते बिन्दुओं का अवलोकन कर उन्हें भावपूर्ण रेखाओं में बांध हमेशा के लिए अमरत्व प्रदान कर दिया है। भारतीय जगत की शक्ति रूपा, रौद्र रूपिणी मां दुर्गा को कला और सौन्दर्य से विलग नहीं होने दिया गया है। दुर्गाशप्तशती में दुर्गा की अर्चना करते हुये अभिव्यक्त है—

'कलाकाष्ठादि रूपेण परिणामप्रदायिनी।'

यही नहीं उनके सौन्दर्य का उल्लेख भी अनेकानेक स्थलों पर मोहक वर्णन दर्शनीय है। वास्तव में भारतीय चित्रकला के

'चित्रविदों' ने नारी के सौन्दर्यमयी रूप का हो, चाहे उसे जिस रस की अनुभूति अभिव्यक्ति का एक विशेष माध्यम रही है। सौन्दर्य का प्रस्फुटन उसकी अभिव्यंजना ही कला है। कला में नारी का अंकन क्यों हुआ एक विवेचनात्मक गूढ़ विषय है। इसका सबसे बड़ा कारण आध्यात्मिक है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के उपासकों ने त्रिदेवों की अर्चना तो की है साथ ही पुरूष और प्रकृति के अटूट सम्बन्धों के कारण इन त्रिदेवों के लिए एक—एक नारी शक्ति की कल्पना भी की, जो इस प्रकार प्रकाश में आयी—विष्णु के साथ सुख, समृद्धि और वैभव की देवी लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ विद्या की तथा बुद्धि की देवी सरस्वती तथा शिव के साथ आदि शक्ति पार्वतीकी रचना करके पुरूष और प्रकृति का संयोजन पूर्ण किया गया। भारतीय चित्रकला में नारी को पावन, आदर्श तथा सौन्दर्य की देवी मान कर उसके मनोरम भगिमाओं का अंकन किया गया है जो सदा ही मानव को प्रेरणा देती रहती है। 'जननी' 'भगिनी' और पत्नी के तीन रूपों में से प्रेम एवं वात्सल्य प्रधान, पत्नी तथा माता के रूप को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। अतीत काल से ही भारतीय चित्रविदों की कृतियों की यह विशेषता रही है कि उसने अपनी कृतियों में भारतीय नारियों के नाना मुद्राओं का अंकन, सौन्दर्य, अलंकार, आचार—विचार सभ्यता विज्ञान एवं सद्चरित्रता को प्रतीक मानकर उनके परिष्कृत रूप को ही आधार माना है तभी तो उन अद्वितीय अंकनों में नारी का श्रेष्ठतम रूप ही प्रतिबिम्बित होता है। यूनान, मिश्र, रोम, मेसोपोटामिया तथा अन्य पाश्चात्य देशों की सभ्यता, संस्कृति तथा कला से परे भारतीय नारियों को सम्मान युक्त आदर्शमय स्थान प्राप्त हुआ है। पाश्चात्य देशों की कला में नारी को भौतिक आनन्द का साधन मान कर उसके मांसल सौन्दर्य में ही कला के दर्शन किये गये हैं जबकि भारतीय चित्रकार भौतिकता से परे अध्यात्म के पृष्ठभूमि पर भारतीय नारी को एक उच्च आदर्श की प्रतिमूर्ति मानकर उसके समुन्नत सौन्दर्य को ही अभिव्यक्त करते हैं। पश्चात्य देशों में यूनानी कलाकारों की

सराहना करनी पड़ती है जिन्होंने सौन्दर्य के यथार्थ रूप का दर्शन किया है और उस सौन्दर्य को मानवाकृतियों के रूप में अंकित किया है। उनकी कृतियों में मात्र जड़ शक्ति का ही रूपांकन नहीं है अपितु उनमें उत्तम प्राण विलास, एवं मनोविकास का सौन्दर्य भी स्पष्ट परिलक्षित होता है जबकि मिश्र की कला में यह तत्व नहीं के बराबर है। उनकी कला में चैतन्यता का सर्वथा अभाव है। कहीं—कहीं तो ऐसा लगता है मानो यथार्थ अंकन के क्षेत्र में विश्व की कला ने यूनानियों से पर्याप्त प्रेरणा ली है। वास्तव में यूनानी कला वहां के जन—जीवन का प्रतीक है। वहां लोक चित्रांकन का जो स्वरूप देखने को मिलता है उनमें भी वहां के दैनिक जीवन की नाना भंगिमायें समाहित है। नि:सन्देह वहां के पात्रों के चित्रण में पुरूषों और नांरियों के चित्र भारत की लोककला की याद दिलाते हैं। जैसे भारतीय लोकजीवन में कला एक प्रमुख संस्कार की भांति हमारे जीवन से जुड़ी हुयी है, वैसे ही यूनानी कृतियों में भी आभासित होती है। कला के बिना उनका जीवन भी सौन्दर्य हीन लगता है।

पाश्चात्य विचारों से भिन्न भारतीय दृष्टिकोण में शरीर केवल जड़ पदार्थ ही नहीं बल्कि वह सप्राण एवं मानस का पावन क्रीड़ास्थल भी है। सौन्दर्य मात्र अचेतन वस्तु नहीं है। प्राण और मन का विलास ही सौन्दर्य है। भारतीय कलाविदों ने शरीर सौष्ठव के साथ प्राण विलास तथा हृदय के पूर्ण विकास का ज्ञानार्जन किया है यही नहीं उन्होंने मन के परे सर्व जीवों में विलास करने वाली आत्मा के स्वरूप को भी पहचाना है। हिन्दू चित्रकारों की दृष्टि में कला का एक आदर्शमय रूप है, इस सन्दर्भ में डॉ० मुल्कराज आनन्द का दृष्टिकोण उपयुक्त लगता है। 'द हिन्दू व्यू ऑव आर्ट इज द हिन्दू व्यू ऑव लाइफ, लाइफ इज इण्टरप्रेटेड बाय रेलिंजन एण्ड फिलॉसॉफी।' इस सौन्दर्य का मूल आदर्श है। अत: इस सुन्दर शरीर के द्वारा प्राण तथा मन के विकास को प्रदर्शित करना ही नहीं बल्कि उस में गोचर आत्म वस्तु को अभिव्यक्त करना भी समस्त भारतीय कलाकारों का चरम लक्ष्य रहा है। भारतीय नारी इस स्तर पर पहुँचकर भारतीय

कलाविदों को प्रेरणा देती रही हैं। तभी तो कला की साधना की चरम बिन्दु पर पहुंचने वाली शक्ति, एवं साधना के चिन्तन का माध्यम भी नारी को ही माना गया है। भारतीय चित्रकला में आदि काल से आधुनिक काल तक की नारी के चौंसठ प्रतिरूपों के दर्शन अवश्य हो जाते है। यों कहें कि उनके स्वरूप के सौन्दर्य की अलौकिक आभा भारतीय कला का प्राण ही है। ☐



नारी एवं सौन्दर्य भावना

अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारी अतीत युग से ही सौन्दर्याभिव्यक्ति का एक प्रधान माध्यम रही है। सौन्दर्य की परिभाषा शब्दों में करना बड़ा ही दुरुह कार्य है। सौन्दर्य की परिभाषा विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से की है। आधुनिक युग में भी कला सृजन के द्वारा कलाकार की अस्मिता का विस्तृत विकास तो होता ही है साथ ही उसमें उदास भावना का प्रस्फुटन भी होता है और यही सौन्दर्य कलाकार की कृतियों में उजागर होता है। कला में अंकित माधुर्य युक्त सौन्दर्य, मानवीय चेतना में आकर्षक भावना को जन्म देती है। हम यह भी कह सकते हैं कि कला सृजन आत्मा का रागात्मक अनुसंधान है। वह ध्यानान्त शीतांशु की प्रभा में विचरण करने लगता है। आज भी उसकी यथार्थता स्पष्ट दृष्टिगत होती है। यह बात इस पर निर्भर करती है कि उस कलाकार की कृतियां हमारे मानस पटल पर अपना कैसा और कितना प्रभाव डालती हैं।

भारतीय दार्शिनकों के मूल्यांकन हेतु बौद्धिक स्तर अलग ही है। जो अन्य देशों से सर्वथा भिन्न हैं। नारी, कला कृतियों के सृजन में एक महत्वपूर्ण प्रेरणाबिन्दु रही है। भारतीय चित्रकार प्रकृति के साथ ही नारी के विलक्षण सौन्दर्य से प्रेरित होकर कला का सृजन करता आ रहा है। नारी के नाना रूपों में उसने त्रैलोक्य का सौन्दर्य देखा है तभी तो उसने अनगिनत स्वरूपों में नारी को बांधने का प्रयत्न किया है। यदि हम प्राचीन भारतीय चित्राकृतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उसने नारी के रूपों का विशद् अध्ययन किया है। उसके सौन्दर्य से आलोकित होकर अपनी कृतियों को जन्म देने में समर्थ बना है। नारी में दो विशेष गुण ही

आकर्षण के कारण है एक रूपात्मक स्वरूप और दूसरा नारी का गुणात्मक स्वरूप। इन्हीं दो पहलुओं ने कलाकार को अपनी ओर केन्द्रीभूत करने में विशेष सफलता प्राप्त की है।

वैदिक युग या उसके पूर्व में नारी का आदर्शमय रूप लक्षित होता है। महाकाव्य काल में भी यह आदर्श पूर्ववत बना रहा। बौद्धकालीन—युग में भी नारी सौन्दर्य की केन्द्र बिन्दु थी। श्रीमती सरला दुआ ने अपने शोध ग्रंथ "आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी" में इसकी पुष्टि की है— 'नारी के सौन्दर्य का बौद्ध काल में' सम्मान था। उस युग की मूर्ति एवं चित्रकलाओं में भी नारी के अनाघ्रात, अवदात चित्रों की अवधारणा होती है। अजन्ता, बाघ और एलोरा के चित्रों से हम उस युग के नारी सौन्दर्य चित्रण की कल्पना कर सकते हैं।' बौद्ध कवि अश्वघोष ने भी सौन्दर्य चित्र उपस्थित किया है—

'मुहुर्महुमर्दव्याजम्रस्तान नीलां शुकापरा।
आलक्ष्य रसना रेजे स्फुरद्विपुरिव क्षपा।।

मध्यकालीन चित्राकृतियों में नारी सौन्दर्य, जो रीतिकालीन कृतियों के काव्यों पर आधारित हैं, दर्शनीय हैं। श्रृंगार के प्रवीण कवि बिहारी ने नारी को इस रूप में देखा हैं—

'कनक छरी सी कामिनी, काहे कटि में क्षीन,
कटि को कंचन काटि के, कुचन मध्य धर दीन।

नारी का यह रूप जिससे सौन्दर्य की अभिव्यंजना होती है विशेष रूप से श्रृंगारमय है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में नारी बन्धन युक्त है, वह मनुष्य की काम पिपासा को शान्त करने एवं उसके शयन कक्ष को सौन्दर्यान्वित एवं सज्जित करने तक ही सीमित रह गयी है, किन्तु इतने बन्धनमय जीवन व्यतीत करने वाली भारतीय नारी का चित्रण उस युग की कृतियों में यत्र तत्र देखने को मिल ही जाता है जिनमें नारी का सौन्दर्ययुक्त तथा भावमय चित्रण किया गया है विशेषकर उनके श्रृंगारिक सौन्दर्य को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह रूप माधुर्य ही तो कला विदों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।

संस्कृत साहित्य के अनेकानेक नाटक ऐसे हैं जिनमें कला और नारी का अटूट सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन युग में किसी न किसी प्रसंग में कला के आदर्श को प्रस्तुत किया जाता था। कहीं विरह व्यथा से व्यथित नायिका धैर्य प्राप्त हेतु अपने प्रिय का चित्र अंकित करती है तो कहीं दुखी हृदय नायक अपने प्रिया के रूप में विभोर, नायिका का अंकन स्वयं या किसी चित्रकार से करवाता है। महाकवि कालिदास के बहुमूल्य नाटकों— 'मालविकाग्निमित्रम्', विक्रमोर्वशीयम्' तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में नारी के सौन्दर्य के चित्रांकन का प्रसंग यत्र—तत्र देखने को मिलता है। 'मालविकाग्निमित्रम्' में वर्णित नायिका 'मालविका' के सौन्दर्य का अंकन एक चित्रकार ने किया था जिसका अवलोकन कर नायक अग्निमित्र, 'मालविका' की ओर आकर्षित हो गया। यही सौन्दर्य उसे 'मालविका' के प्रति आसक्ति उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुआ। कहने का तात्पर्य कि नारी, सौन्दर्य की प्रतिरूप है सौन्दर्य का सहयोग पाकर वह कंचन बन जाती है जिसका प्रतिविम्ब प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। 'पद्मावत' की प्रेम परम्परा को यदि लौकिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो नारी के नाना स्वरूप लक्षित होगें। कुछ भी हो नारी आकर्षण की केन्द्र बिन्दु तो है ही और उसका आधार है उसका रूपमाधुर्य। जायसी के अमरकृति 'पद्मावत' में नारी के आंशिक सौन्दर्य का चित्रण दर्शनीय है—

'कनक कलस मुख चन्द छिपाहीं, रहसि केलि सब आवहिं जाहीं।
जा सहुवे हेरै चल नारी, वांकि नैन जनु हनहिं कटारी।।

क्या अभिज्ञान शाकुन्तल के नायक महाराज दुष्यन्त के मन में नारी सौन्दर्य की भावना को इतिहास झुठला सकता है जिसने स्वयं शकुन्तला का सौन्दर्य, रूपमाधुर्य बड़ी सजीवता के साथ चित्रपट पर अंकित कर दिया था। यह नारी का मोहक रूप ही तो था। प्रसिद्ध नाट्य—ग्रंथ विक्रमोर्वशीय में प्रतिष्ठानपुर के राजा महाराज विक्रमादित्य जो पुरूखा के नाम से विख्यात थे देवराज की सभा की सौन्दर्य देवी अप्सरा उर्वशी की केशी नामक दानव से रक्षा करते समय उसके रूप माधुर्य से व्याकुल हो जाते हैं और वह

अपने मित्र विदूषक से कहते हैं कि—

'एष कुसुमितास्पपि सखे नोपवनलतासु नम्र विटपासु।
चक्षुर्वध्वाति घृति तदु पालोकदुर्ललिम्।
तदुपायश्चिन्तयता यथा सफलप्रार्थनो मवयम्।।

अर्थात— हे सखे— मेरे मन को उर्वशी के सौन्दर्ययुक्त मुखमण्डल के अवलोकन की लालसा है। इसलिए उद्यान के खिले हुए पुष्पों के कारण शोभा और शौरभ से युक्त हो उठी लताओं पर भी जिनकी शाखाएं झुक गई हैं। मेरी दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती उर्वशी को देखने के लिए वह लालायित है। इसलिए हे मित्र, कोई ऐसी युक्ति सोंचो जिससे मेरे व्यथित हृदय की कामनापूर्ण हो सके। राजा के कथन के उत्तर में विदूषक ने कहा—

'भो चिन्तिदो मए दुल्लहप्पणदूर्णा समाअमोवाओ।''

अर्थात— मैने दुर्लभ प्रणयिनी के संसर्ग का उपाय सोच लिया है। राजा इस कथन से अत्यन्त उत्सुक हो उपाय जानने के लिए व्यग्र हो उठते हैं तब विदूषक कहता है—

''सिविणअ — समाअम, अरिणिं जिद्दं सेवदुभवं। अहवा तथ्य—मोदीए (उव्यसिए पडिकिदिं आलिहिज ओलोअन्तो चिट्ठ)

अर्थात— हे राजन, आप स्वप्न में समागम करने वाली निद्रा का सेवन कीजिए, अथवा उर्वशी का चित्र अंकित करके उसका अवलोकन करते रहिए। कहने का तात्पर्य है कि नारी सौन्दर्य मानव को प्रेरणा देता है वह उसकी प्रेयसी है, उसकी सखा तथा प्रेरणा—स्रोत है नारी सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। वास्तव में कलाकार की प्रेरणा का एक ही आधार है सौन्दर्य। सौन्दर्य की भावना को उद्वेलित करने वाली शक्ति नारी है।

महाकवि कालिदास के नाटकों में नारी के सौन्दर्य तथा चित्रमय स्वरूप एवं चित्रांकन के अनेक उदाहरण प्राप्य हैं। महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त अपने विरह व्यथित मन की शान्ति के लिए शकुन्तला का एक सौन्दंर्ययुक्त मोहक चित्र आंकते हैं विदूषक जिसकी खूब सराहना करता है। राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का जो चित्र बनाया, उसके सौन्दर्य की सराहना महाकवि के निम्न श्लोक में दर्शनीय है—

'दीघ्रापाड.ग विसारिनेत्रयुगलं लीलाञ्पितभूलतं,
दन्तान्त परिव्रीणेहासकिरण ज्योत्सनाविलिप्तापरम्।
कर्कन्धूधुति पाटलोष्ठ रूचिरं तस्यास्तदेतन्मुखं
चित्रेऽप्यालिपतीव विभ्रलसत्प्रोद् भिन्न कान्ति प्रवम।।

अर्थात चित्र में युगल नेत्र कान तक फैले थे। चपल मूलता कुंचित थी, अधरदेश दन्त ज्योति से दिप्त थे। ओष्ठ पके हुये कर्कन्धु के समान पाटलवर्ण (रक्तिम वर्ण) के थे। सौन्दर्य विकीर्ण करने वाली मुग्धकारी छविधारा सी वह सुशोभित थी। चित्रगत होते हुए भी वह छवि इतनी सजीव थी मानो वह अभी वाचाल हो उठेगी। नि:सन्देह राजा दुष्यन्त द्वारा चित्रित यह नारी चित्रण, सौन्दर्य की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ था।

नारी का गुणात्मक स्वरूप—

भारतीय नारी का दूसरा स्वरूप गुणात्मक है। इस गुणात्मक सौन्दर्य से भी भारतीय ललित कलाओं का कलश पूरित है। नि:सन्देह भारतीय नारी गुणों की खान है। जहां भारतीय नारी अबला है अशक्त है वहीं वह बुद्धि की देवी भी है, देवी का स्थान प्रदत्त करके भारतीय मनीषियों ने तो नारी की पूजा की स्वीकृति भी दे दी है तभी तो कहते हैं—

'स्त्रियों यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
अपूजिताश्च यत्रैता सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।

नारी के गुणात्मक सौन्दर्य में सौम्य और रौद्र भावों की प्रधानता है। दोनों के मिश्रण से त्रिगुणात्मक शक्तियों का जन्म होता है। सत्, रज् और तम् इन्हीं तीनों गुणों की प्रतीकात्मक रूप तीन देवियां हैं सत् स्वरूपा, सरस्वती रज् स्वरूपा लक्ष्मी तथा तमस्वरूपा शक्ति या काली। मनीषियों के इस आध्यात्मिक चिन्तन का प्रभाव भारतीय कलाविदों पर भी पड़ा और इसी चिन्तन को आधार मानकर कलाकारों ने उपर्युक्त अमूर्त भावनाओं को अपने कृतियों के माध्यम से मूर्तता प्रदान की है। चित्रकार के मन का कल्पित रूप

नारी के नाना स्वरूपों में प्रस्फुटित हो आज हमारा मार्ग प्रदर्शित कर रही है।

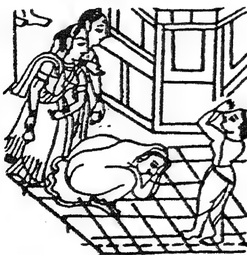
इन समन्वित भावनाओं के नाना रूपों से नारी का यथार्थ रूप हमारे समक्ष उद्भूत होता है जिसमें सौन्दर्य और गुण दोनों ही विराजमान हैं। नि:सन्देह दोनों मिलकर नारी को एक विलक्षण व अलौकिक रूप प्रदान करते हैं जिसे रूपाकार की कृतियों में देखकर मन प्राणों का अविरल स्वर थम जाता है और आस्वादन का वैयक्तिक पार्थक्य मन प्राणों के लिए विलुप्त हो जाता है। नारी में दो प्रकार के सौन्दर्य लक्षित होते हैं— स्थूल तथा सूक्ष्म सौन्दर्य। डा० सरला दुआ ने कहा है — स्थूल सौन्दर्य नारी के अंगों तक ही सीमित है। यह केवल नेत्रेन्द्रीय को ही तृप्ति प्रदान करता है। सूक्ष्म सौन्दर्य अंगनिरपेक्ष होता है। स्थूल सौन्दर्य मूर्त सौन्दर्य है तथा सूक्ष्म सौन्दर्य अमूर्त सौन्दर्य है। वास्तव में किसी श्रेष्ठ कृति को देखकर भावनाओं का प्लावन उन्मुक्त हो जाता है।

कला में यथार्थ रूपेण एक अलौकिक नैसर्गिक मांगल्य शक्ति निहित होती है। इसी विलक्षण शक्ति के कारण वे सभी कृतियां चाहे उसमें उद्यान श्रृंगार या कामोद्दीप्त भाषा में अभिव्यक्त श्रृंगार क्यों न हो कला के फलक पर अंकित हो जाने के बाद वह पावन स्वरूप में परिणित हो जाता है। इसके मूल में निहित साधना की पवित्र भावनायें ही होती है जो सत्य को दर्शक के मानस पटल पर अंकित कर देता है। नारी का शरीरगत और रूपगत सौन्दर्य भी पावन और अलौकिक आभा बिखेरने लगता है। इसी अलौकिक भावना ने नारी अंकन को भी आदर्शमय बना दिया है।

भारतीय चित्रकला में नारी के अंकन को उच्च स्तर प्रदान किया गया है। उसे आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। देवी के उन नाना मुद्राओं का चित्रांकन किया गया है जिनमें काव्यात्मक गुण विद्यमान है। रिक्त मन्दिर का कोई मूल्य नहीं होता। हमारी चित्रविद्या में नारी मन्दिर में पूजित देवी के समान है। भारतीय चित्रों में नारी चित्रांकन कहीं की अनुकृति नहीं है सभी

जगन्माता की लीलायें है।

वे साधारण नारी का अंकन नहीं लगती। भारतीय चित्र शिल्पियों ने स्त्री जाति को सौन्दर्य पूंज जानकर उस मोहक विलक्षण सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने हेतु नारी की नाना रूपों में कल्पना की है, ऐसे रूपों की परिकल्पना की है जिनमें सौन्दर्य भावना के साथ ही साथ नाना गुणों की शक्ति भी निहित है। इन मोहक कृतियों में दृष्टिगोचर होने वाले अर्द्धोन्मीलित नेत्र भगिमायें, हस्तमुद्रायें आदि किसी व्यक्ति में हम नहीं देख सकते। ये भिन्न—भिन्न रूप भावों को अभिव्यक्त करने वाले शास्त्रोचित सांकेतिक चिन्ह मात्र है। नारी को उसके गुणात्मक स्वरूप के कारण ही आत्मज्ञानी योगियों ने ध्यान किया है। उन्हें जिस सौन्दर्य का साक्षात्कार हुआ उसके अनेक भाव विधानों में अनेक रूप की कल्पना की गयी है। उनका कल्पित रूप भौतिक नहीं है। भारतीय चित्रविदों ने नारी को देवी माना है। अजन्ता में यशोधरा द्वारा अपने पुत्र को दान देने का चित्र अंकित है। समक्ष ही भगवान बुद्ध भिक्षु रूप में खड़े हैं। मात्रित्व व पुत्र स्नेह का परित्याग कर अपने बेटे को तथागत के चरणों में समर्पित करने वाली भारतीय नारी की श्रेष्ठ भावना व पवित्र त्याग का अंकन भारतीय चित्र कला में ही सम्भव है जहां का चित्रकार नारी में उसके गुणात्मक रूप के कारण ही उसे देवत्व की कोटि में रख देने की क्षमता रखता है। भारतीय चित्रकार ऐसे ही रूपों को सहस्त्र मुखों से प्रशंसा करके तथा अपनी समस्त शक्तियों को कार्यान्वित कर उस स्वरूप को अंकित करने का प्रयास किया है। अजन्ता, बाघ, वादामी, ऐलोरा, एलिफेन्टा, सारनाथ, बेलूर आदि पावन पवित्र स्थलों में नारी के सौन्दर्य का अंकन, उसी रूप में हुआ है जिसमें सौन्दर्य है, मोहक शक्ति है, साथ ही निहित है गुणात्मक स्वरूप की पराकाष्ठा।





प्रागैतिहासिक युग के शिला चित्रों में नारी अंकन

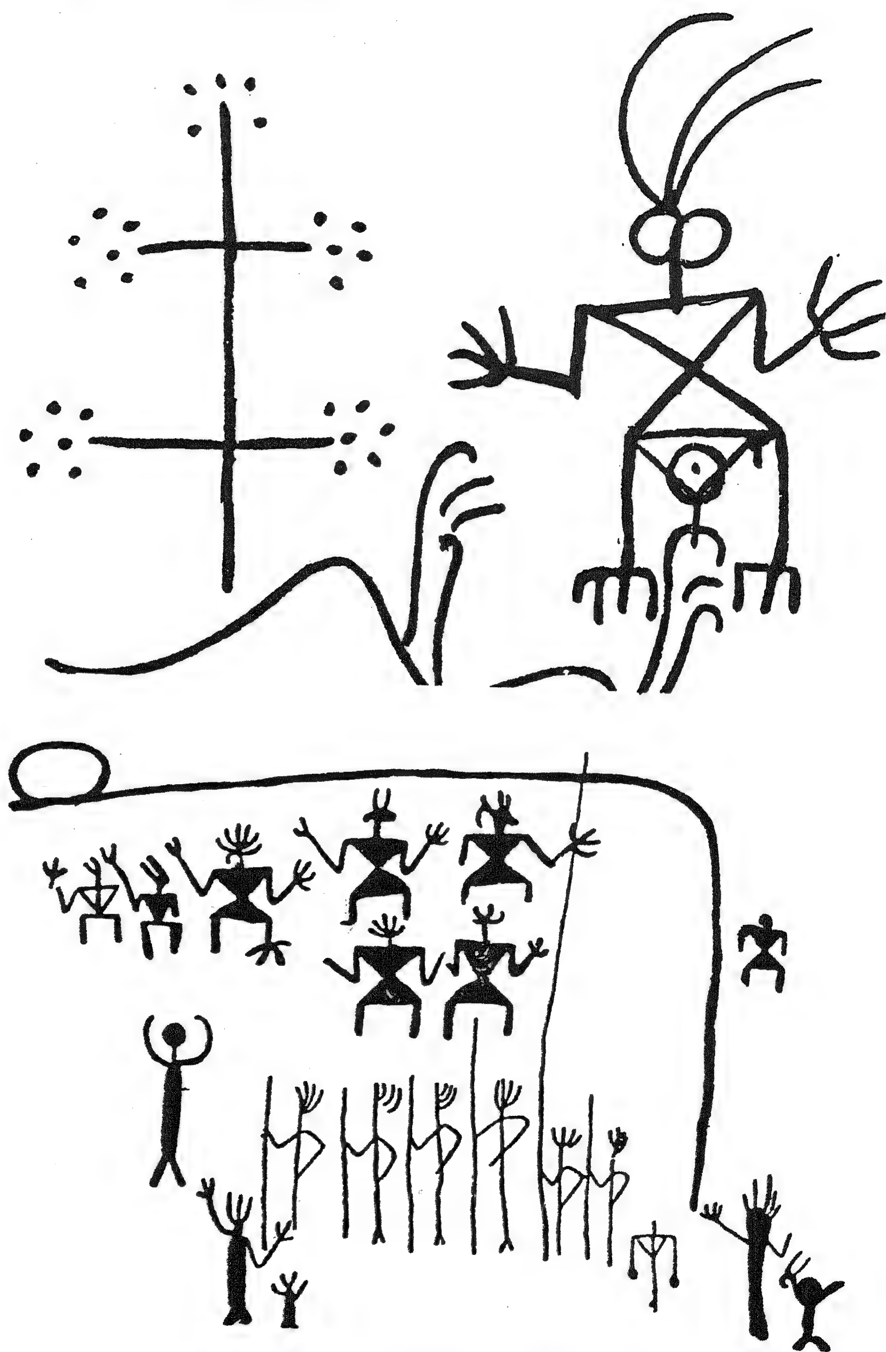
संसार की प्रागैतिहासिक कलाओं का अन्वेषण व उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का यदि गहन अध्ययन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विश्व की आदियुगीन कला में देशगत भेद नहीं है। प्रायः सादृश्यता का ही भास होता है। इसका कारण यही है कि प्रायः सभी देशों की प्रागैतिहासिक कला मानव के सभ्य युग के पहले की ही है और उसी में उसका अतीत छिपा हुआ है। जैसे—जैसे समाज में मानव का रूप निखरता गया वैसे—वैसे कला के रूप में भी परिवर्तन आता गया। उस आदिम—कला का अवलोकन करने से ऐसा लगता है जैसे यह किसी बालक का सृजन है। क्यों नहीं, आखिर उस युग का मानव सभ्यता के विकास में बालक ही तो था। कला की भावना तो उसमें ईश्वर प्रदत्त थी, किन्तु उसके विकास का श्रीगणेश नहीं हुआ था। वह अपने अन्दर निहित अनुभूति को मोटी—मोटी रेखाओं द्वारा अभिव्यक्त कर सका है। प्रागैतिहासिक चित्रों में योजना क्रम तथा रंग वैचित्रता का सर्वथा अभाव है। चित्रकारिता का संस्कार आदिम मानव के हृदय में सदा से ही पलता रहा है। उसके लिए यथार्थ और कल्पना में कोई भेदाविभेद नहीं था। उसने अपने मन की भावनाओं को श्रेष्ठ माना और उसे कला में साकार करके अभिव्यक्त कर दिया। आदि युगीन मानव को मानवीय आकृतियों के अंकन में सूक्ष्मता की नहीं बल्कि भावों को स्पष्ट करना बड़ा कठिन सा लगा। कहीं—कहीं तो पुरूष और नारी आकृति में भेद करना बड़ा कठिन सा लगता है, कारण कि उनमें मात्र रेखाओं का ही अंकन है, गोल व लम्बी सरल रेखायें, कहीं वर्तुलाकार अंकन, उनमें नारी की स्वाभाविक अंग रचना गुण एवं विशेष भंगिमा का सर्वथा अभाव है।

प्रागैतिहासिक चित्राकृतियों के अध्ययनोपरान्त हम यह नहीं कह सकते कि नारी का चित्रण नहीं हुआ है। यत्र तत्र हमें नारी अंकन भी दृष्टिगत हो जाते हैं। उन्हें देखकर ऐसा आभास होता है कि उनके अंकन का आधार धार्मिक रहा होगा।

मानिकपुर से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग चार किलोमीटर दूर स्थित सरहत नाम का ग्राम है जहां आजकल एक कोल कालोनी बसी है, जिसके उत्तर दिशा में खाम्भा नामक स्थान स्थित है वहीं पर कई बड़ी—बड़ी गुफायें हैं जहां विशेष अवसरों पर मेला आदि भी लगता होगा। इसी के पास वाली गुफा में सील की दीवालों पर कुछ चित्रित मानवाकृतियां देखने को मिलती हैं। सांकेतिक चिन्हों से अंकित यह चित्र पुरूष की ही लगती है। इस प्राप्त भित्ति चित्र में दो वृत्तों के द्वारा मानव सिर का अंकन कुछ अजीब सा लगता है। इसी के ऊपर तीन रेखाओं द्वारा कलगीं बना हुआ है। यह आकृति ज्यामितीय आधार पर बनी है। हाथ तथा पैरों में चार—चार उंगलियों का अंकन है। वायें पैर में तीन अंगुलियां ही बनायी गई हैं। कमर के निचले भाग में वस्त्राकंन है जिसका रूप त्रिकोणात्मक है। इसमें एक वृत्त तथा बिन्दु नारी के गुप्तांग का संकेत करते हैं। स्पष्टत: यह स्त्री चिन्ह ही है। वास्तव में इस चित्रांकन को देखकर ऐसा लगता है जैसे यह किसी देवी की प्रतीक रूप को अभिव्यक्त करने के लिए बनाई गई होगी। इसी तरह के मिलते जुलते नारी चित्रण मीरजापुर की पहाड़ियों में भी देखने को मिलते हैं।

मानिकपुर के समीप ही स्थित इसी सरहत के कोल कालोनी से लगभग दो फलांग की दूरी पर पश्चिम की ओर एक अतीत युगीन गुहा है। जिसके दीवालों पर चित्र अंकित हैं। इन चित्रों को जोगिनी दाई की संज्ञा दीं गई है।

ये आकृति चित्रांकन लगभग डेढ़ फुट चौड़े और दो फुट लम्बे आकार के हैं। अतीत के इस धरोहर का अवलोकन कर ऐसी भावनायें अभिव्यक्त होती हैं, जैसे ये प्राचीन चित्र प्रागैतिहासिक

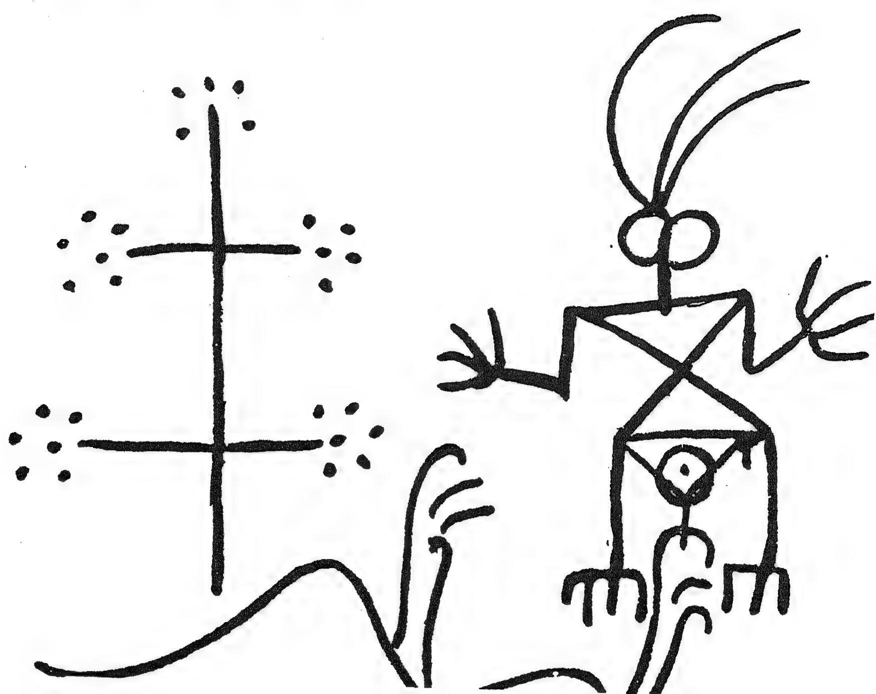


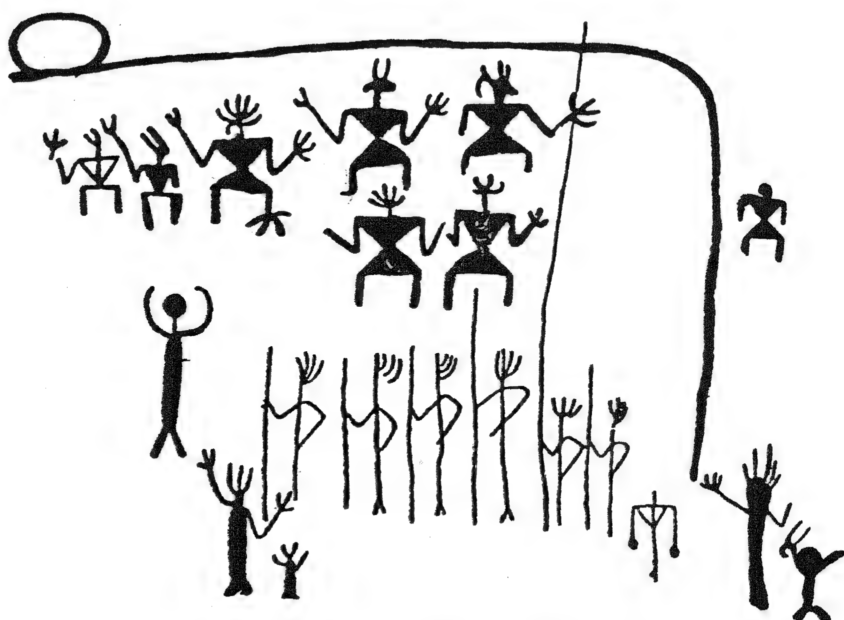
शिला चित्र में सप्तमात्रिकायें मानिकपुर (प्रागैतिहासिक काल के)

युगीन मानव के आराध्य देव एवं देवियों के हों, इस पूर्ण चित्रांकन को देखकर ऐसा लगता है कि ये चित्र अलग—अलग चित्रकारों द्वारा अलग—अलग समय में बनाये गये हैं क्योंकि इनके रेखांकन में कहीं भी साम्यता नहीं है। ऊपर की पंक्ति में एक तथा तीन और उसके बाद ऊपर नीचे दो दो आकृतियों की रचना की गई है। ऊपर के आकृतियों के सर पशुमुखाकृतियों से युक्त हैं, जो देवी आकृतियां लगती हैं। इसकी पुष्टि भी यहां के जन—मानस की परम्परा एवं पवित्र धार्मिक भावनाओं तथा उनके प्रति अभिव्यक्त आस्था से हो जाती है। यद्यपि यहां के लोग उन्हें योगिनी दाई कहते हैं किन्तु इनकी सात की संख्या सप्त मातृकाओं की ओर इंगित करते हैं। यदि हम मान लें कि उस युग में सप्त मातृकाओं का ऐसा ही रूप था तो निसन्देह नारी की महानता एवं उसके शक्ति रूपों की आराधना एवं चित्रकला में उनका अंकन स्पष्ट हो जाता है। प्रागैतिहासिक युग में भी शक्ति की आराधना होती थी ये भारतीय चित्रकला के प्रारम्भिक चित्र स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर देते हैं।

यद्यपि उपरोक्त वर्णित चित्रों के सम्बन्ध में वहां के निवासियों में ऐसी किंबदन्ती प्रचलित है, जो उनके विश्वास को चिर स्थायी बनाती है कि ये गुहा चित्र प्रेत योनियों के प्रतीक हैं जो रात में सजीव हो जाती है। इस गुहा के समीप मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति भी इन्हीं प्रेत योनि में सम्मिलित हो जाता है। शिला चित्रों के प्रति एक अलौकिक शक्तिमयी भावना जन मानस में उसी युग से व्याप्त था जो आज भी है। चित्रकला के क्षेत्र में इनका विशेष महत्व है,ये नारी के आदि युगीन चित्र मुद्रायें हैं जो शिलाखण्डों पर उन्मुक्त हस्त से मुक्त भावनाओं द्वारा शैली एवं विभिन्न वादों से परे चित्रित किये गये हैं।

पुरातात्विक अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि संसार के अधिकाधिक भूभागों में सामान्यत: सांस्कृतिक विकास की गति एक सी रही है। जैसे अन्य क्षेत्रों में विकसित प्रवाह गति एक सी दृष्टिगत होती है वैसे ही कला के क्षेत्र में भी प्रगति चलती रही है। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहीं कहीं इस कलात्मक अभिव्यक्ति की कड़ी कुछ काल के लिए भंग अवश्य हो गयी है। अतीत काल





शिला चित्र में सप्तमात्रिकायें   मानिकपुर (प्रागैतिहासिक काल के)

युगीन मानव के आराध्य देव एवं देवियों के हों, इस पूर्ण चित्रांकन को देखकर ऐसा लगता है कि ये चित्र अलग—अलग चित्रकारों द्वारा अलग—अलग समय में बनाये गये हैं क्योंकि इनके रेखांकन में कहीं भी साम्यता नहीं है। ऊपर की पंक्ति में एक तथा तीन और उसके बाद ऊपर नीचे दो दो आकृतियों की रचना की गई है। ऊपर के आकृतियों के सर पशुमुखाकृतियों से युक्त हैं, जो देवी आकृतियां लगती हैं। इसकी पुष्टि भी यहां के जन—मानस की परम्परा एवं पवित्र धार्मिक भावनाओं तथा उनके प्रति अभिव्यक्त आस्था से हो जाती है। यद्यपि यहां के लोग उन्हें योगिनी दाई कहते हैं किन्तु इनकी सात की संख्या सप्त मातृकाओं की ओर इंगित करते हैं। यदि हम मान लें कि उस युग में सप्त मातृकाओं का ऐसा ही रूप था तो निसन्देह नारी की महानता एवं उसके शक्ति रूपों की आराधना एवं चित्रकला में उनका अंकन स्पष्ट हो जाता है। प्रागैतिहासिक युग में भी शक्ति की आराधना होती थी ये भारतीय चित्रकला के प्रारम्भिक चित्र स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर देते हैं।

यद्यपि उपरोक्त वर्णित चित्रों के सम्बन्ध में वहां के निवासियों में ऐसी किंबदन्ती प्रचलित है, जो उनके विश्वास को चिर स्थायी बनाती है कि ये गुहा चित्र प्रेत योनियों के प्रतीक हैं जो रात में सजीव हो जाती है। इस गुहा के समीप मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति भी इन्हीं प्रेत योनि में सम्मिलित हो जाता है। शिला चित्रों के प्रति एक अलौकिक शक्तिमयी भावना जन मानस में उसी युग से व्याप्त था जो आज भी है। चित्रकला के क्षेत्र में इनका विशेष महत्व है,ये नारी के आदि युगीन चित्र मुद्रायें हैं जो शिलाखण्डों पर उन्मुक्त हस्त से मुक्त भावनाओं द्वारा शैली एवं विभिन्न वादों से परे चित्रित किये गये हैं।

पुरातात्विक अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि संसार के अधिकाधिक भूभागों में सामान्यत: सांस्कृतिक विकास की गति एक सी रही है। जैसे अन्य क्षेत्रों में विकसित प्रवाह गति एक सी दृष्टिगत होती है वैसे ही कला के क्षेत्र में भी प्रगति चलती रही है। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहीं कहीं इस कलात्मक अभिव्यक्ति की कड़ी कुछ काल के लिए भंग अवश्य हो गयी है। अतीत काल

के अवशिष्ट चित्राकनों में उस युग की सभ्यता, जनमानस की चेतना की झांकी देखने को अवश्य मिल जाती है। उन अवशेषों से हमे इस बात का आभास मिलता है कि उस युग के जन—जीवन का अधिकतम् समय जीवन की आवश्यकताओं, आजीविका एवं आत्मरक्षा के प्रश्न को सुलझाने में ही व्यतीत हो जाया करता होगा। यही कारण है कि उस काल के चित्रांकन में पशुप्रवृत्ति का स्वरूप अधिकाधिक देखने को मिलता है। प्रागैतिहासिक कला के सम्बन्ध में श्री हाल्दार का कहना है कि — ''प्रागैतिहासिक कला यद्यपि आदिम तथा अविकसित है। चित्रकारी के आदिकालीन प्रयत्नों से हम उनकी संस्कृति के व्यवहार आदर्श का पता लगा सकते हैं। जैसे—जैसे मानव ने अपने परिपार्श्व सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया उसने मानवता की प्रथम संस्कृति कार्यपूर्ति को जन्म दिया''।

पूर्व पाषाण युग में, भारत के आदि युगीन मानव का इतिहास है जब वे कन्दमूल फल तथा जानवरों का शिकार कर मांस भक्षण कर अपना पेट पालते थे। पत्थर के हथियारों का निर्माण तथा उपयोग करते थे। अपने रिक्त समय में चाक से वर्तन निर्माण तथा पाषाणखण्डों से निर्मित प्राकृतिक गुहा एवं कन्दराओं में चित्रांकन करते थे। यदि हम विश्लेषणात्मक दृष्टि से अवलोकन करें तो यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि उस युग में जब मानव जीवन पशुवत था तब भी उसमें सृजनात्मक प्रवृत्ति अवश्य थी। वह तत्कालीन वातावरण को अमरत्व प्रदान करना चाहता था इसीलिए वह नाना रूपों में मानवाकृतियाँ तथा पशु, विहंगों का अंकन करता था। इस युग के चित्रित रेखांकनों में पुरूष और नारी की आकृतियों का भेद करना कठिन है। आकार के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से हमें अधिकतर आकृतियां पुरूष गुणों से सम्पन्न, शिकार के भावों को अभिव्यक्त करती हुयी सी लगती है।

प्रागैतिहासिक कालीन अधिकाधिक चित्र जो कड़ी तुलिका से अंकित की जाती रही होगी शिकार एवं शिकारियों के ही हैं। उन अंकित भित्ति चित्रों में नारी चित्रण का सर्वथा अभाव है किन्तु

कोमल भावनामय, ल़यात्मक रेखाओं को हम भुला नहीं सकते। प्रागैतिहासिक चित्रों के लिए विशेष रूप से विख्यात कैमूर की पहाड़ी तथा विन्ध्य पर्वत के गुहा चित्र अपनी विशेषता रखते हैं। चित्रों के अवलोकन से ऐसा लगता है कि ये चित्र दो प्रकार के हैं। एक तो कुछ बड़े ही शक्त रेखाओं के द्वारा और कुछ कुशल चित्रकारों द्वारा चित्रित भावपूर्ण चित्र लगते है, दूसरा कुछ स्वतन्त्र लापरवाह चित्रकारों द्वारा अंकित लगता है। लाल गेरू रंगों से चिकने शिलाखण्डों पर चित्रित ये चित्र लापरवाही पूर्ण अंकित होते हुये भी अपने अन्तराल में मृदुलता तथा कोमल भावनाओं को समाहित किये हुए हैं। चित्रों के विषय अधिकतर शिकार प्रधान ही हैं। जंगली भैसों का शिकार, भालुओं के आखेट चित्रण अधिक हैं, बारहसिंहा, हाथी, खरगोश आदि के आखेट के चित्रांकन बड़े ही रोचक है। असभ्य जाति के लोग लड़ाई—झगडों में प्रवीण होते थे। यही कारण है कि इन चित्रों के विषय लड़ाई—झगड़े से सम्बन्धित हैं। विभिन्न माध्यमों जैसे—गेरू, रामरज, हिरौंजी, रंगों में चित्रित इन चित्रों में काल्पनिक भाव न होकर यथार्थ चित्रण ही दृष्टिगत होता है। प्रागैतिहासिक युग के चित्रों का अन्वेषण आज भी हो रहा है। शिला चित्रों सम्बन्धी जो अन्वेषणात्मक कार्य हुये हैं। उस आधार पर हम यह कह सकने में समर्थ हैं कि उस युग में भी दैनिक जीवन के चित्रांकन के साथ ही साथ मानवाकृतियों एवं नारियों को देवी रूप मानकर उनका चित्रांकन अवश्य हुआ है और नारी का पूज्य रूप ही समक्ष आता है, भले ही उन अस्पष्ट रेखाओं में नारी सुलभ मृदुलता और लावण्य नहीं है फिर भी भावाभिव्यक्त की पूर्ण क्षमता अवश्य विद्यमान है। ज़हां इस युग में नारी के पावन पवित्र रूप का अंकन हमें देखने को मिलता है। वही ऐसा लगता है कि नारी का अंकन परिवार में कम किया गया है, सम्भवत: वह आदर की पात्र एवं लज्जाशील रही है। चूंकि स्त्रियां युद्ध एवं आखेट में नहीं जाती थीं इसलिए उनके इन मुद्राओं के चित्रण का अभाव है। हां कहीं कहीं वाद्य यंत्रों से युक्त नारी भंगिमा अवश्य अंकित किया गया है।

प्रकृति के सानिध्य में उन्मुक्त विचरण करने वाले आदि मानव ने जहां अपने मन के आनन्द को संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है वहीं उन भावनाओं को अक्षुण बनाने की कल्पना से भित्ति पटों पर रेखाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का भी प्रयत्न किया है। इस प्रकार के अनेक चित्र उपलब्ध हुए हैं जो सह नर्तन एवं समूह नर्तन को अभिव्यक्त करते हैं। कहीं—कहीं व्यंग कृतियों के सदृश्य पशुपक्षी रूपाकृति भी नृत्य में डूबे दिखलाये गये हैं। चित्रों में जैसे पुरूषों का सामूहिक नृत्य अंकन हुआ है वैसे ही स्त्रियों का भी समूह चित्रण किया गया है। कहीं कहीं दो पुरूषों के बीच नारी को नृत्य करते चित्रित किया गया है। सम्पूर्ण चित्रों में एक लय है जो अविरल है। प्रागैतिहासिक चित्रों का प्रधान गढ़ मध्य प्रदेश में स्थित पंचमढ़ी माना जाता है जहां अनेक मानवाकृतियों का अंकन देखने को मिलता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इसकी पुष्टि की है—

घरेलू जन जीवन के अनेक चित्र यहां हैं। पर्याप्त मात्रा में उनमें नारी चित्रांकन भी है। यहीं पर एक स्त्री कन्द कूटती हुयी चित्रित है और दूसरी धान दरती हुयी नारी चित्र भी मिला है। छपरिया के भीतर स्त्रियां बैठी हैं। स्त्री पुरूष झुण्ड में मिलकर जोड़े बनाकर नाच रहे हैं। आदमी ढोल या दुहरी नाय बजा रहे है। -- इस प्रकार के अनेक भित्ति चित्र यहां के शिलाखण्डों पर चित्रित हैं। प्रागैतिहासिक युग में चाहे वह पत्थर युग हो या धातु युग कहीं न कहीं हमें नारी चित्रांकन अवश्य ही दृष्टिगोचर हो जाता है जो आभासित करता है कि आदिम मानव का भी इनके महत्वपूर्ण भूमिका का ज्ञान था, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने नाना रूपों में नारी को चित्रित कर अपनी भावना अभिव्यक्त की है।

सैन्धव सभ्यता की कला कृतियों में नारी अंकन:—

सैन्धव सभ्यता विश्व की सभ्यता का एक सम स्तरीय मापदण्ड है जहां से संसार के मानव का, उनके समुन्नत सभ्यता का सौन्दर्यंयुक्त रूप दृष्टिगत होता है। मेसोपोटेनियन सभ्यता, जो

विश्व की प्राचीन सभ्यता मानी जाती रही है। सैन्धव सभ्यता उसे भी अपनी ओर उन्मुख करने में पीछे नहीं है। किन्हीं किन्हीं आधार पर तो हम सैन्धव सभ्यता को और अधिक प्राचीन व समुन्नत कह सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसा के सहस्त्रों वर्ष पहले से भारतीय कला की ऐतिहासिक परम्परा एक सुदृढ़ कड़ी के समान जुड़ी हुयी थी जिसे कोई भी झांझावात विनष्ट नहीं कर सका, बल्कि उसमें अन्य अनेक धर्म, संस्कृतियां स्वतः आत्मसात होती चली गयीं। आज उनका विश्लेषण करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। 'सिन्धु की उपत्यका में भारत ने सभ्य कला की पहली सांस ली थी—उसकी मुहरों का वैभव तब कला की भूमि से उठकर दजला—फरात की घाटियों तक तथा दक्षिणी ईरान के एलाम आदि के आकाश पर वितान बनाता, गया था। इतिहास के गहन अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट आभास हो जाता है कि प्रागैतिहासिक युग में ही आर्यों के आगमन से पूर्व हमारे देश का सम्बन्‌ मेशोपोटामिया की प्राचीन सुमेरियन सभ्यता से था। हां इनका विशद मूल्यांकन करना कठिन अवश्य है। यह भी एक विवादग्रस्त विषय है कि कहां की सभ्यता ने पहले किसे प्रभावित किया। कहां की सभ्यता में कला का विकास पहले हुआ। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें वहां के प्राचीन पुरातात्विक सामग्रियों का अवलोकन एवं गहन अध्ययन करना होगा।

ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व के मानव समाज का, उनके रहन—सहन, रीति—रिवाज, खानपान, वस्त्राभूषण, सौन्दर्य ज्ञान, नारी का समाज में स्थान, संस्कृति, धार्मिक स्थिति सब कुछ का अवलोकन करना होगा जो सिन्ध के विस्तृत क्षेत्र मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा के भूभाग में फैला है तथा जो पंजाब के मांटोगोमरी जिले का विशेष स्थल है। ईसवी पूर्व लगभग चार हजार वर्ष पुरानी इस विकसित सभ्यता को यदि मृणपात्रों की सभ्यता कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। धरती के गर्भ में विलीन इस सभ्यता को उजागर करने वाले पुरातात्विकों का कहना है कि यह सभ्यता चीन

के पीत नद से लेकर लघु एशिया तक तथा भारत की पावन पवित्र धरती तक फैली थी। इस सभ्यता के सृजनहार मानव, मुर्दों को गाड़ते थे और उनके साथ गाड़े जाने वाले पात्रों तथा दैनिक जीवन के उपयोगी वस्तुओं के संग्रह हेतु निर्मित पात्रों को मनमोहक आलेखनों से अलंकृत करते थे। इन अलंकृत कृतियों को हम सैन्धव सभ्यता में चित्रकला का सौन्दर्ययुक्त सृजन कह सकते हैं जिनमें मानवीय कलाप्रियता की झलक मिलती है। हमें ढूढ़ना है कि पृथ्वी के अन्तराल में दबे हुए इस प्रदेश का जन जीवन कैसा था। यहां के राजा रानियों का स्वरूप कैसा था। विलक्षण संस्कृति से युक्त इस विकसित सभ्यता का अन्त कैसे हो गया? युगों के अथक प्रयासों के बाद भी यह सभ्यता, यहां की उन्नत संस्कृति विद्वानों को चुनौती दे रही है कि हमारा यथार्थ मूल स्वरूप विदों के ज्ञान से परे है। यदि हम वास्तविकता की ओर उन्मुख हों तो सत्य है कि अभी तक यहां से प्राप्त टीकरों पर उत्कीर्ण लेख पढ़े नहीं जा सके हैं और वस्तु सत्य यह है कि जब तक हमें उस लिपि का ज्ञान नहीं प्राप्त होता, सैन्धव सभ्यता का वास्तविक रूप अन्तराल में ही विलीन रहेगा और हम मात्र अन्धकार में अटकले ही लगाते रहेंगें।

सैन्धव कालीन सभ्यता के अध्यनोपरान्त हम यह कह सकते हैं कि वहां कला के नाम पर जो सृजित वस्तुएं उपलब्ध हुई हैं उनमें मिट्टी के खिलौने, मूर्तियां, मुहरें तथा पात्र ही प्रमुख हैं। पक्की मिट्टी के खिलौने वहां के जनमानस की लोक–कृतियों का भास कराते हैं। लोक जीवन का सच्चा रूप प्रस्तुत करने वाले मृण पात्र व खिलौने पशु–पक्षियों के आकार वाले वाद्य यंत्र बड़े ही सुन्दर हैं जो पक्के मिट्टी के निर्मित हैं। उनका कलात्मक रूप दर्शनीय है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के भूगर्भ से निकले कला के प्रतीक आकलन के इतिहास पर अपने गहरे पद–चिन्ह छोड़ गये हैं। कांसे की तन्वगी नर्तकी, नर्तनशील पद विहीन प्रस्तरीय धड़, पूंजीभूत बल का अप्रतिम मान मुद्रागत वृषभ, उस सुदूर प्राचीन सभ्यता के संसार में बेजोड़ है।

मूर्तियां भी लगभग सभी मिट्टी के ही हैं। जिनमें पुरूष व नारी दोनों का रूपाकंन है। इन खिलौनों में भी अधिकाशं आकृतियां नारियों के ही हैं, इससे ऐसा लगता है कि ये मातृदेवी के रूप में पूज्य रही होगीं। इन कृतियों में क्षीण कटिवस्त्र, आभूषण, शिरोवस्त्र, दिखलाया गया है। एक नारी आकृति मोटे वस्त्रों में लिपटी हुयी अंकित है। नृत्य करती नृत्यांगना की आकृति अपने ढंग की अनोखी कृति है। इसी प्रकार मुहरें जिन पर नाना देवी—देवताओं के चित्र हैं उनके धार्मिक स्वरूप को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। नारी का सम्मानित रूप उन टीकरों में देखने को मिलता है जो आटो—रिलीफ शैली की मूर्ति जैसी हैं। इनमें उन्हें पूज्य शक्ति के रूप में अंकित कर सिन्धु निवासियों ने अपनी आस्था के पुष्प समर्पित किये हैं।

चित्रांकन की दृष्टि से हमारे समक्ष वहां के प्राप्त पात्र ही आते हैं। जिन पर सरल और सशक्त रेखाओं में पेड़ पौधे, फूल—पत्तियां तथा उड़ते हुए पक्षियों एवं पशुओं का अंकन किया गया है। उछलती हुयी मछलियों और पशुओं का अंकन भी सौन्दर्ययुक्त है। इन चित्रों में आलेखनों की अधिकता है जो ज्यामितीय आकार वाली है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक आलेखन जिनमें वनस्पतियों के साथ—साथ पशुपक्षियों में चित्र अंकित किये गये हैं। वनस्पतियों का अंकन प्राय: दृश्य चित्रों की भांति संयोजित ढंग से किया गया है। ☐





सैन्धव कालीन चित्राकृतियाँ

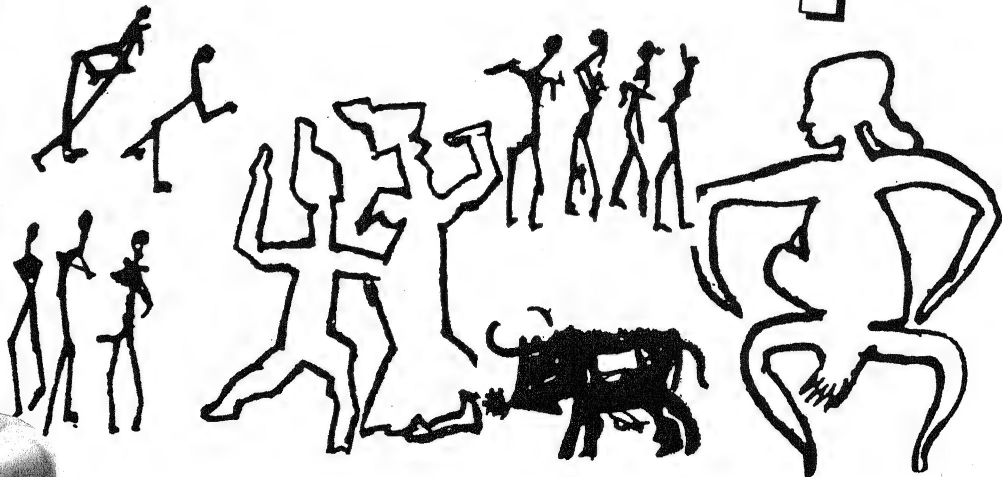
सैन्धवयुगीन नारी चित्रांकन

सैन्धवकालीन पुरातात्विक सामग्रियों के अवलोकन से मानव जीवन के चित्र भी देखने को मिलते हैं। हड़प्पा के पात्रों पर मानवाकृतियों के अंकन पर्याप्त मात्रा में तो नहीं हैं, किन्तु यत्र—तत्र अवश्य दृष्टिगत हो जाते हैं। इसके पूर्व आदिम चित्रण में सौन्दर्य को कठोरता के आवरण में जो समाहित कर दिया गया था अब पूर्ण स्वतन्त्र और सरल तथा छोटे—छोटे रूपों में प्रकृति का सानिध्य पाकर और सुन्दर बन गया है। जिनका प्रभाव बाद की कलाओं पर भी पड़ता हुआ दिखलाई देता है। पात्र चित्रण अधिकाधिक लाल रंगों में हैं जिन पर काले रंगों से चित्रांकन किया गया है। एक पात्र के टुकड़े पर एक मछुये का चित्रांकन मिला है जो अपने कन्धों पर बहगीं लादे हुये लिये जा रहा है, जिस पर दोनों ओर भारी जाल लटक रहा है। इसमें एक मछली को भी चित्रित किया गया है। नीचे नदी का चित्रण तथा पास ही एक मछुआ भी अंकित है जो मछुआरे के दैनिक जीवन को व्यक्त करता है। हड़प्पा की खुदाई में बहुरंगी पात्र भी प्राप्त हुये हैं। लाल, श्वेत, काले, हरे तथा पीले रंग से प्रायः पशु—पक्षियों के चित्रों से अलंकृत इन पात्रों की संख्या कम है, किन्तु सुन्दरता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन आलेखनों में अलंकरणों के अतिरिक्त पशु—पक्षियों की ही अधिकता है। इनमें मानवाकृतियों का सर्वथा अभाव है।

हड़प्पा के एक कब्रिस्तान से लाल धरातल पर काले रंग की चित्रकारी के नमूने मिले हैं जो किनारे—किनारे अंकित है। हड़प्पा के इस चित्रकारी को हम उस युग की परिमार्जित चित्रकारी कह सकते हैं जिनमें पृष्ठ—भूमि को नाना उपादानों से अलंकृत किया

गया है। जैसे बकरे, मयूर, मछलियों, के अलंकारिक रूप आदि कहीं—कहीं मयूरों के पीठ पर अंकित वृत में मानवाकृतियां बनी है। जिनमें कई नारी चित्रांकन भी है, कुछ रेखाओं के अत्याधिक कंपन तथा छोटी—छोटी रेखाओं के समूह से अंकित आकृतियां इस प्रकार लगती हैं जैसे— छाया चित्रण हो। इसी प्रकार हड़प्पा संस्कृति के समान लोथल, और रंगपुर से प्राप्त पात्रों पर भी प्राकृतिक पशु—पक्षियों एवं प्राकृतिक उपादानों के अतिरिक्त विभिन्न मुद्राओं में मानवाकृतियों का चित्रण हुआ है।

सैन्धव सभ्यता भरतीय प्राचीन सभ्यता की आधार शिला है। जिसका प्रभाव हमें सिन्धु के विस्तृत उपत्यकाओं में बिखरे अनेक उपादानों से प्राप्त होता है। इनका विषद् अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जितनी भी वस्तुयें जैसे— मृण मूर्तिया, टीकरें, मुद्राएं, पात्र, प्राप्त हुये हैं। उनमें जीव—जन्तुओं, पशु—पक्षियों, प्रकृति शुलभ पेड़—पौधों, की अपेक्षा मानव आकृतियों का अंकन बहुत कम हुआ है विशेषकर नारी चित्रांकन का सर्वथा अभाव है। सम्भव है यह इसलिए कि नारी का स्थान उस युग के समाज में समुन्नत एवं सम्मानयुक्त था। तभी कहीं भी दैनिक जीवन से सम्बन्धित विषय के अनुरूप नारी चित्रण देखने को नहीं मिलता। मुद्राओं, टिकरों आदि पर उत्कीर्ण नारी चित्रण उनकी शक्ति रूपा, मातृत्व का प्रतीक बनी हुई लगती है। जो सर्वदा, सैन्धवयुगीन मानव के लिए पूज्य रही है। ☐



प्राचीन भारतीय चित्रकला का स्वरूप

भारतीय चित्रकला की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। चित्रकला सम्बन्धी उपनिषदों में भरे पड़े हैं। बौद्ध धर्मग्रन्थ 'विनयपिटक' में (जिसकी रचना चौथी शदी ईसा पूर्व पाली भाषा में की गयी थी) राजा प्रसेनजीत के चित्रण का उल्लेख है। रामायण तथा महाभारतकालीन ग्रन्थों में भी चित्रकला का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। महलों व मन्दिरों की सज्जा नाना लुभावने चित्रों से की जाती थी। उस युग के नर—नारी कितने कलाप्रिय थे इसका प्रमाण हमें बाल्मीकि के उस वर्णन से मिल जाता है जब उन्होंनें बाल काण्ड के छठे सर्ग में नागरिकों का वर्णन किया है। सुसंस्कृत, कलाभिज्ञ, सहृदय एवं सौन्दर्यप्रिय थे। तत्कालीन जनपद उस युग के कला सृजन के केन्द्र थे जहां महाराजाओं की संरक्षता में सौन्दर्यपुंज से रश्मियां बिखेरने वाली कलायें पुष्पित एवं पल्लवित होती थीं। मानव ही नहीं जड़ चेतन, पशु—पक्षी वानर, राक्षस सभी कला की दृष्टि से समुन्नत थे। नारी का हृदय बड़ा ही संवेदनशील था। वह साक्षात सौन्दर्य की देवी थी। सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में पुष्पों का प्रयोग, केशों का श्रृंगार, अंगराग प्रलेपन, चित्र—विचित्र वस्त्रों का व्यवहार, पैरों में आलकतरस, कपोलों पर पत्रावली का अंकन, सब नारी सौन्दर्य को द्विगणित करने में सक्षम थे। कला सृजक के लिए यही नारी प्रेरणा की प्रज्ज्वलित शिखा थी। प्राचीन परम्परा के अनुकूल चित्रकला अतीत भारत में अनुशीलन की जाने वाली कलाओं में से एक थी। बाल्मीकि रामायण में उसका प्रत्येक स्थल पर उल्लेख किया गया है। उनके द्वारा वर्णित चित्रों का उपयोग प्राय: दीवारों, कक्षों, रथों और भवनों के अलंकरण के रूप में ही अधिक हुआ है। महाबली रावण के पुष्पक विमान में भी स्वर्णखचित चित्रकारी का उल्लेख मिलता है।

उसकी भूमि पर पर्वत माला, पर्वतों पर वृक्षावली, शोभायमान थे पुष्पों से लदे वृक्ष अंकित किये जाते थे। दीवालों पर, रथों पर, पताकाओं पर नाना प्रकार के चित्रावली का उल्लेख इस बात को प्रमाणित करती है कि उस युग में चित्रकला अपनी चरमोत्कर्ष को प्राप्त रही होगी। प्रीचन भारत के महान प्रणेता 'कौटिल्य' भी चित्रकला के चरम ज्ञान से दिप्त थे। उन्होंने अपने प्रसिद्धि ग्रन्थ अर्थशास्त्र में विभिन्नचित्र विषयों का उल्लेख किया है। पुराणों में भी ऐसी ही चित्र विधाओं का विशद् विवेचन किया गया है। शिल्प शाास्त्रों में वास्तु कला और प्रतिमा विज्ञान के साथ ही साथ चित्रकला का वर्णन भी प्राप्य है। संस्कृत भाषा के बहुमूल्य ग्रन्थों में भी चित्रकला सम्बन्धी बड़े रोचक उद्धरण दर्शनीय है। कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम कुमारसम्भवम्, मेघदूतम, आदि सभी ग्रन्थें में चित्र—शालाओं का वर्णन मिलता है। वांण की 'कादम्बनी' और हर्ष चरित' के प्रत्येक महल में अलंकृत भित्त चित्रों का वर्णन किया है। भवभूति ने तीन प्रकार के चित्रों का वर्णन किया है। पट्ट, पट और भित्ति। वास्तव में सौन्दर्यानुभूति के क्षेत्र में चित्रकला को अन्य शिल्पों से उत्तम कोटि का समझा जाता था तभी तो चित्र की विशेष महत्ता है——

'चित्रंहि सर्व शिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम्।।

(समरागण सूत्रधार)

महामुनि वात्सायन ने अपने 'कामसूत्र' में कला के छः अंगों का वर्णन किया है जो भारतीय चित्रकला के प्राण तत्व हैं——

रूपभेदाः प्रमाणानि, भाव, लावण्य, योजनम्।
सादृश्यं वर्णिका भङ्.ग, इति चित्र षडंगकम्।।

यह सारे साक्ष्य इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में चित्रकला की अधिकाधिक प्रगति हो चुकी थी और भारतीय चित्रकला का विधवत् शास्त्रीकरण हो चुका था। राजाभोज के सामरागंण सूत्रधार के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय चित्रकार रूपांकन में तथा आकृति आंकने में प्रवीण हो चुका था। भाव,

अभिव्यंजना, प्रमाण, क्षय एवं वृद्धि के अन्य सिद्धान्तों की सूक्ष्मता को भी वह खूब समझने लगा था। प्राचीन भारतीय चित्रकला के साहित्यिक परिप्रेक्ष्य के अतिरिक्त प्रामाणिक रचनात्मक चित्रांकन के इतिहास के अवलोकन से इस बात का आभास हो जाता है कि चित्रकला का उच्चतम् ज्ञान भारतीय चित्रकारों को अतीत से ही था, तभी तो सैन्धवकालीन सभ्यता में प्राप्त मृणपात्रों पर उत्कीर्ण चित्र हमें उस ओर इंगित करते हैं। वास्तव में सैन्धव कालीन सभ्यता के उपरान्त हम ऐसे युग में प्रवेश करते हैं जहां मानव में कला का समुन्नत ज्ञान स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

अब तक प्राप्त हुये भारतीय भित्ति चित्रों में अत्याधिक प्राचीन मध्य प्रदेश स्थित रायगढ़ स्टेट के सिंघनपुर के पास एक चित्र तथा उत्तर प्रदेश में मीर्जापुर से लगभग ४५ मील दूर स्थित लहोरियादह नामक ग्राम के समीप प्रागैतिहासिक युग के गुहा चित्रों का ही नाम विशेष प्रसिद्ध है जो संसार के प्रसिद्ध अल्तामिरा गुफाओं में अंकित चित्रों के समकालीन हैं। इन गुहा चित्रों में लाल, पीले चमकते चटकीले गुलाबी रंगों में शिकार के दृश्य दर्शायें गयें है। भागते हुये या अपनी रक्षा के लिए भयभीत पशुओं के अंकन अनोखे हैं, जिनकी सौन्दर्य मयी चित्र योजना अपने ढंग का अद्वितीय है। सहस्त्रों वर्षोपरान्त हम भित्ति चित्रों की परम्परा में मध्य प्रदेश स्थिति सरगुजा स्टेट के उन चित्रों का अवलोकन करते हैं जिन्हें भारतीय चित्रकला के इतिहास मे 'जोगीमारा' के गुहा चित्रों की संज्ञा दी गयी है। यहीं से हमारे देश की चित्रकला का क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होता है। यही कारण है क्रि 'जोगीमारा' गुहा के चित्रों का विशेष महत्व है। इन गुहा चित्रों का निर्माण काल ईसा पूर्व पहली या दूसरी शती निश्चित किया गया है। हलांकि आज इन गुहा चित्रों का अवेशाष मात्र ही सुलभ है। अधिकांश कृतियां विकृत प्राय हो चुकी हैं। पर कहीं—कहीं कुछ मानवाकृतियां, पशुओं के स्वरूप स्पष्ट झलक जाते हैं। इन अवशेषों में तत्कालीन मानवीय स्वरूप चित्रांकन तथा उनमें आकृतियों के अंकन का ढंग स्पष्ट हो

जाता है। कहना न होगा कि ये अवशेष ऐसे आधार खण्ड हैं जिनपर भारतीय चित्रकला का इतिहास रचा गया है।

उत्तर वैदिक काल तक पहुँचते—पहुँचते सैन्धवकालीन सभ्यता, उस काल की प्राचीन कला परम्पराओं, निर्माण की शैली, विषय सब कुछ बहुत पीछे छूट गई होती है। इस युग के मानव की कलाप्रियता उनमें कला के प्रति अनुराग अत्याधिक बढ़ गया था। हम यों कहें कि उनमें कला के बहिरंग रूप के चित्रण में नहीं अपितु उसके भीतर संचरित होने वाली सौन्दर्यता में रमने लगा था। इसका प्रमाण तो हमें वेद ग्रन्थों से ही मिल जाता है। 'ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में अग्निदेव के चित्रांकन का उल्लेख इस बात को स्पष्ट कर देता है। हमारे धर्मशास्त्र, साहित्यिक ग्रन्थ, जैसे— रामायण, महाभारत, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, चिन्तामणि शिल्परत्न, वात्सायन कृत कामसूत्र, जयदेव के गीतगोविन्द तथा अन्य नाना आख्यानों में कला के प्रति अगाध स्नेह का विस्तृत विवरण मिलता है, जो हमारे प्राचीन चित्रकला के इतिहास पर प्रकाश डालता है।

रामायण काल में कला की चर्मोत्कृष्टता को भुलाया नहीं जा सकता। वह चित्रकला का समुन्नत युग था। मनोरंजनगृह, राजप्रसाद, आश्रम तथा सम्भ्रान्त लोगों के प्रासादों के मुख्य द्वार दीवारोंको नाना रूपाकृतियों से सज्जित किया जाता था। इसी प्रकार उषा और चित्रलेखा का उदाहरण दर्शनीय है। मानवाकृतियों में पुरूष स्त्री सभी का चित्रांकन होता था। नारी तो चित्रांकन की प्रमुख प्रेरणा विन्दु ही रही है। उस काल में चित्रकला को सम्मानयुक्त स्थान प्राप्त था। नाना आलेखनों में मानवाकृतियों का अंकन देखने को मिलता है जिसमें यक्ष, किन्नर, गन्धर्व कन्याओं के चित्रण से यह बात स्पष्ट हो जाती है किनारी को भी चित्र का विषय बनाया गया था। नारी की मोहक भंगिमाओं का अंकन करके उसे आदरयुक्त स्थान दिया गया था, जैसा कि पूर्व अध्याय में वर्णित है संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास कृत 'अभिज्ञानशकुन्तल' में राजा दुष्यन्त अपनी दक्ष तूलिका से शकुन्तला के मोहक भंगिमा का अंकन करते हैं। वह चित्र यर्थातता की चरमसीमा को प्राप्त कर.

लेता है। साहित्यिक ग्रन्थों के आधार पर नारी के सौन्दर्यमयी स्वरूप चित्रण का और यथेष्ट प्रमाण अन्य क्या हो सकता है। रामायण जैसे पावन पवित्र अद्वितीय ग्रन्थ में भी पुष्पक विमान के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। हम देखते हैं कि उस विमान पर नाना सुन्दरियों के चित्रों का उल्लेख मिलता है।

इसी प्रकार महाभारत में भी चित्रकला की पराकाष्ठा की पुष्टि उषा द्वारा राजकुमारी के चित्रण से हो जाती है। तदुपरान्त बौद्ध ग्रन्थों के अनुशीलन से तो ऐसा लगता है कि उस युग में भी चित्रकला का अत्याधिक प्रचलन था, तभी तो स्वयं भगवान तथागत ने अपने प्रिय शिष्यों को चित्रकला में अधिक लिप्त न होने का संकेत किया है। उन्होंने कुछ आदेश भी दिये थे जिनका पालन करना बौद्ध भिक्षुओं के लिए परमावश्यक था। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि—

'तुम पुरूषों और स्त्रियों के, अथवा काल्पनिक चित्र,
अंकित नहीं करोगें।'

इससे इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस समय आलिंगित आकृतियों तथा प्रेम—क्रीड़ा के चित्र अत्याधिक चित्रित किये जाते रहे होंगे, जिस पर रोक लगाने के लिए भगवान बुद्ध को इस प्रकार का आदेश देना पड़ा होगा। ताकि चित्रों के कुप्रभाव से समाज को बचाया जा सके। यही नहीं उन्होंने विम्बसार के चित्रागार को देखना वर्जित घोषित कर दिया था, क्योंकि उसमें धर्म विरुद्ध एवं नारियों के शृंगारिक चित्र अंकित थे।

संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' व प्रतिज्ञायोगन्धरायण तथा दूतवाक्यम् में भी चित्रों की क्रियाविधि का उल्लेख किया है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वासवदता तथा उदयन के विवाह का रोचक वर्णन दर्शनीय है। साथ ही उन दोनों प्रियजनों के पाणिग्रहण संस्कार को चित्रों द्वारा सम्पन्न कराने का उल्लेख है। जो इस बात का प्रमाण प्रस्तुत कर देता है कि ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व भी पुरूष व नारी के मोहक व सजीव चित्रांकन का प्रचलन था जिनका उपयोग मात्र आनन्दानुभव के लिए

ही नहीं धार्मिक कर्मों एवं संस्कारों को पूर्ण करने के लिए किया जाता था। हम देखते हैं कि नारी चित्रांकन का सर्वश्रेष्ठ रूप उस युग में भी प्रचलित था। इसी प्रकार के अनेक ग्रन्थ जैसे—कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पातंजलि द्वारा कृष्णलीला के चित्रों के प्रदर्शन का उल्लेख हमारे समक्ष स्पष्ट रूप से नारी के सम्मान युक्त चित्रण का इतिहास प्रस्तुत करता है। महामुनि वात्सायन कृत 'कामसूत्र' भी इस युग की रचना है जिसमें पूर्व चर्चित कला के खड़ागों का उल्लेख इस बात का द्योतक है कि उस युग के चित्रकार के समक्ष, चित्रांकन हेतु एक स्पष्ट आधार एवं सिद्धान्त था जिसे वह अपने समक्ष रखकर चित्रांकन करता था। महामुनि वात्सायन ने 'प्रमाण' तत्व की विवेचना करते हुए मानवाकृति के संरचना में अनेक प्रमाणिक भेद बतलाये हैं। आचार्य प्रवर की दृष्टि में मानव, राक्षस, कुमार, सेविका, रानी सबके शरीर की बनावट में, माप की भिन्नता होनी चाहिए। यही नहीं व्यवसायी हेतु शरीर का भिन्न प्रमाण, ऋषि, गन्धर्व, दैत्य, दानव, मंत्री, विद्, ब्राह्मण के चित्रों को भद्र प्रमाण यानी १०६ अंगुल का होना चाहिए।

महामुनि के दृष्टि में नारी चित्रंण में भी भिन्न—भिन्न प्रमाण आवश्यक हैं। इसकी ओर इंगित करते हुए कुलीन तथा लज्जाशील नारी का प्रमाण १०४ अंगुल बताया है। यहां उन्होंने वैश्याओं के चित्रांकन हेतु प्रमाण १०० अंगुल निर्धारित किया है। इस ग्रन्थ में वर्णित प्रमाण में नारी चित्रांकन की पुष्टि तो होती ही है, नारी के सामाजिक स्तर का आभास भी मिल जाता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन साहित्य में नारी अंकन का प्रचुर प्रमाण है जो नारी चित्रांकन को ही नहीं उनकी स्थित, उनका स्वरूप तथा सामाजिक मान्यता को अभिव्यक्त करते हैं। हम कह सकते हैं कि प्राचीन युग की चित्रकला का स्वरूप बड़ा ही विस्तृत, समुन्नत एवं हृदयग्राही है जिसमें प्रकृति के सभी उपांगों के साथ हीं मानव, पशु, विहंगों को स्थान देकर भारतीय कला का गौरव वृद्धि किया गया है। अब हम उनके अवशेष जो कुछ इने गिने गुहा चित्रों के रूप में सुलभ हैं उनका अवलोकन करेंगें। ❑

भारतीय गुहा चित्रों में नारी अंकन

प्राचीन भारतीय चित्रकला का क्रमबद्ध इतिहास हमें लगभग ५०० ई० पू० के बाद प्राप्त होने लगता है। वैसे तो इस काल में चित्र साहित्य ही अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध हैं फिर भी जो गुहा चित्र प्राप्य हैं वे भारतीय चित्रकला के अतीत का गौरवमय इतिहास अभिव्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ हैं। इन गुहा चित्रों में जो यत्र तत्र नारी चित्रण दृष्टिगत होता है वो काल की विभिन्नता के कारण विभिन्न रूपों में चित्रित हैं जिनका क्रमानुसार विवेचन आवश्यक है। उस युग में चूंकि चित्र कला अपने चर्मोन्नति की सीमा पर नहीं पहुंच पायी थी, फिर भी मानव, पशु—विहंगों की मोहक भंगिमायें प्राचीन भारतीय चित्रकला की निधि हैं, जिनमें पूर्ण सजीवता हैं।

भारतीय गुहा चित्रों का इतिहास अत्यन्त पुराना है लेकिन प्राचीन गुहा चित्रों के अध्ययन के लिए हमें 'जोगीमारा गुहा' से ही प्रारम्भ करना पड़ता है, क्योंकि यहीं से प्राचीन भारतीय चित्रों का सर्वोपांग विकास दृष्टिगत होता है। जैसा पूर्व उल्लेख है कि यह गुफा मध्य प्रदेश के सरगुजा रियासत की रामगढ़ पहाड़ियों में स्थित है। जहां के चित्रांकन भारतीय गुफाओं में सबसे प्राचीन है। लगभग २०० ई० पूर्व की यह गुफा कभी यहीं स्थित वरुण मन्दिर की देवदासी का निवास स्थल था। यह गुफा छोटे—छोटे कमरों के रूप में निर्मित है, जिसके छत पर विभिन्न विभाजित खण्डों में पुरूष व नारी चित्रण प्राप्य है। 'जोगीमारा गुहा' के विभाजित खण्डों में एक ऐसा चित्र है जिसके केन्द्र बिन्दु में एक वृक्ष के नीचे बैठे पुरूष का अंकन किया गया है जिसके बायीं भाग में नर्तकियों का चित्रण है, दायीं ओर एक हाथी तथा एक जलूस का दृश्य चित्रित किया गया है। एक दूसरे से कुछ भिन्न विषय से लगने वाले ये चित्र ऐसा आभास कराते हैं जैसे बीच—बीच से ये खण्डित हो गये हों जिससे चित्र का तारतम्य विनष्ट हो गया लगता है। दूसरे व तीसरे खण्ड में कई पुरुषाकृतियों का अंकन किया गया है। कहीं—कहीं गोल

परिधि एवं कुछ ज्यामितीय आकृतियों के अवशेष दिखलाई पड़ते हैं। इन सभी चित्र खण्डों को देखने से ऐसा लगता है कि कुछ वर्णनात्मक गाथाओं को दर्शाने के लिए इन चित्रों की संयोजना की गई होगी तथा इनकी रचना चित्रकारों ने भित्ति पटों पर किया होगा, जो समय के हाथों द्वारा क्षत—विक्षत कर दिया गया है। कहीं—कहीं नग्न पुरूष, हाथी तथा पीलवान का भी चित्रण है। प्रसिद्ध चित्रविद् स्व० श्री असित कुमार हाल्दार के विचारों में —— ''ये चित्र लाल गेरूये रंग से बने हैं तथा उनको काले रंग की रेखाओं से उभारने का प्रयास किया गया है।'' एक स्थल पर पुष्पों में से एक पुष्प पर नृत्य करते हुए स्त्री—पुरूष का एक युगल चित्र भी अंकित किया गया हैं कहना कठिन है कि ये चित्र किसके हैं। किसी प्रेमी युगल को प्रकृति के सानिध्य में क्रीड़ा करते चित्रण हैं, या किसी साधारण व्यक्ति का अथवा किसी गन्धर्व युगल का चित्र है। कुछ भी हो, जोगीमारा गुहा के इन चित्रों के अवलोकन के उपरान्त इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अवश्य ही किन्हीं वर्णनात्मक भावना को साकार करने के लिए इन चित्रों का सृजन उस युग के कलाविदों ने किया होगा। जिसमें नारी की मोहक भंगिमायें हैं किन्तु संभ्रान्त नारी के नहीं बल्कि समाज में निम्न स्तर का जीवन—यापन करने वाली नारी के वैश्यारूप का ही चित्रण है। इन चित्रों को देख कर लगता है जैसे ये कृतियाँ किसी अनाड़ी हाथों द्वारा चित्रित हैं फिर भी उनमें भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता विद्यमान है। इस बात को प्रसिद्ध विद्वान श्री हाल्दार तथा डॉ० ब्लाख ने भी स्वीकार किया है कि इन गुहा चित्रों में कई स्त्री नर्तकियों के चित्र हैं। हाव, भाव तथा शारीरिक भंगिमा के अनुसार वे अपने नृत्य कर्म को अभिव्यक्ति कर रही हैं। इस प्रकार नारी के सौन्दर्यमयी अंकन से यह गुहा भी रिक्त नहीं है। हालांकि समय के गतिशील हाथों ने उन्हें विनष्ट करने में कोई कोर—कसर नहीं उठा रक्खी है परन्तु आज भी जो भग्नावशेष प्राप्त हैं वे अपने अतीत गाथा को यथार्थ रूप से व्यक्त करते हैं।

यहां के गुहा चित्र, जिसमें नारी अंकन की सौन्दर्याभिव्यक्ति है उनमें आदिम कला की साम्यता अवश्य है फिर भी नारी मुद्रायें अपनी भावाभिव्यक्ति में पीछे नहीं हैं। इसके बाद भी कई अन्य गुहा चित्रों का अंकन अवश्य हुआ होगा पर हमारे देश की तत्कालीन जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वे चित्र विनष्ट हो गये। इतिहास साक्षी है कि चीनी यात्री फाहयान ने सम्राट अशोक के राजमहल के सौन्द्रर्ययुक्त चित्रकारी को अलौकिक बतलाया था। सम्भव है कि काष्ठ के प्रयोग के कारण उनमें स्थायित्व न रहा और वे समाप्त हो गयी होंगी। 'भाजा' की गुफायें जो बम्बई—पूना रेल मार्ग पर स्थित है गुहा चित्रों के इतिहास में अजन्ता और जोगीमारा के गुहा चित्रों के बीच की कड़ी कही जा सकती है।

अजन्ता के गुहा चित्र और नारी अंकन—

अजन्ता के गुहा चित्रों का निर्माण लगभग १०० ई० पू० में ही प्रारम्भ हो गया था। सातवाहन वंश द्वारा प्रतिष्ठापित राजधानी प्रतिष्ठान जो औरंगाबाद में स्थित है। इसी क्षेत्र में कला तीर्थ अजन्ता के गुहा चित्र अंकित हैं जो लगभग ६०० वर्ष तक की साधना का साकार रूप है। जिनमें अनगिनत नारी की मोहक भंगिमायें, मुद्रायें एवं सौन्दर्ययुक्त मानवीय सृजन है। फरदापुर के समीप प्रवाहित होने वाली सर्पाकार वाघोर नदी ने अपने विस्तृत अंक में हिमाद्रि पर्वत श्रेणियों के विशाल आगारों के मध्य इस कला तीर्थ को छिपा रक्खा है। विशाल शिलाखण्डों के मध्य दूर से ही दलानों की अवली दृष्टिगत होती है। इन्हीं गुहाखण्डों में जिनकी संख्या लगभग २९ है, मानव के कोमलतम् भावनाओं को साकार करने वाली कृतियां चित्रित हैं। जहां प्रस्तुत खण्डों पर मानव पशु विहगों तथा प्रकृति के नाना उपांगों का ऐसा सौन्दर्य आंका गया है, जो वास्तव में त्रैलोक्य का सौन्दर्य पुंज लगता हैं चित्रांकित मानवाकृतियों में उस भावना को पिरोने का सफल प्रयास वहां के कलाविदों ने की है जिससे आज भी हमें प्रेरणा मिलती है।

एक–एक मुद्रा मूक होते हुए भी वाचाल है। अजन्ता के गुहा चित्रों में नारी के अनेकों सौन्दर्ययुक्त भंगिमाओं का चित्रण किया गया है जिससे लगभग सभी श्रेष्ठ रसों की निस्पत्ति होती है। अगणित नारी मुद्राओं से युक्त भित्ति खण्ड कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं लगते। अजन्ता के नारी चित्रों के विषय, अनेकों सौन्दर्ययुक्त भंगिमाओं का चित्रण किया गया है जिससे लगभग सभी श्रेष्ठ रसों की निस्पति होती हैं। अगणित नारी मुद्राओं से युक्त भित्ति खण्ड कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं लगते। अजन्ता के नारी चित्रों के विषय में श्री एम० के० वर्मा का कहना है कि –– "अजन्ता में नारी का चित्रण विशेष महत्वपूर्ण है। अजन्ता की नारी शारीरिक सौन्दर्य के आदर्श रूप में अंकित है। वह सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति कराती है। ग्रीक चित्रांकन यद्यपि अजन्ता के समान ही शारीरिक सुन्दरता के परम उत्कर्ष के लिए हुये हैं पर उनमें भारतीय सौन्दर्यगत सूक्ष्मता का आभास नहीं मिलता।

अजन्ता के गुहा चित्रों का निर्माण लगभग सात सौ वर्षों का इतिहास समेटे हुए है। निश्चय ही सर्वप्रथम मध्य की ९ व १० नम्बर की गुफा का निर्माण हुआ होगा, जिसके भित्ति खण्डों पर स्तूप पूजन का दृश्य अंकित है। इन चित्रांकनों में पुरूष व नारी आकृतियां कुछ भोंड़ी सी लगती हैं जिनमें सौन्दर्ययुक्त भावविन्यास का सर्वथा अभाव दृष्टिगत होता है। इन चित्रांकित कृतियों की वाहय रेखाओं में श्याम रंग का उपयोग, काली रेखायें, जोगीमारा' गुहा के चित्रों से पूर्ण साम्य रखते हैं।

अजन्ता के १६ व १७ नम्बर की गुफाओं में, जो गुप्त राजाओं की देन है, जिनमें अनेकानेक मोहक मुद्राओं का अंकन हुआ है। भारतीय चित्रकला की निधि हैं। ये अपने ढंग की श्रेष्ठतम कृति प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं। १६ नम्बर की गुफा में मायादेवी का अद्वितीय चित्र है जिसमें माया देवी के स्वप्न का चित्रण किया गया है। पर्यकं पर लेटी हुयी मायादेवी अपने गर्भ में प्रवेश करते हुए हाथी का स्वप्न देखती है। ब्रह्माण्ड से ईश्वर के हाथी रूप में अवतरित होने की विलक्षण कल्पना, तूलिका के सहारे

चित्रकार ने बड़े ही चतुरता के साथ की है। इस चित्र में नारी को सृष्टि का जन्मदात्री स्वरूप मानकर अंकित किया गया है। इसी प्रकार सुजाता द्वारा सखियों के साथ भगवान बुद्ध को खीर समर्पित करने का दृश्य चित्र अनोखा है जिसके संयोजन में नारी के पावन रूप का अंकन किया गया है।

अजन्ता के गुहा चित्रों में एक मरणोन्मुख राजकुमारी का विलक्षण चित्र है। वह दुख से पीड़ित सर झुकायें, अधखुले नेत्रों और शिथिल अंगों वाली विषादपूर्ण मुद्रा में चित्रित हैं। दूसरी स्त्री उसे सहारा दे रही हैं। पास ही खड़ी एक दूसरी स्त्री उसके जीवनी शक्ति का परीक्षण कर रही है। उसके मुखमण्डल पर नैराश्य की भावना व्याप्त है। पार्श्व में दासी उसे पंखा झल रही है। नीचे परिवार के लोग चिन्तित मुद्रा में बैठे हैं। एक स्त्री इस दृश्य को देखने में अपने को अस्मर्थ पाती है और अपने हाथ से अपना मुख ढ़ककर रो पड़ती है। ऐसा अद्‌भुत चित्रांकन सम्भवत: संसार में अन्यत्र कहीं देखने को न मिलेगा। यह कृति हृदय के अन्तराल तक पहुंचकर अपनी अभिव्यंजना से मनुष्य के हृदय—पटल पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है। इस चित्र के विषय में जेम्स ग्रिफिथ ने लिखा है कि—— 'मेरे विचार से इस चित्र से बढ़कर कला के इतिहास में दूसरा चित्र नहीं है। इसकी पुष्टि बी० एस० अग्रवाल ने अपने पुस्तक 'गुप्ता आर्ट' में की है। सम्पूर्ण चित्र समूह नारी के विशेष भंगिमा एवं भावपूर्ण मुद्रा से भरा है जिसमें कारूणिक रस प्रवाहित होकर प्रत्येक दर्शक को करूणासागर में डूब जाने को बाध्य करता है। इस कृति विशेष के सम्बन्ध में श्री वाचस्पति गैरोला जी ने लिखा है कि — जीवन के अंतिम घड़ियों में राकुमारी की देह यष्टि में मृत्यु की आलसता जैसे स्पष्ट दिखायी देती है और साथ ही पास बैठी हुई दासियों की करूणाई मुख—मुद्रायें सारे वातावरण को एक विचित्र निर्वेद, शोकाकुल और निराशमय बना देती है। अजन्ता गुहा में एक अद्‌भुत विभत्सरस की निस्पत्ति कराने वाला चित्र है 'सिंहलअवदान' का, जिसमें डांकिनियों का चित्र नारी के विकृति रूप की याद दिलाता है। दोनों ही चित्र नारी के विकृति रूप

की याद दिलाते है। दोनों ही चित्र अपने—अपने स्थान पर प्रयोजनयुक्त हैं। एक में करूण दूसरे में विभत्स रस का अंकन अद्वितीय है।

अजन्ता के गुहा खण्डों में नारी के त्याग की पराकाष्ठा को अभियक्त करने वाला चित्र भी चित्रित है जिसमें तथागत ज्ञानार्जनोपरान्त अपने देश कपिलवस्तु पहुंचते हैं और अपनी ही स्त्री यशोधरा से भिक्षा मांगते है। संसार के स्वामी द्वारा याचना करते देख कर यशोधरा अपने एक मात्र पुत्ररत्न राहुल को श्रीचरणों में समर्पित कर अपने को धन्य मानती है। यशोधरा के मुखमण्डल पर शान्ति व आत्मसन्तोष की छटा विद्यमान है जो भारतीय नारी के त्यागमयी रूप को प्रगट करता है। साथ ही चित्रकार ने भारतीय कला और भारतीय नारी दोनों को ही अलौकिक शक्ति से सम्पन्न कर दिया है।

अजन्ता के दो ऐसे गुहा हैं जो गुप्तकाल के अन्त में बने हैं। वे हैं पहली और दूसरी, जिसमें कई जातक कथाओं के चित्र हैं फिर भी यत्र तत्र नारी चित्रण अवश्य दृष्टिगत हो जाते हैं। इन दृश्य चित्रों के अतिरिक्त कुछ चित्र अत्यन्त उच्चकोटि के हैं जिनमें एक तो पद्मपाणि भगवान बुद्ध का जिन्हें ''अवलोकितेश्वर'' कहा गया है। दूसरा 'मार विजय'' का।

'अवलोकितेश्वर' का चित्र तो विलक्षण ही है जो मानव कल्याण के लिए चिन्तित हैं। मारविजय नामक चित्र भी अत्यन्त सुन्दर कृति है जिसमें हमे उस युग के पुरुष व नारी चित्रण का सौन्दर्ययुक्त रूप देखने को मिलता हैं भगवान तथागत को मध्य में संयोजित किया गया है। वे ध्यान मुद्रा में स्थित है। चारों ओर से मार की सेनायें उन पर आक्रमण कर रही हैं। उनकी साधना में विघ्न डालने के लिए सौन्दर्य की साक्षात प्रतिरूप अप्सरायें नृत्य—विभोर हो रही हैं। कुछ डरावनी आकार की नारी आकृतियां भी हैं। कुछ अपनी मोहक शारीरिक भंगिमा के आकर्षण से भगवान तथागत को पथभ्रष्ट करना चाहती है। पर इनका कोई भी प्रभाव उन पर नहीं है। इस चित्र में नारी की शारीरिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त किया गया है। दूसरी गुफा में महाहंस जातक,



यशोधरा का पुत्र दान (अजन्ता गुहा)

मायादेवी का स्वप्न, बुद्ध—जन्म, अर्चना करते स्त्रियों के चित्र, स्तम्भ के सहारे खड़े द्वार तोरणी रूप में नारी चित्रण हुआ है। यही नहीं प्रकृति के मनोरम वातावरण का आनन्द लेते झूला झूलते नारियों का चित्रण आकर्षक है, जिसमें सौन्दर्य की अभिव्यक्ति चित्रकार की दक्षता को अभियक्त करते हैं। अजन्ता के चित्रों में नारी भंगिमाओं का उल्लेख करते हुए शची रानी गुर्टु का कहना है—— ''नारियों की भंगिमाओं में सौन्दर्य, अनिर्वचनीय कमनीयता और मर्यादित श्रृंगार है। नारी का श्रृंगार मर्यादा से परे नहीं हैं। अजन्ता की कृतियों में चित्रित नारी अंकन भारतीय प्राचीन चित्रकला की निधि है। ''कहीं—कहीं नारी की सहज लुनाई और कोमलता अत्यन्त झीने वस्त्रों में से फूटती नजर आती है, पर उसमें भी उदास गरिमा है जो चित्र में क्षोभ या विकार उत्पन्न नहीं करती। नारी का रूप सर्वत्र मोहक और गौरव पूर्ण हैं।

इसी गुहा में भय मुद्रा में अंकित चित्र भी देखने को मिलता है जिसमें कोमलांगिनी नारी पुरूष के यातना की शिकार बनी हुयी है। कठोर और निष्ठुर शासक के चरणों में सिसकती नारी का चित्रण मानों अपने जीवन की भिक्षा मांग रही है। ऐसे भयानक वातावरण में भी नारी के भययुक्त मुद्राओं का अंकन अजन्ता के भित्ति पटों पर हुआ है। अजन्ता के भित्ति चित्रण में नारी अंकन अपना प्रमुख स्थान रखता है। बौद्ध धर्म से उत्प्रेरित चित्रकार जहां अवलोकितेश्वर की महान् और विशालकाय स्वरूप की रचना करने में सिद्धस्थ थे वहीं नारी के क्षण प्रतिक्षण के सौन्दर्य को चित्रित करने में पीछे नहीं रहा है। जीवन के हर अंग से नारी का स्वरूप जुड़ा हुआ है। वह कभी प्रणय की स्रोत बनकर पुरूष को अथाह स्नेह समर्पित करती है, तो कभी माता बनकर संसार की संरचना में लीन है। नारी के लगभग सभी रूप का, सभी मुद्राओं का अंकन अजन्ता के भित्ति पट्टों पर हुआ है। उस युग के चित्रकारों ने जहां माता के आदरमय रूप में मायादेवी का चित्रण कर उनके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है वहीं उसे 'मारविजय' और 'गृहत्याग' जैसे दृश्यों में कर्तव्यपथ में अवरोधक रूप में चित्रित किया है। नारी



अलंकृत नारी चित्र (अजन्ता गुहा)

के त्याग और आदर्श को चित्रित करने हेतु उसने भगवान बुद्ध के समक्ष पुत्र राहुल को समर्पित कराकर, पति के श्री चरणों में सर्वश्व समर्पित और त्याग की भावना का सौन्दर्ययुक्त चित्रण किया है। यही नहीं जहां इतने उच्च आदर्श की कल्पना व उदात्त चित्रों का सृजन किया गया है वहीं नारी के छलकते सौन्दर्य को ढालने में भी कला आचार्यों ने अपनी अनोखी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है।

सौन्दर्यमयी शरीरिक भंगिमा से युक्त नारी गन्धर्व और अप्सरा के रूप में अंकित कर रस राज श्रृंगार की अभिव्यंजना एक अनोखी कल्पना है। कहीं नारी के चामरधारिणी रूप का, कहीं आशव पान कराती हुयी दासी का भी चित्रण है जो नारी के सेविका रूप को स्पष्ट अभिव्यक्त करते हैं। यही नहीं मयंकमुखी नारी पर कठोर शासक की यातना नारी के अबला रूप को भी अभिव्यक्त करता है। वास्तव में नारी चित्रण अजन्ता की अपनी निधि है। निश्चय ही अजन्ता के चित्रकारों ने ब्रह्मा की इस धरती पर नारी को जिन जिन रूपों में देखा है अजन्ता में उन्हें चित्रित कर अमरत्व प्रदान करने का प्रयास किया है। तभी तो हम कहते है। कि नारी की मनमोहक भंगिमायें अजन्ता की धरोहर है। उसकी चरम उपलब्धि हैं कलाकार ने नारी को हर जगह चित्रित कर मानों सौन्दर्य बिन्दु रख दिया है। जहां नारी के मुखमण्डल पर दुःख की रेखायें अभिव्यक्त करनी परमावश्यक हो गयी है वहां उस सौन्दर्य देवी के मुखमण्डल पर आवरण डाल देने का प्रयास किया गया है। ऐसा लगता है जैसे अजन्ता के चित्रकार को सौन्दर्य बिखेरने वाली प्रेरणा—स्रोत नारी कृतियों में असुन्दर को अभिव्यक्त करना स्वीकार नहीं था। वास्तव में उनकी नारी तो पावन है। सौन्दर्य की गन्ध बिखेरने वाली मलयपुंज है, जो राजाओं और राजकुमारों के कंठ तथा हृदय की शोभा है। रानी का चित्र इसका सुन्दर प्रमाण है— इसमें नारी का रूप अलंकृत ढंग से अभिव्यक्त है।

अजन्ता में नारी चित्रण मात्र आनन्दानुभूति हेतु हुआ है। कन्हैयालाल नन्दन ने कहा है कि——"अनावृत शरीर उनके लिए कोई गोपनीय विषय नहीं रहा। उन्होनें खुले रूप में उसे देखा और

खुले रूप में उसे चित्रित किया। जहां कहीं किसी झीने वस्त्र से शरीर को ढका भी है, वहां शरीर की कान्ति वस्त्र के अन्दर से झांककर कलाकार की सशक्त अभिव्यक्ति और बारीक अध्ययन का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि––– ''अजन्ता के चित्रों में नारी को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। वे नारी मूर्तियां कला की अधिष्ठात्री देवियां है। भारतीय परम्परा के अनुसार नारी को एक आदर्श रूप में स्वीकार किया गया है। उसका चित्रण मानवीय रूप में न होकर सैद्धान्तिक रूप में हुआ है, जो कि सार्वभौमिक सौन्दर्य का प्रतीक है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में जो सीमाहीन सौन्दर्य व्याप्त है उसकी व्यंजना साधन नारी है, जो एन्द्रिय आकर्षण का केन्द्र बिन्दु न होकर आध्यात्मिकता की परिचायिका है। वह गौरवपूर्ण गरिमा की विभूति है।

अजन्ता में नारी स्वरूप को यों विखेर दिया गया है जैसे छिटके हुये चमचमाते हुये नक्षत्रगण हों, जो नारी रूप धारण कर कहीं प्रणयलीन, कहीं प्रतीक्षारत, कहीं स्तम्भों के ओट से झांकते हुये, कहीं अर्ध नंग्न तो कहीं नग्नतम, और कहीं श्रृंगार की प्रतिमूर्ति बनी इत–उत अपनी प्रभा से सारे वातावरण को रहस्यमय सौन्दर्य में डुबों रही हैं। वास्तव में अजन्ता की नारी अभिव्यंजना सम्पूर्ण सृष्टि में सौन्दर्य की रश्मि रेख हैं। यशोधरा, बुद्ध पत्नी गोपा, चित्र इसका प्रमाण है।

अजन्ता के चित्रों में नारी वस्त्राभरण

आधुनिक युग में अजन्ता की गुफायें भारत की प्राचीन संस्कृत की नीव मात्र रह गयी हैं। इन गुफा चित्रों में दीवारों पर रंग और रेखाओं में अतीत के भावमयी मुद्राओं के अतिरिक्त नारी रूप लज्जा का सुन्दरतम् स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वहां चित्रित अनेकानेक पुरूष व नारियों के पूर्ण एवं अर्घ चित्र प्राप्त हैं, जिनसे प्राचीन नारी वेशभूषा का पता चलता है। इन मूक चित्रों में भारतीय अतीत की संस्कृति भरी हुयी है जो आज भी भारतवर्ष के लिए ही नहीं बल्कि सारे विश्व के लिए अध्ययन का विषय बना हुआ है इन चित्रों के अध्ययन व गूढ़तम अवलोकन से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस युग के लोगों का सम्बन्ध सीरिया, ईरान, मध्य एशिया आदि



बुद्ध पत्नी गोपा (अजन्ता गुहा)

देशों से था। तभी हमें इन चित्रों के आधार पर प्राचीन युग के वृहत् भारत की कल्पना साकार सत्य होती दिखलाई पड़ती है।
प्रकृति का स्वभाव ही ऐसा है कि नारी को मनुष्य हमेशा आकर्षण का केन्द्र बिन्दु मानता आया है। यही कारण है कि भारतीय नारियां भी अपनी रूप सज्जा को मानो अपनी विशेष निधि समझती हैं। भारतीय संस्कृति अजन्ता के चित्रों में प्रतिबिम्बित होती है और उस प्रतिबिम्ब में हम प्राचीन सौन्दर्यमय सज्जित रूपगर्विता भारतीय नारी का रूष देखतें हैं। अजन्ता के निर्माणक महान कला आचार्यों ने अपनी तूलिका से यह व्यक्त कर दिया है कि प्राचीन युग में रानियों का क्या स्थान था। उनकी सहचरियों, दासियों का क्या स्थान था तथा उनके वस्त्रों में कितनी विभिन्नतायें थीं। कला पारंगत हाथों ने यह पूर्णरूपेण व्यक्त कर दिया है कि रानियों का रूप किस प्रकार का होना चाहिए। अजन्ता के चित्रों में रानियों को साड़ी और घंघरी पहने हुए चित्रित किया है। साड़ी अधिकतर धारीदार है। एक चित्र में रानी को घांघरा और चोली पहने दिखलाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि रानियां सिले कपड़े पहनती थी। इसके अतिरिक्त कंचुक और स्तनपट्ट पहने चित्रों के भी दर्शन होते हैं।

रानियों की रूप सज्जा——

''अजन्ता के भित्ति चित्रों में रानियों के श्रृंगार के लिए मुकुटों का भी उपयोग किया गया है। रानियां अधिकतर रत्नजड़ित मुकुट धारण किये चित्रित की गई हैं। ये प्राचीन भारतीय समृद्धि के द्योतक हैं। मुकुटों की बनावट भारतीय शिल्प कला की अनुपम देन है। कलामय भव्य आलेखनों से अलंकृत राजमुकुट रानियों की श्रृंगार सज्जा में एक अपना विशेष स्थान रखता है। विभिन्न रूपों में प्राप्य कर्णभार जिसके फलस्वरूप नारियों का रूप द्विगणित हो जाता है दर्शनीय है। करधनियों का अलंकृत रूप भी यहां के चित्रों में प्राप्य है जो अत्यन्त दुर्लभ हैं और जो बड़े ही सजीव रंगों में चित्रित किये गये हैं। उनके दिव्य सौन्दर्य को समय के कठोर हाथ अब तक मलिन नहीं कर पाये हैं। वे आज भी संसार के विद्वानों के लिए अध्ययन के विषय बने हुए हैं।



नारी वस्त्राभरण (प्राचीन चित्रों से)

दासियों की वेश—भूषा—

अजन्ता के भित्तिचित्रों में दासियों के भी पर्याप्त चित्र पाये गये हैं। दासियों के चित्रों में अलंकार की कमी है तथा सादगी है फिर भी उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति अपना महत्व रखते हैं। ''साधारणतया दासियां साड़ी, ढोला, कमरबन्द और हल्की कमर पेटी पहनती थी। उनमें कुछ घंघरियों और कचुंक भी पहने हुये मिलती हैं। इनके अतिरिक्त इनके सिले वस्त्रों में कंचुक के ऊपर जाकेट, बढ़ावदार आगे वाले कचुंक, फ्राकनुमा चोली, हंसकूल का बना पूरे बांह का कंचुक, विचित्र तरह की टोपी के साथ कंचुक कमरदार टोपी और फुलहादार टोपी ही मुख्य रूप से पाये जाते हैं।' यहां के चित्रों में दासियां अक्सर घुटनों तक पहुंचते हुये पूरे बांह का सफेद कंचुक पहनती है। वे कभी—कभी दुहरे जाकेट पहने हुये चित्रित की गयी हैं। १ नम्बर की गुहा चित्र के एक भित्ति चित्र में एक स्त्री कंचुक के ऊपर जाकेट पहने हुये चित्रित है जो चूंदरी से बना है और सामने से खुला हुआ है। पूरे बांह का हरे रंग का कंचुक जो आगे से बन्द है चित्रित है। अजन्ता के चित्रों में अनेक स्थल पर चामर ग्राहिणी दासियों के चित्र हैं। इनके अनेकों रूप, कहीं साड़ी पहने, जिसका एक हिस्सा मोड़कर कन्धे पर डाले हुये चित्र अंकित है। कहीं—कहीं चामर ग्राहिणी दासी को गले में रूमाल बाधें, घघरीदार जाघिया और दुपट्टा, जिसके छोर लहराते हुये अंकित किया गया है।

मध्यवर्गीय नारी वेश—भूषा—

चामरधारिणी दासियों के वेश—भूषा से साम्य रखते हुये मध्यवर्गीय नारियों की भी वेशभूषा है। लगभग सभी गुप्तयुग में नारियों की वेश—भूषा—विशेषकर मध्य वर्ग के नारियों के, एकरूपता लिये हुये हैं। गुफा नं० २ में चपेय जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले तथा फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहने है। दुपट्टे पर के चित्रित अलंकार का प्रतिकृति में तो पता नहीं चलता, पर मूल चित्र में बिल्कुल स्पष्ट चित्रित है। कहीं—कहीं ऐसी नारियों के चित्र हैं जिनके पहनावे ईरानी लगते हैं।

वस्त्राभरणों के अंकन पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस प्रकार अजन्ता के चित्रों में मध्यवर्गीय नारी वस्त्राभरण अन्य स्तर की नारियों से अपनी विलगता अभिव्यक्त करता है।

नर्तकियों की वेशभूषा

डॉ० मोतीचन्द का कहना है कि—— "अजन्ता के १७ नं० की गुफा में मजीरा बजाती हुयी एक परियों का समूह चित्रित किया गया है। वे साड़ी बांधे हैं और सुन्दर कमरबन्द पहने हैं। एक नं० की गुफा में एक भित्ति चित्र में एक नर्तकी लम्बा कुर्ता व कंचुक पहने अंकित की गयी है। इसी गुफा में महाजातक वाले भित्ति चित्र में नर्तकी चुनरी से बना कुरता पहने हुये चित्रित है। वह गहरे भूरे रंग का, वृतों से अलंकृत पूरे बांह का कंचुक पहने हुये है। अजन्ता के चित्रों में नाचने, गाने तथा बजाने वालों के अनेक चित्रण हैं, जिनके वस्त्राभरण, हावभाव मुद्रायें स्पष्ट कर देते हैं कि ये कौन हैं। यही अजन्ता की कृतियों की विशेषता है। अजन्ता के चित्र अपनी भावमयी मुद्राओं के लिए विश्वविख्यात हैं। किन्तु अपनी शैली के अन्यतम सौन्दर्यरूप, साज—श्रृंगार तथा मनोहारी वेश—विन्यास के कारण भी वे अत्यन्त प्रिय माने गये हैं। नारी रूप सज्जा के अनेकों नमूने यहां के चित्रों में अक्षुण हैं।

बाध के गुहा चित्र और नारी अंकन

ऊंची—ऊंची पर्वत श्रेणियों ने जितने सौन्दर्यमय ढंग से हमारी प्राचीन भारतीय निधि को सुरक्षित कर रक्खा है, लगता है समय के कठोर हाथ वहां तक पहुँचने में अपने को अस्मर्थ पाते हैं। कला साधकों एवं भारतीय भूतत्व वेत्ताओं के फलस्वरूप हमारी प्राचीन संरक्षित कला को हमारी आंखों के समक्ष प्रकट होना पड़ा। ग्वालियर रियासत के अमझेरा जिले में प्रकृति के सौन्दर्ययुक्त ऊंची—ऊंची पर्वत श्रेणियों के बीच स्थित बाघ की गुफायें वर्तमान हैं जहां भारत के कला आचार्यो की अटूट साधना गुफाओं के भित्ति चित्रों में अंकित है। वे आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुयी हैं। दु:ख इस बात का है कि बाघ गुफा के निश्चित काल एवं

उन महान कला मर्मज्ञों का जिन्होंने इन गुफाओं का निर्माण किया अभी तक कोई पता नहीं चल सकता है। अजन्ता और बाघ के गुहा लगभग सौ सवा सौ मील की दूरी पर हैं। बाघ के मोहक एवं भावपूर्ण चित्रों को देखने से ऐसा लगता है कि इनका निर्माण अजन्ता के बाद ही किया गया है। सम्भवत: यही कारण है कि अजन्ता के चित्रों के साथ इनकी भी समरूपता है। इस गुफा की समता चाहे जिस गुफा से की जाय इनके चित्रों को देखकर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनका सम्बन्ध बौद्ध जातकों से है। बाघ गुफा में अजन्ता की भांति बौद्धों के कृत्रिम जीवन के चित्र तो नहीं हैं फिर भी इनकी शैली और भाव विन्यासों को देखकर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनका निर्माण वर्णित बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। यों तो इन गुफाओं की संख्या ९ के लगभग है, किन्तु ४ और ५ नं० की गुफाओं के चित्र ही आज पूर्णतया सुरक्षित हैं। अन्य सभी चित्र प्राय: धुंधले तथा अस्पष्ट हैं अथवा विनष्ट हो गये।

नारी की सौन्दर्ययुक्त मुद्राएं—

बाघ गुहा में निर्मित नौ गुफाओं में से ४ नं० की गुफा के चित्र अत्यन्त भावमयी एवं नारी के सौन्दर्ययुक्त मुद्राओं से पूर्ण हैं। यही बहुमूल्य चित्र बाघ गुहा की निधि है। इस गुहा के एक भित्ति खण्ड पर दो स्त्रियां बैठी हुयी चित्रित की गई हैं। जिसमें एक पूर्ण वस्त्रों द्वारा सज्जित है तथा दूसरी नग्न चित्रांकित है। पहली स्त्री अपने साथ के वस्त्र से अपना मुख छिपाकर रो रही है। उसकी दूसरी हस्त मुद्रा कुछ अभिव्यक्त करती हुयी अंकित है। दूसरी नग्न नारी आकृति पहली स्त्री को उदास नेत्रों से देख रही है। यह चित्राकृति किस दृश्य को प्रकट कर रहे हैं, इनके चित्रांकन का उद्देश्य व प्रसंग क्या है कहना कठिन है। हां अपने कारूणिक भावना की अभिव्यक्ति में ये नारी अंकन पूर्णतया सक्षम है। सम्भव है किसी प्रणयी के विछुड़ने के फलस्वरूप ऐसी कृति का अंकन

किया गया हो। ऊपर युग्म कपोत प्रणय के प्रतीक रूप लगते हैं। इसी प्रकार गुफा नं० ५ में एक स्थान पर कुछ भिक्षुओं को उड़ते हुए चित्रित किये गये हैं। ऐसा आभास होता है कि उनमें से मध्य वाली आकृति प्रधान है जिसके चारों ओर चित्रित आकृतियां आकर्षित मुद्रा में अंकित लगती हैं। मध्य की आकृति ऐसी लगती है जैसे मानों कुछ उपदेश दे रही हो। इन्हीं चित्रों के अधोभाग में पांच स्त्रियों के चित्र भी चित्रांकित हैं। इस चित्र को देखकर ऐसा लगता है जैसे किसी गायक मंडली का चित्रण हो। एक आकृति के हाथ में वीणा भी अंकित है। इन सभी चित्राकृतियों का निचला भाग नष्ट हो गया है। आगे के चित्र में हल्लीश का चित्रण अनोखा और अत्यन्त सुन्दर है। दो वृताकार मण्डलों में चित्र संरचना की गई हैं। जिनमें एक में छः तथा दूसरे में सात स्त्रियां चित्रित की गई हैं।' सात स्त्रियां एक पुरूष को घेरे हुये मण्डलाकार नृत्य कर रही हैं। पुरूषों के चित्र भी सौन्दर्ययुक्त एवं सज्जित हैं। विभिन्न वाद्य यन्त्रों से युक्त नारी आकृतियां भावपूर्ण मुद्रा में चित्रित की गई हैं। जिनमें अपूर्व गति विद्यमान है। यह चित्र अनोखा हैं। जिसमें नारी चित्रों का मोहक सौन्दर्य झलकता है। जो भारतीय चित्र कला की धरोहर है। आज बाध के वे बहुमूल्य चित्र समय की गति के साथ विनष्ट होते जा रहे हैं।

'बाघ' के अन्य दृश्याकंन में अश्वारोहियों के दृश्य हैं जो वर्तालाप में लीन है। घोड़ों का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण दर्शनीय है। इनके पीछे हाथियों का जलूस जिनपर राज परिवार आरूढ़ है अंकित है। इन्हीं के ठीक पीछे दो भागों में स्त्रियों के मोहक भंगिमा वाले चित्र भी अंकित हैं जिनमें नारी मुद्राएं अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त बाघ के भित्ति पर यत्र–तत्र खंडित मुद्रायें तथा नारी के हाथ, पैर, चेहरे दीख पड़ते हैं।

बाघ के चित्रों मे एक दृश्य चित्र अद्वितीय है जिसमें दो

शोकाकुल हृदय वाली चिन्तामग्न नारियों का चित्रण हैं। जिनके मुखमण्डल की आभा में शोकमयी भाव स्वतः निरूपित होते हैं। एक स्थल पर चित्रित चार नर्तकियों के चित्र भी कम रोचक नहीं है। उनके वस्त्र विन्यास शारीरिक भंगिमा अभिव्यक्त करती हैं कि ये नगर वधुयें ही हैं। कोई भद्र महिला नहीं। कहीं—कहीं गन्धर्वों की मिथुन आकृतियां भी बड़ी रोचक हैं।

इस प्रकार 'बाघ' की दीवारों पर पर्याप्त अंकों में नारी अंकन करके चित्र विदों ने नारी सौन्दर्य को उजागर करने में कोई कोर—कसर नहीं रैक्खी हैं।

बाघ गुहा के चित्रों में नारी वस्त्राभरण

'बाघ गुहा के उस चित्र में जिसमें सात नर्तकियों के चित्र चित्रित हैं नर्तकी हल्के हरे रंग के पूरे बांह का घुटने तक पहुंचता कंचुक, जो वृत—बिन्दु अलंकार से अलंकृत है, पहने हुए है। कंचुक चेकदार है। उनके मुहरियों एवं चाकदार किनारों पर गोट लगी हुयी है। चौड़ा, कोणाकार गला लगता है पोशाक की सुन्दरता बढ़ाने के लिए लगा दिया गया है। पाजामें हरियालीयुक्त पीली धारियों वाले अलंक्रण से युक्त हैं। उसका सिर सुनहली धारियों वाले रूमाल से ढ़का है। टिपरी बजाने वाली, जो ढोल बजाने वाली के पार्श्व में ही खड़ी है उसके बायें कन्धे पर एक नीले और सुनहरे रंग की धारियों वाला दोहरा रूमाल है। उसके बगल में खड़ी एक दूसरी टिपरी बजाने वाली हरी और नीली धारियों वाला घांघरा पहिने नारी चित्रण है। उसके कंचुक का बादामी गला खुला है। नर्तकी के दाहिनी ओर खड़ी तीन टिपरी बजाने वालियों के बीच वाली एक आसमानी रंग की कचुकी पहने है, जो छाती को ढकती हुई घुटनो तक पहुंचती है।

''बाघ गुहा के भित्ति चित्र में जहां एक स्त्री गायिकाओं का समूह चित्रित है उसमें सबकी सब चोलियां पहने हैं। बीच वाली गायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है। उसके बायीं ओर

वाली नर्तकी मुकुट पहने है और उसका जूड़ा एक श्वेत रंग के रूमाल से ढका हुआ है। उसके नीचे कंचुक पर एक एप्रेन की शक्ल वाला वस्त्र है। नर्तकी के बगल वाली गायिका को आसमानी रंग की अधबहियां चोली पहने चित्रित किया गया है।

''बाघ गुहा' के भित्ति चित्रों में नारी के अनेकानेक अलंकृत रूपों का अंकन किया गया है। नारियों के विभिन्न अवस्थाओं, भावनाओं का जैसे– विरह, प्रेम, मिथुन, नृत्य आदि सभी का अनोखा चित्रण दर्शनीय है। जीवन के यथार्थ रूप का जितना सजीव चित्रण 'बाघ गुहा' के भित्ति पटों पर हुआ है सम्भवत: कला तीर्थ अजन्ता के भित्ति चित्रों में भी नहीं हो सका है।

बादामी के गुहा चित्र——

यह गुहा बम्बई के आइहोल नामक स्थान के समीप स्थित है। भारतीय गुहा चित्रों के इतिहास में बादामी गुहा के चित्रों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यहां के अंकित चित्र बाघ गुहा के चित्रों से भी शैली के दृष्टि से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। इन चित्रों के अवलोकन से यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि यहां के चित्रों पर अजन्ता के चित्र संयोजन का विशेष प्रभाव है। रंग योजना भी 'अजन्ता' व 'बाघ' से मिलता जुलता है। ये गुहा जो संख्या में चार हैं धारवाड़ चालुक्यों द्वारा निर्मित कराये गये थे। जिनका बाहरी भाग तो अत्यन्त सरल एवं सादगीपूर्ण है पर इन गुफाओ के भीतरी कक्ष अपने अद्वितीय कृतियों से भरा पड़ा है।

नारी अभिव्यंजना

भारतीय प्राचीन कला में सम्भवत: कोई भी गुफा ऐसा नहीं होगा जहां नारी का अंकन किसी न किसी रूप में न हुआ हो। वादामी गुहा में भी जो चित्र अवेशष हैं उनमें पर्याप्त नारी मुद्राएं देखने को मिलती हैं। इस गुहा में चित्रित नारो चित्रों में सर्वश्रेष्ठ नारी चित्र उसे माना गया है जिसमें एक स्त्री चिन्तन में लीन एक स्तम्भ के सहारे खड़ी हैं। इसकी शारीरिक भंगिमा अजन्ता के

'द्वारवर्तणी' नामक नारी चित्रण से साम्य रखता है। शरीर की बनावट सौन्दर्ययुक्त है रेखाओं में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। मुख मुद्रा किसी देवदासी के समान लगता है। स्तम्भ के सहारे खड़ी नारी के नेत्र शून्य की ओर टकटकी लगाये हुए हैं जिससे उसके नेत्रों की वेदना मानव के अन्तराल को छू लेती है। श्री रायकृष्णदास के शब्दों में—— ''ऐसा अनुमान है कि यहां की मूर्तियां भी रंगी हुई रही होंगी ओर सचमुच इस गुफा में अति विचित्र क्रिया—कलाप का विस्तार रहा होगा जैसा वहां के शिलालेख में उल्लिखित है।''

एक दूसरा चित्र जिसमें सिंहासनारूढ़ राजा तथा रानी और उनके परिवार तथा परिचारिकाओं का चित्रांकन हुआ है दर्शनीय है। राजा और रानी की मुद्रायें गाम्भीर्ययुक्त एवं नाना रत्नजड़ित आभूषणों से युक्त है। परिचारिकाओं के चित्रों में सुन्दर भावविन्यास एवं क्रियाकलाप देखने को मिलता है। साथ ही वस्त्रावरणों से स्पष्ट हो जाता है कि ये कौन हैं। इसके अतिरिक्त राज समाज में नृत्य का दृश्य भी सौन्दर्ययुक्त है जिसमें नृत्यांगनाओं की सुन्दर मुद्राएं दर्शनीय है। इन चित्रों के अतिरिक्त अलग एक चित्र ऐसा है जिसमें तीन स्त्रियों के चित्र अंकित हैं, जो बाहर की ओर कुछ आश्चर्य मिश्रित भाव से देख रही हैं। इस चित्र को देखने से ऐसा आभास होता है जैसे ये नारियाँ कुछ गुप्त मंत्रणा कर रहीं हैं। पास ही खड़ा एक किशोर है जो अपनी हस्त मुद्राओं द्वारा चित्र में और भी रहस्यात्मक भावना भर रहा है। वास्तविकता तो यह है कि बादामी गुहा में चित्र थोड़े हैं फिर भी अपनी कलाभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इन चित्रों में जहां अन्य मानव चित्रण को स्थान मिला है। वहीं नारी चित्रण को भी आदरयुक्त स्थान मिला है। नारी की सुन्दरतम् भंगिमा को अभिव्यक्त करने वाले चित्रों में शिव परिवार के चित्रण जैसे चित्र भी दर्शनीय लगते हैं। इस विषय के कई चित्र प्राप्त हुये हैं।

'बादामी' गुहा' के चित्रों में जहां एक ओर सौन्दर्य एवं आध्यात्मिकता का सुन्दर अभिव्यक्तीकरण हुआ है वहीं कोमलता का सर्वथा अभाव है। चित्रों में कुछ कठोरता का आभास होता है।

सम्भव है यह शैली की परिवर्तित विधा के कारण हो। अजन्ता के सदृश्य पल्लव अधर, कमलवत नेत्रों का अंकन पर्याप्त रूप से हुआ है। यहां अतिभंग और पौने दो चश्म चेहरों का आलेखन अवश्य दृष्टिगत होता है, जैसा कि उत्तर गुप्तयुगीन मूर्तियों में अंकित होने लगा था। यहां की नारी आकृतियों में कुछ बेडौलपन स्पष्ट परिलक्षित होता है फिर भी भावाभिव्यक्ति में वे पूर्ण समर्थ हैं। कहीं कहीं चित्रों में कुछ विचित्रता भी देखने को मिलती है, पर कुल मिलाकर बादामी गुहा के चित्रों को उत्तम कोटि में रक्खा जा सकता है नारा मुद्रायें तो किसी भी माने में कम नहीं हैं। किसी भी दृष्टि से उनमें कोई त्रुटि नहीं दृष्टिगत होता। ये सजीव सी और भावव्यंजना से परिपूर्ण लगती हैं।

सित्तन्नवासल गुहा के चित्रों में नारी अंकन

ये गुहा चित्र मद्रास प्रान्त के तंजोर के समीप मद्दुकोटा में कृष्णा नदी के विस्तृत तट पर सित्तन्नवासल नामक स्थान पर बने हैं जहां कभी इतिहास प्रसिद्ध शक्ति सम्पन्न, वैभवशाली राजा पल्लव राज महेन्द्र वर्मन प्रथम तथा उसके पुत्र नरसिंह वर्मन का राज्य था। यहां पर लगभग ६५० ई० के मध्य निर्मित कराये गये गुफा मंदिर हैं जहां मन—मोहक भित्ति चित्र अंकित हैं। इस मंदिर के भित्ति पट, छतें, स्तम्भ कभी मनोरम चित्रों से आछादित रहे होंगे। पर आज तो मात्र छतों एवं स्तम्भों पर अवशेष चित्र, मुद्रायें जो अंकित हैं, विद्यमान हैं। ये अतीत के अवशेष चित्र अपनी गाथा को स्पष्ट अभिव्यक्त करते हैं। इन चित्रों की रचना शैली बहुत अंशों में अजन्ता से भिन्न नहीं है।

इस मन्दिर के छत की सज्जा बड़ा ही सौन्दर्ययुक्त है जिसमें मानव पशु विहंगों के अतिरिक्त कमल—वन तथा गुंजन करने वाले पक्षियों, मीन, मकर, कक्षप, जल—जन्तु, अलि समूह इत्यादि का चित्रण किया गया है मानों विश्व संपुजन की कल्पना को साकार रूप में अंकित करना कलाविदों का लक्ष्य रहा हो।

एक स्थल पर दिव्य लक्षणों से पूर्ण पुरूष व भद्र महिला का रोचक चित्रण हैं। राजा रूपी पुरूषाकृति के चेहरे पर महानता एवं

कुलीनता की स्पष्ट छाप है। बायीं ओर प्रसन्न वदना नारी की आकृति कोई महारानी की तरह लगती हैं। स्पष्ट है की इस नारी चित्र में विलक्षण गुण परिलक्षित होते हैं। इस चित्र समूह के अवलोकन से ऐसा लगता है कि यह युगल चित्र राजा महेन्द्र वर्मन और उनकी महारानी का ही है। वैसे बहुत से कला विद् इस चित्र को शिव—पार्वती का चित्र मानते हैं। यद्यपि इस गुहा में जैन विषयों, तीर्थकंरों के चित्र अधिक हैं। कहीं—कहीं ब्राह्मण धर्म के चित्र भी हैं पर उपरोक्त चित्राकृति राजा और रानी के ही हैं। उनमें धर्म विशेष के चिन्ह या लक्षण स्पष्ट नहीं होते। कुछ भी हो कला की दृष्टि से उक्त चित्र अनोखी कृति है। इस सुन्दर गुहा में एक चित्र 'अर्धनारीश्वर' का भी दर्शनीय है। सम्भवत: यह चित्र प्रकृति और पुरूष के संयुक्त रूप क़ा द्यौतक है लगता है ऐसा मानकर चित्रण किया गया है। वास्तविकता यही है कि हमारे धर्मग्रन्थों के अनुसार ब्रम्हा जब सृष्टि की रचना करने मे असफल हो गए तब उन्होंने शक्ति से सहयोग करने की प्रार्थना की। शक्ति ने स्फूर्ति बनकर 'बिन्दु' का रूप धारण किया। शिव ने तेजस का रूप धारण कर उसमें प्रवेश किया। दो बिन्दुओं के सहयोग से नाद तत्व (स्त्री तत्व) उत्पन्न हुआ। नाद और बिन्दु इन दोनों की संयुक्त अवस्था ही अर्धनारीश्वर बन गयी। इसी को संयुक्त बिन्दु भी कहते हैं। यही संयुक्त बिन्दु और पुरूष के बीच का आकर्षण बिन्दु है। इनकी मोहक भंगिमा अर्धनारीश्वर के रूप में सित्तन्नवासल के गुहा चित्रों में देखने को मिलता है।

सित्तन्नवासल के गुहा चित्रों में एक स्थान पर नर्तकियों के चित्र बने हैं जो अत्यंन्त सुन्दर है। इन मोहक चित्रों में नारी के हाथों की भावमयी मुद्रायें सजीव हैं जो मूक होते हुए भी पूर्णतया वाचाल लगती हैं। आकृति का अंकन अर्धनग्न है। शारीरिक भंगिमा रोचक, भावयुक्त गति एवं लय से युक्त है नृत्य में निमग्न नारी अपने भाव प्रदर्शन में इतनी मगन है कि उसको कुछ भी ध्यान नहीं है चित्र में बायें हाथ को कुछ इस तरह मोड़ा गया है जिससे नर्तकी के घूमने की मुद्रा स्पष्ट परिलक्षित होती है। इनके चित्रांकन में सौन्दर्य की

अभिव्यक्ति हेतु चित्रकार ने आभूषणों का अत्याधिक उपयोग कर नारी की नग्नता को छिपाने का असफल प्रयास किया है। फिर भी पीन नितम्ब, घट सदृश्य उन्नत उरोज, सिंह सम क्षीण कटि लावण्ययुक्त नारी देह की नग्न सौन्दर्यता को प्रकट करते हैं। इस चित्र का निचला भाग नष्ट हो गया है फिर भी गति में कोई कमी नहीं आने पायी हैं उसके अंग अंग में थिरकन विद्यमान है। नारी नर्तकी की मुख मुद्रा पर ओज है। नृत्य के ऐसे गतिपूर्ण चित्र भारतीय चित्रकला की अनोखी देन है। इसी गुहा में एक राजा और रानी का भी चित्र है जो विभिन्न अलंकरणों से युक्त है। रानी के चित्र में ओज एवं माधुर्य दोनों ही है। अलंकृत मुकुट सौन्दर्ययुक्त है। इसका विस्तृत विवरण पूर्व ही दिया जा चुका है। पल्लव राजवंश के चित्रकारों की यह धरोहर भारतीय चित्रकला में नारी सौन्दर्य की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। सित्तन्नवासल के चित्रों में पर्याप्त पुष्टता है। उनकी रेखाएं प्रवाहयुक्त होते हुये भी प्रौढ़ हैं। इतनी प्रौढ़युक्त रेखाओं के होते हुये भी कोमलता का कहीं अभाव नहीं है। ये तीनों ही गुण चित्रकला के चरम उन्नति के द्योतक हैं ये स्थिति पल्लव युगीन चित्रकला में भी प्राप्य है। आश्चर्य का विषय तो यह है कि यहीं के पूर्ववर्ती प्राप्य चित्रणें में ह्रास के लक्षण प्रारम्भ हो गये थे, फिर भी सित्तन्नवासल गुहा के चित्र इससे अछूते हैं।

एलोरा के गुहा चित्र

'एलोरा हैदराबाद राज्य में अजन्ता से लगभग पचास मील की दूरी पर स्थित है। यहां की अनेक प्रसिद्ध गुफायें राष्ट्रकूटों की देन हैं। भारत के पश्चिमी भूभाग में चालुक्यों के स्थान पर अब राष्ट्रकूट राजाओं का आधिपत्य स्थापित हो गया था। इन्हीं समृद्धशाली राजाओं ने इन अद्भुत गुफाओं का सृजन कराया था। सबसे ऊपरी भाग में सौन्दर्ययुक्त प्रमिमायें हैं। यहां के शिल्पांकन में वैष्णव, शैव और जैन तीनों सम्प्रदायों का संगम स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

'एलोरा' में लगभग सभी स्थलों पर वास्तुकलाओं के साथ–साथ चित्रकला का भी अंकन हुआ है जिनमें बहुत से चित्र पलस्तर के उसी पर्त पर हैं जो मन्दिर के निर्माणकाल में लगा होगा।

इस प्रकार हम इतना तो अवश्य ही कह सकते हैं कि ये चित्र ७०० ई० के बाद के हैं। वैसे तो यहां के सभी मन्दिरों में वाह्य तथा आन्तरिक कक्ष में चित्र बने हुए होंगें जो समय के कठोर हाथों द्वारा समाप्त प्राय: हो चुके हैं। फिर भी 'नीलकण्ठ', दशावतार, कैलाशनाथ, लंकेश्वर, गणेश आदि मन्दिरों में पर्याप्त संख्या में चित्र विद्यमान हैं। गुफा संख्या पांच में बौद्ध विषयों के चित्र अंकित हैं और जैन मन्दिरों में जैन विषय के असंख्य चित्र हैं।

'एलोरा' गुहा के चित्र लगभग आठवीं शताब्दी के बने हुए हैं। इन चित्रों में कहीं—कहीं दीवारों की परतें उखड़ गयी हैं जिससे उनके निचले सतह पर बने चित्रांकन झाकंते हुए से लगते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाता है कि इन दीवारों पर कई सतहों में चित्रांकन हुआ है। एक के ऊपर एक चित्रों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त धुयें की मोटी तह में भी उन पर एक आवरण सा डाल रक्खा है। इसके दूसरे छोर पर राजस्थानी चित्रण है। जिन्हें चौदहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दी का माना जा सकता है। इसी युग में मध्य—कालीन चित्रकला का विकास हुआ है, जिसे हम अपभ्रशं शैली के विकास का काल भी कह सकते हैं।

'एलोरा' गुहा के चित्रण विषय का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि उस युग के कलाकार इन चित्रों में कोई अलौकिक भावना भरना चाहते हों। सभी चित्र देवलोक से लगतें हैं। सभी अंकित चित्रों में आकाश और स्वर्ग के लक्षणों को अभिव्यक्त करने के लिए उनमें पृष्ठभाग को तथा निचले भाग को बादलों की आभा से पूरित किया गया है। मानो सभी मानवाकृतियां उन्हीं बादलों में से प्रकट हो रही हों।

एलोरा के गुहा चित्रों में नारी भंगिमायें——

'एलोरा के चित्रों में अजन्ता गुहा के चित्रों जैसी सौन्दर्ययुक्त चित्रांकन का सर्वथा अभाव है। शैली की दृष्टि से ये चित्र अजन्ता—परम्परा से भिन्न नहीं हैं, फिर भी उनमें अजन्ता जैसा सौन्दर्य माधुर्य नहीं है। रेखाओं में लय एवं गति का अभाव खटकने लगता है। अंग—प्रत्यंग में कठोरता है। अधिकतर चित्र सवा चश्म चेहरे वाले हैं। चेहरों में नाक अनुपात से अधिक लम्बी है जो परले

गाल के बाहर निकली हुयी है। दूसरी आँख भी चेहरे के बाहर तक अंकित है। ये सभी लाक्षणिक विशेषतायें यहीं से प्रारम्भ होती है। जो आगे चलकर सम्पूर्ण भारतवर्ष की चित्रकला पर आक्षादित हो जाती है।

यहां के चित्रों में कमल पुष्प का चित्रण सुन्दर है। यहीं फूल तोड़ती हुयी अप्सराओं के चित्र भी अंकित हैं। कहीं—कहीं परतें उखड़ गयी है, जिससे उनके अन्दर की सतहों पर बने चित्र उभर आये हैं। इन चित्रों में गरूण पर बैठी एक देवी का चित्र मिला है जो अत्याधिक प्रसिद्ध है। पृष्ठभूमि में इधर—उधर उड़ती हुयी देव कन्याओं के चित्र हैं। नारी को जैसे स्वर्ग लोक में घूमते हुए चित्रांकित किया गया है। मानवाकार गरुण की नाक चोंच के समान बाहर निकली है। बैठी हुयी देवी की हस्त मुद्रायें प्रार्थना मुद्रा में चित्रित हैं। नारी शरीर का ऊपरी भाग अर्ध वस्त्र से युक्त है, केश सज्जा सुन्दर है, आभूषण नाम मात्र को हैं। इस सुन्दर कृति में कई नारी मुद्रायें दर्शनीय है। ऐलोरा गुहा के चित्रांकनों में एक महिषारूढ यम का चित्र सुन्दर है, जिसमें यम की सुन्दर मुद्रा चित्रित हैं। पीछे यमी का चित्रण नारी अंकन को अभिव्यक्त करता है। यद्यपि यह चित्र पूर्ण गतिमय हैं, किन्तु आकृतियों में आकर्षण नहीं है नारी चित्रण सौन्दर्य विहीन लगता है। यहीं कैलाशनाथ मन्दिर में एक स्थल पर संगीत समाज का चित्रण दर्शनीय है। इस चित्र में नर्तकियों की भिन्न—भिन्न मुद्रायें अपने ढंग की अनोखी है। ये सभी मुद्रायें इस युग की प्रचलित चित्र शैली में अंकित की गयी है। कहीं—कहीं इन कलाओं पर पल्लव कला का प्रभाव भी देखने को मिलता है, जो स्वाभाविक है। समय एवं स्थान के सामीप्यता के कारण ऐसा सम्भव है।

'एलोरा' के चित्र जो अपने अन्दर शताब्दियों का इतिहास सजोयें हुये है यदि उनका यथोचित अध्ययन किया जाय और उनके पहली सतह के चित्रों को वैज्ञानिक ढंग से समक्ष लाने का प्रयत्न किया जाय तो एक दो नहीं हजारों चित्र, नारी मुद्रायें, मानव, पशु, विहंगों, के अंकन हमारे समक्ष प्रस्तुत होकर मध्ययुगीन चित्रकला

के बीच एक मजबूत कड़ी जोड़ सकते हैं। जिस सल्तनत काल को हम चित्रकला के इतिहास में अन्धकार काल की संज्ञा देते हैं। सम्भव है। कोई सशक्त आधारशिला मिल सके। क्योंकि सृजन तो मानव की प्रवृत्ति है, किसी युग में कम तो किसी में अधिक हुआ है, होता अवश्य है और होता रहेगा। इससे हम विमुख नहीं हो सकते हैं।

दक्षिण भारत में इस प्रकार के चित्रकला का विकास होता ही रहा, जबकि उत्तर भारत में इसका सर्वथा अभाव रहा है। दक्षिण के त्रावंणकोर में तिरुनन्तिकर्राई मन्दिर में जो लगभग १२वीं शती का है एक अत्यन्त दुर्लभ चित्र शिव—पार्वती का है जिसमें उस युग की सारी विशेषताएं विद्यमान हैं। तिरुमलाई में चित्रों की दो पर्ते हैं, जिनमें ऊपरी पर्त १२ वीं शती की मानी जाती है। इसका विषय भी देव संसार है। यहां जैन श्रावक—श्राविकाओं के चित्र भी हैं जिनके आलेखनों में परली आंख अंकित की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गयी है। इसी प्रकार इनकी रेखाओं में कोणात्मक प्रवृत्तियां भी विद्यमान हैं। इसी प्रकार तंजोर के वृहदेश्वर मन्दिर में बने चित्र उस युग के अच्छे प्रतिनिधि है जिनमें अनेकों नृत्य में मग्न नारी मुद्रायें प्राप्य हैं। सभी चित्र तत्कालीन विशेषताओं से परिपूर्ण हैं।

तत्कालीन चित्रणों के आधार पर नारी मान्यता—

इस प्रकार प्राचीन गुहा चित्रों के आधार पर नारियों का विभिन्न रूप हमारे समक्ष आता है। हम देखतें हैं कि तत्कालीन समाज में नारी को अत्यन्त गौरवशाली स्थान प्राप्त था। कालान्तर में नारी कभी मात्र भोग विलास की सामग्री समझी गयी, कभी घर की दीवारों में बन्द की गई और कभी उसके सम्पूर्ण भावनाओं की अवज्ञा करके पुरूष ने नारी को मात्र खिलौना समझ लिया। हमारे देश के प्राचीन मनीषियों ने नारी को सच्चेरूप में, गरिमायुक्त दिप्त सहित स्वरूप का ही दर्शन किया था। नारी को समाज में समुचित स्थान प्राप्त था। हमारे प्राचीन समाज शास्त्रियों ने स्त्री—पुरूष को जीवन रथ के दो महत्वपूर्ण पहिये मानकर समान अधिकार दिया था। यही कारण था

कि हम नारी को पुरूष की अर्धागिंनी कहते थे। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है—— ''पत्नी पुरूष की आत्मा का आधा भाग है इसलिए जब तक मनुष्य पत्नी को प्राप्त नहीं करता तब तक वह अपूर्ण रहता है। महाभारत का आदि पर्व भी हमें इसी ओर इंगित करता है। ''भार्या मनुष्य का आधा भाग है। भार्या मनुष्य की श्रेष्ठतम् सखी है, भार्या ही धर्म, तीर्थ काम की मूल है।

अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम: सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यत:।।

''अर्थात् जिनकी भार्या साध्वी पतिव्रता हो वे धन्य हैं। धर्माथ आदि त्रिवर्ग भार्या के ही अधीन हैं। यह पुरूष की परम सखा है जिनके भार्या न हो उनके लिए घर और वन दोनों ही समान हैं। भार्या के प्रति सद्व्यवहार करना मानवमात्र का कर्तव्य है।

''धर्म कामार्थ कार्याणि शुत्रुषा कुल सन्तति:।
दारेष्वधीनी धर्मश्च पितृणामात्मनस्तथा।।''

''पत्नी का सदा सम्मान करना चाहिए, वह लक्ष्मी से भिन्न नहीं है। उसके साथ पुरूष का जन्म जन्मान्तर का साथ होता है। पत्नी मातृत्व सम्मान के योग्य है। गृहस्थ का आनन्द धर्म आदि सभी कुछ पत्नी के अधीन है अत: उसके प्रति असद्व्यवहार उचित नहीं हैं।

''भार्यावन्त: पमोदन्ते भार्यावन्त: त्रिया युक्ता:।
त्रिय: एता: स्त्रियोनाम सत्कार्या मूतिमिच्छिता।।''

''नारी जाति पूज्य है यह उद्घोष महाभारत में बार—बार हुआ है। प्राचीन भारत में विवाह के अनन्तर स्त्री और पुरूष का पारिवारिक जीवन में समान अधिकार रहता था। ''महाकवि कालिदास ने अज विलाप के अवसर पर अज के मुख से स्त्री के महत्वपूर्ण स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है। सन्तान की सुख—सुविधा हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना जो जननी का गुण है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में उसके महिमामयी महत्व को समझा गया था और भारतीय दक्ष कलाकारों ने भी इस रूप की अनगिनत भावपूर्ण चित्रों में सर्जना करके अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किया था। प्राचीन

भारतीय चित्रकला के इतिहास में माता शिशु की अनेक चित्राकृतियां दर्शनीय हैं।

नारी जननी रूप में——

ममता और सर्वस्व त्याग की भावना को अभिव्यक्त करने वाले भावमय चित्र का अंकन अजन्ता के भित्ति पट्ट पर किया गया है। जिसमें माता योशधरा अपने परमप्रिय एकमात्र पुत्र को अपने पति के श्री चरणों में समर्पित करती हुई चित्रित की गयी है। अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को नारी, पति के चरणों में भिक्षा रूप में अर्पित कर महान त्याग की भावना को व्यक्त करती हुयी चित्रित की गयी है। चित्रकार के इस अनोखी कृति में भाव विन्यास का अद्वितीय रूप दर्शनीय है। भगवान बुद्ध की विशाल आकृति अपनी महानता एवं तेज से परिपूर्ण हैं। द्वार पर खड़े एक हाथ में भिक्षा पात्र लिए दूसरे में वस्त्र तथा दण्ड लिए हुए खड़े हैं। मुखमण्डल की आभा दिप्त है पर अपार शान्ति भी विद्यमान है। यशोधरा के मुखमण्डल पर सर्वस्व समर्पण की भावना स्पष्ट परिलक्षित हो रही हैं। कहीं भी उस नारी आकृति में किंचित क्षोभ की भावना का अंकन नहीं हैं बल्कि वह नारी यशोधरा आत्मगौरव की भावना से पूरित है। ऐसी अनोखी रचना का सृजन गुप्त राजाओं की देन हैं। नारी के सुकोमल हृदय में जहां मातृत्व का ममत्व एवं मोह है वहीं त्याग की भावना बलवती हो उठी है। इस प्रकार का यह सौन्दर्ययुक्त भावपूर्ण चित्र भारतीय प्राचीन कला की निधि है।

नारी सहचरी रूप में——

अतीत युग में गृहणी और जननी के अतिरिक्त नारी का सहचरी रूप भी बड़ा ही महत्वपूर्ण माना गया है। परिवार में सदा दायित्व का बोझ ढोते–ढोते पुरूष और स्त्री का जीवन मात्र बोझ न बन जाय इसलिए भारतीय नारी पुरूष की सहचरी बन कर उसका साहचर्य प्राप्त करती और मानवीय जीवन का सुख भोगती थी। यही नहीं प्रकृति ने उसे सौन्दर्य, लावण्य, माधुर्य और

कला—प्रेम जैसे नाना गुणों से पूरित किया है। इससे वह सुख की संरचना करती है। इसके स्नेहमयी विस्तृत आंचल के नीचे दिन भर का थका पुरूष अपने जीवन के कष्ट को भूल जाता है। हमारा ६ धर्म हमारे संस्कार नारी को पुरूष के सहचरी रूप में बने रहने की पुष्टि कर देता है। जब वह पाणिग्रहण संस्कार को पूर्ण करती है तब 'सप्तपदी' में वर—वधू को एक साथ धीरे—धीरे चलना पड़ता है जो उसी चिर मैत्री भावना का परिचायक है।

प्राचीन भारतीय चित्रकला में नारी को पुरूष के सहचरी रूप में अंकित करने वाले अनेकानेक चित्र उपलब्ध हैं। अजन्ता में तो नारी पुरूष के साथ जगह जगह पर चित्रित है। कहीं साथ—साथ भ्रमण करते, तो कहीं क्रीड़ारत, व कहीं विभिन्न वाद्यों को बजाते हुये चित्रित किया गया है। गन्धर्वों के चित्रों में नारी पुरूष की सहचरी बनकर यत्र—तत्र अपनी सुन्दर भावभंगिमा अभिव्यक्त करती हुयी चित्रित की गयी है। 'सित्तनवासल गुहा' के चित्रों में दिव्य पुरूष के साथ दिव्य गुणों से आलोकित नारी रचना इसका सुन्दर उदाहरण है। जिसे राजा और रानी के रूप में माना गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन चित्रकला में नारी के सहचरी रूप का अंकन बहुतायत में भित्त पटों पर देखने को मिलता है। प्राचीन युग की यह कृतियां अपने काल के वस्त्राभरण को तो व्यक्त करती ही हैं साथ ही समाज में नारियों की स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती है। गृहणी सविच सखी और ललित कला सीखने में तू मेरी प्रिय शिष्या थी। निर्दय भाग्य ने तुझे मुझसे अलग कर मेरा क्या न छीन लिया।

गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ:।

प्राचीन भारत में स्त्री विवाह के साथ ही साथ अपने पूर्ण दायित्व को जान लेती थी। वह इस बात से पूर्ण विज्ञ हो जाती थी कि उसका जीवन मात्र वासना पूर्ति और मनोरंजन हेतु ही नहीं है बल्कि उसे अपना दायित्व भी सम्हालना है। उसे गृहणी माता एवं सहचरी के बोझ को भी वहन करना है और उस युग की नारी

अपने दायित्व के हर अंश पूर्ण सफलता के साथ निर्वाह करती थी। तभी वह अपने घर को स्वर्ग के समान बनाने में समर्थ थी। मनु महाराज ने तभी तो कहा था कि जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। जहां इन्हें पूजा नहीं जाता वहां के सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। जहां स्त्रियां दुखी नहीं होती उस कुल की वृद्धि होती है। जहां स्त्रियां दुखी रहती है। वह कुल शीघ्र विनष्ट हो जाता है। जिन घरों में स्त्रियां अधिकतर अपमानित होकर श्राप देती हैं वे पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। मानो उन्हें किसी कृत्या द्वारा नष्ट कर दिया गया है। इसलिए वस्त्राभूषण भोजन आदि द्वारा उत्सव पर्व पर कल्याण के आकांक्षी पुरूषों द्वारा इनकी सदा पूजा की जानी चाहिए।

''पूज्या भूंषयितव्याश्च वहुकल्याणमीप्सुभिः।
यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमयन्ते तत्र देवता।।''

प्राचीनकाल में अपने दायित्व के बोझ को निष्ठापूर्वक वहन करने के कारण नारी को देवी के समान पूज्य माना जाता रहा है। ये नारी की प्राचीन मान्यता रही है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में इस तरह के चित्रों का सर्वथा अभाव है। किन्तु नारी के सम्मान पर कोई आंच नहीं आने दिया गया है। सैन्धव आराधना के अनेकानेक प्रमाण हैं और आगामी युगों में, जब से चित्रकला का तिथि—क्रम इतिहास सुलभ है नारी का समाद्रित रूप अवश्य ही हमारे समक्ष अपनी गरिमा को अभिव्यक्त करता है। प्राचीन चित्रों में भारतीय नारी के श्रेष्ठ त्रिरूप का चित्रण है।

साहित्य और कला समाज का दर्पण है। उसमें तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र प्रतिबिम्बित होता है। अजन्ता के चित्रों में उस युग के प्राचीन नारी के हर रूप का रूपांकन हुआ है। नारी गृहणी है। इसका एक नहीं अनेक भावपूर्ण चित्रण अजन्ता की दीवारों पर देखे जा सकते हैं। अपने दैनिक कर्मों में लिप्त नारी के चित्रण दर्शनीय हैं। अजन्ता के चित्रों में तथागत की माता मायादेवी

के अनेक ऐसे चित्र हैं जो भारतीय नारी के उदात्त चरित्र के द्योतक हैं, जिसमें भारतीय गृहणी के सम्पूर्ण भावभंगिमा का समावेश कराया गया है। भगवान बुद्ध के जीवन के बहुसंख्यक वर्णनात्मक चित्र उरेहे गये हैं। अतीत के कथाओं से वह सम्बन्धित जातक कथाओं के चित्रण में भी कुशल गृहणी कर्म का अभिव्यक्तिकरण देखने को मिलता है।

नारी गृहणी रूप में——

प्राचीन भारतीय समाज में ''स्त्री गृहणी रूप में परिवार के सभी सदस्यों के सुख—सुविधा का ध्यान रखती थी। घर की स्वच्छता, भोजन की व्यवस्था, अतिथि सत्कार, संतान का पालन—पोषण आदि कार्य जो गृहणी के प्रमुख कर्तव्य हैं करती थी। इस कार्य में संलग्न अजन्ता की नारियां अपने दायित्व का पालन करती हुई चित्रित की गई हैं। आदि युग से हमारे देश में नारी का दूसरा महिमामय रूप माता का था। इस रूप में वह अपने परिवार हेतु त्याग, ममता और तप जैसे पावन भावना को पूर्ण करती थी। अपने प्रिय सन्तान हेतु सभी दैवी अपवादों को सहन करना अपना कर्तव्य समझती थीं।

आलेखन अलंकारों में नारी अंकन——

प्राचीन भारतीय चित्रकला के इतिहास में आलेखन अलंकरणों का विशेष महत्व है। प्राचीन गुहाचित्रों में यत्र—तत्र आलेखनों का अंकन हुआ है। इनका अंकन इस लिए हुआ है कि आलेखनों से रिक्त स्थानों की पूर्ति हो जाता है तथा इनके सज्जा में सजीवता आ जाती है। स्तम्भों पर, भित्ति पटों के बाहरी भाग पर, छतों पर नाना रूपों में अलंकारिक आलेखनों का अंकन हुआ है। भारतीय प्राचीन गुहा चित्रों में तो आलेखनों की भरमार ही है। 'बाघ' के गुहा चित्रों में अत्यन्त सजीव अलंकारिक आलेखन देखने को मिले हैं, जिनमें मानव पशु—विहंगों के मनोरम रेखांकन अपना अलग ही एक संसार समेटे हुए लगते हैं। क्या पुरूष आकृतियां, क्या विनोद—युक्त



नर्तकी (राजस्थानी शैली)

आकार, नारी आकृतियां सभी कुछ उस अलंकारों में चित्रित है। लगता है उस युग के चित्रकारों ने किसी भी वस्तु को छोड़ा नहीं है। आलेखनों में सारे संसार के जड़ चेतन एवं विश्व को समाहित कर देना चाहा है। कहीं—कहीं पीले रंगों के अनेक रंगत बनाकर इन्हें और स्पष्ट करने का प्रयास भी यहां के कलाकारों की अपनी विशेषता है।

इसी प्रकार अजन्ता के गुहा चित्रों में अलंकारिक आलेखनों की बहुतायत है। इनके अवलोकन से ऐसा आभास होता है कि इनमें एक अविरल लय पैदा करने में विशेष सफलता प्राप्त की है। अजन्ता के गुहा खंडों में इतने आलेखनों का अंकन देखने को मिलता है जैसे— चित्रकारों ने इसकी अलग ही कोई योजना बनाकर इनका निर्माण किया हो। ये अलंकारिक आलेखन विशेषतया पाटनों पर उरेहे गये हैं। बांध गुहा की तरह यहां सुन्दर कमल वन दर्शनीय है। पहली और दूसरी गुहा खण्डों की छतें तो आलेखनों से ढंकी हुयी लगती है। इसमें हिरौंजी और वरडम्बर रंगों से जमीन रंग कर लाल—पीले व श्वेत रंग से अनोखे मोहक भवयुक्त आलेखनों का सृजन किया गया है। यों तो यहां उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र रूप से नारी अंकन नहीं किया गया है, पर कमल नालों के समानान्तर कोने में मिथुन आकृतियों में नारी की सौन्दर्यमयी भंगिमा अवश्य दृष्टिगत हो जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि अजन्ता के चतुर चित्र शिल्पियों ने मानवाकृतियों के साथ ही साथ कमल, पुष्प, हंस, हाथी इत्यादि नाना पशु विहंगों का सृजन किया है। जहां इस चेतन जगत के इतने उपादानों का एक साथ अंकन यहां के कलाविदों ने किया है वहां कैसे सम्भव था कि संसार को जन्म देने वाली नारी की मोहक भंगिमा का सृजन इन आलेखनों में नही होता।

अजन्ता के मोहक भित्ति खण्डों में चित्रित सौन्दर्य—युक्त पुरूषालिंगित नारी आकृतियां जिन्हें 'मिथुनाकृति' की संज्ञा दी जाती है अपनी श्रृंगारिक अभिव्यक्ति के लिए विख्यात हैं। कमल के

सुन्दर पुष्पों के साथ कमल नाल में अभिव्यक्त की गई लोच एवं लय की स्पष्ट छाप उन नारी आकृतियों पर पड़ा है और तभी उन कृतियों में सजीवता, कमनीयता एवं माधुर्य विद्यमान है। लगता है ये मिथुनाकृतियां छतों और भित्ति स्तम्भों के कोनों पर नहीं बल्कि कहीं आकाश में उड़ती हुई अभिव्यक्ति की गयी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अजन्ता, बाध, बादामी, एलोरा, सित्तन्न वासल किन्हीं भी गुहा चित्रों में जहां नारी का अंकन स्वतन्त्र रूप में हुआ है वहीं चित्रित आलेखनों में भी उनका पूर्ण सफलता के साथ संयोजन हुआ है जो प्राचीन चित्रकला की अपनी विशेषता रही है। ❑



मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में नारी

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्यकाल को अध:पतन का काल कहा जाता है, क्योंकि भारतीय भूस्थल पर यह समय उथल–पुथल का युग था। देश पर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। ऐसी स्थिति में यहां के राजा महाराजा अपनी मातृभूमि की रक्षा में ही संलग्न थे। उन्हें देश की प्रगति की चिन्ता कैसे होती? भारत देश की सांस्कृतिक चेतना प्राय: कुंठित हो चली थी। प्रत्येक क्षेत्र में सृजन की श्रृंखला छिन्न–भिन्न होकर टूटती जा रही थी। लोगों के लिए अपने कर्तव्य को पूर्ण करना अत्यन्त कठिन हो गया था। धार्मिक दृष्टि से मध्यकाल का पूर्वार्ध बौद्ध धर्म के पतन का युग था। हिन्दू धर्म जागृति की ओर अग्रसर हो रहा था। भारत में परस्पर दो संस्कृतियां द्वन्द कर रही थीं। हिन्दू संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा था। चूंकि राजाओं का भारतीय संस्कृति से, प्रगति का तारतम्य टूट रहा था ऐसी स्थित में कला की प्रगति का अवरुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही था, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब हम भारतीय कला का सर्वेक्षण करते हैं तो ऐसा लगता है कि मध्यकाल में चित्रकला की प्रगति तो अवश्य रूकी किन्तु शिल्प व वास्तुकला में आशातीत उन्नति हुयी। यदि हम ८वीं से १० वीं शदी के दो सौ वर्षों के इतिहास को भारतीय वास्तु एवं मूर्ति शिल्प कला का स्वर्णकाल कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

यह पूर्ण यथार्थ सत्य है कि हिन्दू जन मानस अपने धार्मिक जीवन में एक झंझावात का सामना कर रहा था। इसे कोई मार्ग–दर्शन देने वाला नहीं था। भटकती हुयी जनता को कुछ समय के लिए गुरुनानक, कबीर जैसे सन्तों से कुछ प्रकाश मिला और

सुन्दर पुष्पों के साथ कमल नाल में अभिव्यक्त की गई लोच एवं लय की स्पष्ट छाप उन नारी आकृतियों पर पड़ा है और तभी उन कृतियों में सजीवता, कमनीयता एवं माधुर्य विद्यमान है। लगता है ये मिथुनाकृतियां छतों और भित्ति स्तम्भों के कोनों पर नहीं बल्कि कहीं आकाश में उड़ती हुई अभिव्यक्ति की गयी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अजन्ता, बाध, बादामी, एलोरा, सित्तन्नवासल किन्हीं भी गुहा चित्रों में जहां नारी का अंकन स्वतन्त्र रूप में हुआ है वहीं चित्रित आलेखनों में भी उनका पूर्ण सफलता के साथ संयोजन हुआ है जो प्राचीन चित्रकला की अपनी विशेषता रही है। ❑



मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में नारी

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्यकाल को अध:पतन का काल कहा जाता है, क्योंकि भारतीय भूस्थल पर यह समय उथल—पुथल का युग था। देश पर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। ऐसी स्थिति में यहां के राजा महाराजा अपनी मातृभूमिं की रक्षा में ही संलग्न थे। उन्हें देश की प्रगति की चिन्ता कैसे होती? भारत देश की सांस्कृतिक चेतना प्राय: कुंठित हो चली थी। प्रत्येक क्षेत्र में सृजन की श्रृंखला छिन्न—भिन्न होकर टूटती जा रही थी। लोगों के लिए अपने कर्तव्य को पूर्ण करना अत्यन्त कठिन हो गया था। धार्मिक दृष्टि से मध्यकाल का पूर्वार्धं बौद्ध धर्म के पतन का युग था। हिन्दू धर्म जागृति की ओर अग्रसर हो रहा था। भारत में परस्पर दो संस्कृतियां द्वन्द कर रही थीं। हिन्दू संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा था। चूंकि राजाओं का भारतीय संस्कृति से, प्रगति का तारतम्य टूट रहा था ऐसी स्थित में कला की प्रगति का अवरुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही था, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब हम भारतीय कला का सर्वेक्षण करते हैं तो ऐसा लगता है कि मध्यकाल में चित्रकला की प्रगति तो अवश्य रूकी किन्तु शिल्प व वास्तुकला में आशातीत उन्नति हुयी। यदि हम ८वीं से १० वीं शदी के दो सौ वर्षो के इतिहास को भारतीय वास्तु एवं मूर्ति शिल्प कला का स्वर्णकाल कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

यह पूर्ण यथार्थ सत्य है कि हिन्दू जन मानस अपने धार्मिक जीवन में एक झंझावात का सामना कर रहा था। इसे कोई मार्ग—दर्शन देने वाला नहीं था। भटकती हुयी जनता को कुछ समय के लिए गुरुनानक, कबीर जैसे सन्तों से कुछ प्रकाश मिला और

भारत में एक बार पुन: धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया, किन्तु निर्गुण उपासना से लोगों को आत्म सन्तुष्टि न मिली। अन्त में सगुणोपासना का प्रसार हुआ। इन धार्मिक आस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु नाना सौन्दर्यमय भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। यह अर्चना की नव विधि अत्यन्त अलंकारिक एवं चित्रमय थी जिसके फलस्वरूप ऐलोरा, ऐलीफैन्टा, के सौन्दर्ययुक्त विलक्षण मंदिरों का निर्माण हो सका। मध्यभारत में चन्देल राजाओं ने नारी व पुरूष के अनेकों मुद्राओं का विलक्षण रूप में अंकन कराकर शिल्प जगत में अद्वितीय ख्याति अर्जित की थी। आज भी उनके द्वारा बनवाये गये खजुराहों समूह के भव्य मन्दिर भारतीय कला व संस्कृति के धरोहर हैं। इस युग में जो चित्राकृतियां हुई हैं उनकी संख्या बहुत कम है। अधिकतर ये चित्र ताड़ पत्र पर ग्रन्थों में चित्रित हैं। अलग स्वतन्त्र रूप से भित्ति चित्रों के रूप में किन्हीं इने गिने मंदिरों के भित्ति पटों पर बने हैं। उनमें से कुछ तो समय के प्रवाह में विलीन हो गये या जो कुछ अवशेष बचे असुरक्षित होने के कारण समाप्त प्राय है। इस काल के जो चित्र प्राप्त हैं उनकी संख्या नहीं के बराबर है। चित्रकला के इतिहास में ये चित्र निम्न श्रेणी के तथा प्रगति के दृष्टि से नैराश्यपूर्ण हैं। कुछ चित्र एलोरा के मन्दिर में चित्रित हैं जिन्हें छोड़कर अन्यत्र इस युग के चित्र भित्तियों पर बने हुये बहुत कम मिलते हैं जो मिलते भी हैं उनके विषय में कुछ कहा भी नहीं जा सकता, क्योंकि वे अपने अतीत के सौन्दर्य को खो बैठे हैं। हां इस काल में चित्रकला सम्बन्धी साहित्य का सृजन अवश्य ही पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

सल्तनत काल में ललितकलाओं की विशेष उन्नति नहीं हुयी, कारण कि उस युग के शासक कला के प्रगति विशेषकर चित्रकला के प्रगति में बड़े ही उदासीन थे। स्थापत्य कला के विकास का ही इतिहास प्राप्त होता है। वास्तव में चित्रकला में लगभग तीन सौ वर्षों का इतिहास अन्धकारमय है, जबकि भारत में विदेशी शक्तियों का प्रादुर्भाव हो चुका था। चित्र कला के कुछ नमूने वस्त्रों एवं दीवालों पर यत्र देखने को मिल जाते हैं। अन्यत्र ये कला

पुस्तकों में ही सीमट कर रह गयी है। ऐसा आभास होता है कि इस्लाम धर्म में चित्रांकन वर्जित होने के कारण सुल्तान चित्रकला के प्रति उदासीन हो गये थे जो स्वाभाविक है वे इसे प्राथमिकता नहीं देते थे। यही नहीं जो कट्टर प्रकृति के मुसलमान थे वे तो जीव—जन्तुओं, पक्षियों आदि का भी चित्रांकन करना पाप समझते थे। ऐसी स्थिति में मानवाकृतियों का अंकन और उसमे भी नारी का, जो इस युग में आवरण में ढकी हुयी थी अंकन करना असम्भव ही था। इसी धार्मिक प्रवंचना के कारण सुल्तान चित्रकला के उत्कर्ष की ओर से पूर्णतया विमुख थे। इन शासकों से न तो चित्रकला को किसी प्रकार का प्रोत्साहन ही मिला और न संरक्षता ही। मात्र कहीं—कहीं मिट्टी के अलंकृत पात्रों का दर्शन अवश्य हो जाता है। चित्रकला इन फूल—पत्तियों के आलेखनों तक ही सीमित रह गयी थी। पात्रों की सज्जा का अधिक चलन था। पात्रों की सज्जा के लिए भी मात्र बेलवूटे, अलंकरण और रेखाओं का प्रयोग होता था। कहीं भी मानवीय चित्रण देखने को नहीं मिलता। कहीं—कहीं किन्हीं सुल्तानों के कुछ महल सुन्दर चित्रों से अलंकृत थे। इससे इतिहासकार भी पूर्णतया सहमत हैं। यह भी माना जाता है कि उन चित्रों में तत्कालीन समाज का चित्रांकन भी अवश्य ही हुआ होगा। ''फिरोजतुगलक ने लिखा है कि उसने इन दीवालों पर बने चित्रों को मिटवा दिया था।'' फरमानों के आधार पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि उन चित्रों में भी मानवीय चित्रण अवश्य हुये होंगें जो इस्लाम धर्म के सर्वथा विरूद्ध थे, जिन्हें फिरोज तुगलक ने मिटवाने का आदेश दिया था। उन मानवीय चित्रणों में नारी अंकन भी अवश्य ही हुआ होगा। इससे विमुख नहीं हुआ जा सकता। दुर्भाग्य है कि वे चित्र आज उपलब्ध नहीं है।

भारतीय चित्रकला आश्रय विहीन होकर समाप्त हो गयी हो ऐसी बात नहीं है। उस युग के हिन्दू कलाकार अपनी चित्रविधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाये हुये थे। प्रसिद्ध विद्वान कुमारस्वामी के अनुसार अकबर के पूर्व मुसलमानों के चित्रकला का

कोई स्कूल हो या इनकी कोई चित्र शैली हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ साहित्यिक उदाहरणों से यह पता अवश्य चलता है कि चौदहवीं शताब्दी के कुछ मुस्लिम शासक विशेषत: अलाउद्दीन, फिरोजशाह ने अपने व्यस्ततम जीवन में भी मनोरंजनार्थ कुछ कलाकारों को अपने दरबार में स्थान दे रक्खा था। फिरोजशाह ने शयन कक्ष को रंग–रंजित करना आवश्यक समझा था। 'उसने सोने के कक्ष को सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों से सजाने का आदेश दे रक्खा था जो आंखों को सुखद और सौन्दर्ययुक्त लगें। परन्तु उन दृश्यचित्रों में भी मानवीय चित्रांकन वर्जित था। क्योंकि वह इस्लाम धर्म के सिद्धान्त के विरूद्ध था। सुल्तान ने इस तरह का आदेश दे रक्खा था कि दीवालों आदि पर मात्र उद्यानों के चित्र आकें जायं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम धर्म के विरूद्ध होने के कारण चित्रकला में मानवीय चित्रों का सर्वथा अभाव था। स्त्री चित्रों का अंकन तो नहीं ही हुआ होगा। क्योंकि सल्तनत काल में नारी परदे में ढकी रहती थी।

मध्यकाल के अन्तिम भाग में पहुंचते ही चित्रों में ह्रास के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इन्हें देखकर अवश्य यह आभास होने लगता है कि चित्रकला अवनति के चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। इस काल तक सारे वातावरण में भारतीय संस्कृति पतनोन्मुख हो चुकी थी। इस काल में भित्ति चित्रों की परम्परा पूर्णतया विनष्ट हो चुकी थी। उत्तर मध्यकालीन युग में उदयादित्य द्वारा निर्मित कराये गये भित्ति चित्रों के अतिरिक्त अन्य चित्रांकन अनुपलव्ध है। मध्यकालीन युग के चित्र मात्र पुस्तकों में चित्रित हैं। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र धार्मिक हैं। और पूर्व के ही हैं जिसका निर्माण काल १०वीं से तेरहवीं शती माना जा सकता है। इस काल को प्रतिबिम्बित करने वाली पुस्तकें सौन्दर्ययुक्त हैं और उत्कृष्ट ताड़ पत्र पर रचित है। उन पत्रों पर बीच–बीच में महायान से सम्बन्धित बौद्धों और देवी–देवताओं के चित्र बने हुये हैं। भगवान बुद्ध के जीवन की कथायें भी इधर–उधर अंकित हैं। कलाकार ने

संयोजित ढंग से लिपिबद्ध की गयी रचनाओं में देवी–देवताओं का अंकन करके उन्हें भी पावन, पवित्र बना दिया है। इन चित्रों में नारी को देवी रूप में ही चित्रित किया गया है। साथ ही भगवान बुद्ध के जीवन की झांकी इन रचनाओं में देखने को सुलभ है। इस ढंग की कला का चित्रांकन मुख्यतया बंगाल, बिहार और नेपाल में उपलब्ध हुये हैं। इनकी निर्माण शैली एवं विषय यद्यपि अजन्ता की परम्परा में ही हैं फिर भी चित्रों की भाव भंगिमा व मुद्राओं में जड़ता आ गई है। ये चित्र गति एवं जीवन से शून्य लगतें हैं। इनमें सवाचश्म चेहरों की बाहुल्यता है और मुख की अपेक्षा नाक बहुत लम्बी बनाई गई है। फिर भी यह शैली जैन शैली से इतना साम्य नहीं रखती जितना अजन्ता से।





पाल शैली के चित्र

भारतीय चित्रकला की एक भिन्न विधा भारत के पूर्वांचल बिहार, बंगाल और नेपाल के क्षेत्र में विकसित हो रही थी। जहां इसे पाल राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। पाल राजाओं में अनेक सम्राट ऐसे थे जिन्होंने इस सृजनात्मक प्रवृत्तिमें अपना पूर्ण योगदान दिया। इस नव–विकसित चित्रकला को पालवंशीय राजाओं का संरक्षण प्राप्त होने के कारण इस चित्र विधा को पाल शैली की संज्ञा दी गई है। ''पूर्वी चित्रकला का केन्द्र बंगाल था। धर्मपाल एवं देवपाल नामक पाल राजाओं के संरक्षण में अजन्ता के अनुकरण पर जिस शैली का बंगाल में निर्माण हुआ उसका प्रमुख चित्रकार ''धीमान'' तथा उसका पुत्र 'वितपाल' था। इस चित्र शैली का विकास तिब्बत तक हुआ। नेपाल की चित्रकला में पहले तो पश्चिम भारत की शैली का प्रभाव बना रहा। बाद में उसका स्थान इस नव निर्मित पूर्वी शैली ने ले लिया। ९ वीं शताब्दी में जिस नई शैली का आविर्भाव हुआ उसके प्राय: सभी चित्रों का सम्बन्ध पालवंशीय राजाओं से था। अत: उसको पाल शैली के नाम से अभिहित करना अधिक उपयुक्त समझा गया। अजन्ता शैली पर आधारित अपभ्रंश शैली की कठोरता से अलग थोड़ी कोमलता एवं लालित्य लिए हुये इस नव विधा का जन्म हुआ। इस शैली की चित्राकृतियां बौद्धधर्म के महायान शाखा की पोथियों में चित्रित हैं जो ११ वीं शती में चित्रित की गई। ये सचित्र बौद्ध ग्रन्थ 'अष्टसाहस्त्रिक प्रज्ञापारमिता' की है जिसमें बौद्ध धर्म सम्बन्धी बातें संग्रहीत है। चूंकि ये ग्रन्थ गूढ़ तात्विक दर्शनों के संग्रह है जिनसे सम्बन्धित चित्र बनाना सम्भव नहीं है फिर भी ग्रन्थ सौन्दर्य

हेतु महायान देवी—देवताओं आदि के मानवीय रूप का चित्रण अवश्य दर्शनीय है। ''पांडुलिपियों के चित्रण की बौद्ध पाल शैली उत्कृष्ट रेखांकन और रंगों की रूपाकृतियों की मान्यता और मधुरता से विशिष्ट है। अष्टासाहस्त्रिक प्रज्ञापारमिता और गण्डव्यूह (दशवीं और ग्यारहवीं शती लगभग) का विशेष रूप से चित्रण वोतिसली रेखाओं के ताल प्रवाह और कोमल मन्द मधुर वक्रों से युक्त है जो चित्रण में मधुरता और सूक्ष्मता का समावेश कर देते हैं। इस शैली का सृजन १३वीं शती तक बंगाल बिहार में हुआ उसके उपरान्त प्राय: यह विधा अपभ्रंश से प्रभावित होकर अपना पृथक अस्तित्व, जो इसकी विशेषता थी खो बैठी। अजन्ता की परम्परागत विशेषताओं की आभा लिये हुए यह शैली कुछ दिनों तक नैपाल में और फिर लगभग १५ वीं शती के बाद तक तिब्बत में भी फलती रही। ये चित्रित ग्रन्थ तथा फुटकर चित्र ११ वीं से १५ वीं शताब्दी के बीच पांच शताब्दियों में निर्मित हुये। ये अपना प्रामाणिक इतिहास रखते हैं। इन चित्रों में 'गीत—गोविन्द' के चित्रों की विशेष चर्चा रही है। गीत—गोविन्द संस्कृत साहित्य का कृष्ण काव्य विषयक गीत काव्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है जिसकी रचना जयदेव ने बंगाल के राजा लक्ष्मण सेनके समय १२वीं शती में की थी। 'गीत—गोविन्द' को अनेक आलोचकों ने उत्कृष्ट श्रृंगार का निकृष्ट ग्रन्थ माना है किन्तु उसमें जयदेव ने अपने काव्य—कौशल से मानवीय पृष्ठभूमि में देवी पात्रों का जो विचित्र निदर्शन किया है वह प्रशंसनीय है।

''पाल शैली के चित्र चित्रित पोथियों पर जिनका निर्माण तालपत्रों के लम्बे—लम्बे सौन्दर्ययुक्त पटों पर हुआ है जो लगभग २२.५'' लम्बे व २.५'' चौड़े हैं। इनके दोनों ओर सौन्दर्ययुक्त लिपि में लेखन है और बीच—बीच में सुन्दर भव्य रंगों में चित्रकारी की गई है।

पाल शैली के चित्रों में नारी की स्वतन्त्र रचना एवं रूप लावण्य देखने को कहीं नहीं मिलता। मात्र बौद्ध देवियों के रूप में नारी अंकन को देखकर ही सन्तोष करना पड़ता है। सम्भव है बौद्ध

धर्म के अनुयायियों को 'नारी' ज्ञान मार्ग की रोड़ा लगी हो और उन्होने इसका अंकन नहीं किया। तभी इनकी चित्राकृतियां देखने को नहीं मिलतीं।

बौद्ध धर्म पर भक्ति और तान्त्रिक आन्दोलन का प्रभाव ही था कि प्रज्ञापारमिता बौद्धों की अत्यन्त श्रेष्ठ देवी बन गयी और चित्रकारों ने उनके अनेक चित्र बनायें। तान्त्रिक प्रक्रिया स्वरूप तारा के अनेकों रूप सम्भावित थे, इसी कारण उनकी विभिन्न रंग रूप वाली कृतियां बनने लगीं। लम्बे–लम्बे ताड़पत्रों पर दोनों ओर हाशियें पर लिखाई के अतिरिक्त बीच के चौकोर स्थान पर आकर्षक चित्रकला दर्शनीय हैं। राय कृष्णदास जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मध्यकालीन चित्र शैलियां' में एक स्थान पर उल्लेख करते हुए लिखा है कि——'इन चित्रों का वर्ण विधान विस्तृत एवं बड़ा ही आकर्षक है। वे आज भी चुह चुहाते हैं मानों अभी लगें हो। ऐसी पुष्ट रंगामेजी पर खुलाई बारीक एवं प्रवाहयुक्त रेखाओं द्वारा हुई हैं। विशेष रूप से आंखों के अंकन में नत दृष्टि पायी जाती है। हाथों को मूर्तियों की भांति आलेखन बहुत ही कोमल एवं प्रभावयुक्त होता है। केशों के सुकोमल और चिकने गुच्छों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है।

पाल शैली की कई ऐसी पोथियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनमें भगवान बुद्ध के जीवन सम्बन्धी, बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक सौन्दर्यमय चित्र हैं। नेपाल में इसी शैली की कई पोथियों का अंकन हुआ है। ''वाराणसी के कलाभवन में इसी युग की एक लिखाई वाली पोथी है जो भगवान बुद्ध के जीवन के कई सुन्दर चित्रों से युक्त है। एक चित्र में भगवान बुद्ध के जन्म का दृश्य चित्रांकित किया गया है। उक्त चित्र में बुद्धदेव की माता मायादेवी की शारीरिक भंगिमा दर्शनीय है। बुद्धदेव का जन्म स्वाभाविक गर्भ से न होकर पेट के दाहिनी ओर से होता हुआ चित्रित है। ऐसा कई ग्रन्थों में उल्लिखित भी है। इस चित्र में मायादेवी वृक्ष की डाल पकड़े भंगिमा में खड़ी है। और बुद्धदेव दाहिनी ओर उदर के समीप

दर्शाये गये हैं। समीप ही पितृ—तुल्य देव खड़े हैं। मायादेवी को सहारा दिये हुये दूसरी नारी का चित्रण है जो सम्भवत: उनकी सखी या परिचारिका लगती है। यह कृति अपने ढंग का अद्वितीय चित्र है जो भारतीय कला भवन वाराणसी में संग्रहीत एवं सुरक्षित है। चित्र वर्णनात्मक है रंग और रेखायें अजन्ता शैली की हैं शारीरिक भंगिमा लोचयुक्त एवं भावपूर्ण हैं। इस कृति में पाल शैली की सभी विशेषतायें विद्यमान है। नारी भंगिमा का इतना सुन्दर एवं रोचक उदाहरण दूसरा नहीं मिल सकता। जहां भारत में अपभ्रंश शैली की कठोर रेखाओं और लय शून्य चित्रों का अंकन हो रहा था वहां पाल शैली अपने में कोमलता और सुन्दर लयात्मक अंकन व मोहक रंग योजना बनाये हुये चल रही थी। इसी पोथी में दूसरा चित्र तारा देवी का है जो अपनी सौन्दर्ययुक्त भंगिमा के लिए विख्यात है। मध्य में बैठी हुई तारा देवी का चित्रांकन है। शारीरिक भंगिमा त्रिभंग है। हस्त मुद्रायें भावपूर्ण हैं। चित्र के पीछे प्रभा मण्डल है जो उनके अलौकिक देवत्व को प्रतिबिम्बित करता है। हरित तारा महायान चित्रित किया गया है। जो अपने ढंग से की सुन्दर कृति है। इसमें नारी की भंगिमा सुन्दर है।

पाल शैली के चित्रित विषयों का जहां तक प्रश्न है अजन्ता से कुछ भिन्न हैं। यहां लौकिक विषयों के चित्र आंके गये हैं किन्तु पाल शैली में लौकिक विषयों के चित्र नगण्य है। सम्भवत: यही कारण है कि नारी का स्वतन्त्र चित्रांकन बहुत कम हुआ है। कामशास्त्र से सम्बन्धित चित्रों में पुरूषों की आकृतियों की अपेक्षा नारी चित्र अधिक कमनीय है। कामशास्त्र की कई चित्रित पोथियों का अंकन भी प्राप्त हुआ है जिसमें नारी की सुन्दर भंगिमाएं चित्रित हैं। इन मिथुन चित्रों में नारी के अनेक रूपों का अंकन बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया गया है। किन्तु इस तरह के चित्रित ग्रन्थों की संख्या अधिक नहीं है।

भारत में मध्यकालीन विकसित चित्र शैलियों में पाल शैली इस लिए और अधिक प्रखर व प्रचलित रही क्योंकि इन चित्रों में तत्कालीन धार्मिक जीवन का प्रतिविम्ब देखने को मिलता है। इन

चित्राकृतियों में ऐतिहासिक एवं धार्मिक विषयों का समिश्रण है। इनकी रचना सौन्दर्ययुक्त है। शारीरिक भंगिमा पूर्ण भारतीय है किन्तु प्राचीन भारतीय परम्परागत शैली से सर्वथा भिन्न है।









सुरि का पाटण यात्रा (जैन ग्रन्थ से)

जैन चित्र शैली

"साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार अपभ्रंश भाषा ने लोकजीवन के उदात्त पक्ष को व्यक्त किया, चित्रकला के क्षेत्र में उसी प्रकार जैन कला ने जन–जीवन की झांकिया प्रस्तुत की। उसके चित्रित हस्तलिखित पोथियों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने उदयकाल से ही वह लोक–परम्पराओं एवं लोक–विश्वासों को ग्रहण करने लगी थी। वस्तुतः उसका प्रारम्भ लोक–प्रेरणा से हुआ था और अपनी सम्पन्नावस्था से लेकर सांध्यवेला तक उसमें लोक सम्पर्क की भावना बनी रही। ऐसी स्थिति में जबकि मुगल राजपूत और पहाड़ी आदि चित्र शैलियों से भारत का कला धरातल अपनी उन्नतावस्था में था तो सहसा लोक कला पर आधारित जैन कला प्रभाव से युक्त बौद्ध देवी है जिसके अनेक चित्र पाल शैली में प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में भी कई ताराओं के चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें 'हरित तारा' का भी चित्रांकन है। इस चित्र में नेत्र की भंगिमा देवत्व की याद दिलाती है। मुकुट राजत्व का परिचायक है। यह देवीकृति सुन्दर है। पार्श्व में एक अन्य नारी आकृति है जो परिचारिका लगती है।

लगभग १६वीं शती में बंगाल में पाल शैली का पूर्ण पतन हो गया, किन्तु नेपाल क्षेत्र में तथा तिव्बत में यह शैली अपने पूर्ण यौवन के साथ जीवित थी। नेपाल में यह मात्र पोथियों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि बड़े लम्बे–लम्बे पट चित्रों के रूप में भी बनते रहे हैं। धीरे–धीरे इसका प्रभाव नेपाल में भी घटने लगा और उन कृतियों में राजस्थानी प्रभाव परिलक्षित होने लगे किन्तु तिव्बत में तो इस शैली के चित्रों का सृजन सम्पूर्ण मध्यकाल तक होता रहा।

पाल शैली के चित्रों में जहां कहीं भी नारी चित्रण देखने को मिलता है उनकी रचना कौशल, शरीरिक भंगिमा, रंग योजना तथा अलंकरणों को देखकर बरबस ही अजन्ता के चित्रों की याद आ जाती है क्योंकि इन चित्रों में अंकित नारी मुद्रायें भी अजन्ता की भांति ही लावण्यमयी तथा भावयुक्त है। वही कोमलता, वही मांसल सौन्दर्य सर्वत्र इन चित्रों में व्याप्त है। सजीवता एवं भावाभिव्यक्ति में यह चित्र अजन्ता से किसी प्रकार कम नहीं हैं। नारी चित्रांकन में कहीं—कहीं लयात्मक मुद्राओं में जकड़ है। तथा कोमलता का अभाव दृष्टिगत होने लगता है। सवाचश्म आकृतियों में मुख से नाक का अधिक लम्बा होना कुछ अजन्ता से भिन्नता की ओर इंगित करता है। बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठित देवी 'प्रज्ञापारमिता के अनेक चित्र उपलब्ध हुए हैं जो नारी के देवी रूप का उल्लेखनीय उदाहरण हैं। उन चित्रों में इनके हाथो में चित्रित कमल देवत्व का प्रतीक है। इस विषय में डॉ० सुरेश नारायण सक्सेना का कथन है कि —— "पाल चित्र विधा में चित्रित प्रज्ञापारमिता को एक चित्र में बायें हाथ में कमल लिए क्यों विलुप्त हो गयी, इसका क्या कारण था? सम्भवत: उसकी आदिवादिता ने उसकी उदात्त सौन्दर्यानुभूति और नित—नवीन प्रवृत्ति को सोख लिया, उसमें निरन्तर एक ही बात दुहरायी जाने लगी। जिससे उसके प्रति आकर्षण कम हो गया। यहीं उसकी उपयोगिता भी कम होने लगी। उसमें ठूंस—ठूंस कर पच्चीकारी भर दी गयी।

जैन चित्र शैली अपने युग की समुन्नत एवं प्रसिद्ध चित्र विधा रही है। भारत देश के नाना क्षेत्रों और दीपान्तरों में भी बहुत बड़े पैमाने पर उसका निर्माण हुआ है। वास्तविकता यह है कि 'गुजरात'' शैली का ही दूसरा नाम जैन शैली है क्योंकि इस शैली में जैन कल्पसूत्रों का ही ग्रन्थ चित्रण है।

गुजराती चित्र शैली जैसा नाम से लगता है कि इसका अंकन गुजरात के क्षेत्र विशेष में हुआ होगा ऐसा नहीं है। इस सन्दर्भ में डॉ० सुरेशनारायण सक्सेना का कहना है कि ——



जैन देवी आकृतियाँ (जैन ग्रन्थ से)



रागिनी ककूभ (राजस्थानी शैली)

गुजराती मिनेचर पेंटिंग महावीर स्वामी की जीवन गाथा है। जैन ग्रन्थों में 'कल्पसूत्र कालका चार्य कथा' की गाथाएं मात्र गुजरात में ही नहीं बल्कि अन्य स्थान जैसे– राजस्थान, मालवा, जौनपुर में भी चित्रित किए गए।

भारतीय चित्र कला के इतिहास में जैन चित्र शैली का महत्व इसलिए अत्यधिक हैं—–कागज पर चित्रकारी का प्रारम्भ इसी शैली की देन है। आज तक के प्राप्त हुये सर्वाधिक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ, जो बौद्ध धर्म का है कलकत्ता के आशुतोष संग्रहालय में संग्रहीत है जिसमें बौद्ध देवी–देवताओं के महायान सम्प्रदाय से प्रभावित चित्र हैं। ताड़पत्रों पर चित्रांकन 'कल्पसूत्र' और 'काकाचार्यकथा' के आधार पर निर्मित 'पार्श्वनाथ' 'नेमिनाथ' और 'ऋषभनाथ' तथा अन्य तीर्थंकरों के दृष्टान्त चित्र जैन कला के सर्वाधिक प्राचीन उदाहरण हैं।

जैन पुस्तकों के चित्र

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पूर्व भागों में जैन साहित्य का बड़ा महत्व है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की कल्पसूत्र, अंगसूत्र, नेमिनाथ चरित्र तथा रत्न सागर आदि पुस्तकों में उपलब्ध हैं। पुस्तक ताड़ पत्र पर तथा कागज दोनों पर लिखी गई है। इसी शैली में कुछ अन्य सचित्र ग्रन्थ भी लिखे हुए मिलते हैं जिनका विषय जैन नहीं है। 'वालगोपाल–स्तुति' 'गीतगोविन्द', 'दुर्गा–सप्तशती', 'रति रहस्य' आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में चित्रित चित्राकृतियां दर्शनीय हैं किन्तु इनका निर्माण पूर्णतया जैन पुस्तक चित्रों पर आधारित है। इन चित्रों का अंकन वहीं के स्थानीय कलाकारों द्वारा किया गया है जहां कि इन मूल ग्रन्थों की रचना हुयी है। इस काल के निर्मित चित्रों की कुछ अपनी विशेषताएं हैं जो इन्हें अन्य चित्रों से अलग करती हैं। इस शैली के चित्रों की सीमान्त रेखायें स्याही से खींची गयी हैं। चित्रों में जैसे– प्राण हीनता ही परिलक्षित हो रही हो। अंग भंगिमा एवं मुद्रायें सभी गति हीन हैं। इनके वस्त्राभरण सभी कुछ वास्तविकता से दूर लगते हैं। पशु पक्षी और वस्त्र तो जैसे कठपुतलियों के समान लगते हैं। वेषभूषा में उड़ते हुए उत्तरीय और धोती का

त्रशेषरूप से अंकन हुआ है। प्रकृति के चित्रण में भी अस्वाभाविकता ।। अनावश्यक अलंकारिता स्पष्ट दृष्टिगत होती है। उपरोक्त ार्मिक ग्रन्थों में नारी का चित्रण हुआ है किन्तु उसमें वह लालित्य, ह सौन्दर्य नहीं है। अधिकतर देवियों के ही चित्र हैं, जो अपनी वेत्रता, देवत्व के कारण भले ही, आदरयुक्त हों किन्तु कलात्मकता ो दृष्टि से उसमें सौन्दर्य का सर्वथा अभाव है।

समग्र भारतीय चित्र शैलियों में १५वीं शताब्दी से पूर्व तने भी चित्र प्राप्त हैं उन सब में मुख्यता और प्राचीनता जैन त्रों की है। ये चित्र जैनियों से सम्बद्ध हैं जिन्हें अपने सम्प्रदाय के ों को चित्रित कराने एवं करने का बड़ा शौक था।

"१२वीं शताब्दी में पूर्व जैन चित्रकला के विकास की गति ो पड़ गयी थी और मुगल शैली की विकासावस्था में उसका तत्व सर्वथा ही मिट सा गया था। वह १२ वीं शताब्दी के ान्त पुनःजीवित हुयी। यह एक विचित्र संयोग ही बात है कि ्द गजनवी के विध्वन्शों के बावजूद जैन चित्रकला आंबू और ार के केन्द्रों में अपने परिवेश के नव—निर्माण में अग्रसर थी। में जैन चित्रकारों ने राजपूत और मुगल से प्रेरणा ग्रहण कर क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाया। इस चित्र विधा का यहीं नहीं हुआ वरन् जैन चित्र कला गुजरात से आरम्भ होकर थान की धरती में युगों तक अपनी साधना में लगी रही। तर यह कला फारसी प्रभाव त्याग कर पूर्ण हिन्दू राजपूत चित्र में परिवर्तित हो गयी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १० वीं शताब्दी से लगभग शताब्दी के मध्य और उसके उपरान्त भी भारतीय चित्रकला .व हेतु सबसे अधिक योगदान जैन कलाकारों का ही रहा है। ताब्दियों में जैन रचनाकारों ने पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ त्रलित परम्परा को बनाए रखा। यही नहीं इस कला प्रतिभा ने और मुगल कला शैलियों को नव सर्जना हेतु प्रेरणा भी इस शैली के चित्रकारों की दक्षता का प्रमाण ताड़पत्रों पर



जैन देवी का चित्रण (जैन ग्रन्थ से)

आंके गये चित्रों से प्राप्त हो जाता है। ताड़पत्रीय पोथियों के सीमित स्थान में चित्रकारों ने अत्यन्त सूक्ष्मतम रेखाओं में जिन विराट चित्रांकनों को सजोया है वे अद्वितीय लगते हैं। 'काल कथा' 'व्याकरण' आदि अनेक ताड़पत्रीय पोथियों के अवलोकन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि लगभग १३५७ से १५०० ई० के बीच बने इन चित्र ग्रन्थों में अनोखी सजीवता है। इसकी श्रेष्ठता सर्वसिद्ध है। अहमद नगर में संरक्षित कल्पसूत्र की एक पोथी इसका प्रमाण है जिसका मूल्य लगभग सवालाख रुपये आंका गया हैं उक्त 'कल्पसूत्र' भारतीय नाट्य संगीत और चित्र कला की दृष्टि से अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

प्रसिद्ध विद्वान श्री गैरोला ने भी इन कृतियों की सराहना की है—

''इस युग में जैन कलाकारों ने जहां 'मार्कण्डेपुराण' तथा 'दुर्गासप्तशती' जैसे चित्रों का भी निर्माण किया, किन्तु इन सभी प्रकार के चित्रों में कलात्मक सूक्ष्मता अवश्य विद्यमान रही । जैन पोथियों में चित्रित चित्राकृतियों में यक्ष—यक्षिणियों के चित्र दर्शनीय हैं। किन्तु ये चित्र विषयों से सम्बन्धित गौड़ लगते हैं।

जैन चित्र शैली में नारी, अंकन

धर्मानुगत जैन कला में नारी चित्रण का अभाव हो ऐसी बात नहीं है। नारी चित्रण लगभग सभी धार्मिक जैन ग्रन्थों में दर्शनीय है। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन नारी चित्राकंनों में श्रृगांरिक भावनाओं का अभाव अवश्य है। अधिकतर चित्राकृतियां धार्मिक धरातल पर ही आंकी गयी है। ''नारी रूपों का चित्रण एक निश्चित सीमा में हुआ है और उनके द्वारा यद्यपि जैन कला की समृद्धि का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं होता, फिर भी इस प्रकार की लोहनीपुर (पटना) और कंकाटी टीले (मथुरा) की जिन प्रतिमाओं में अंकित यक्ष युगल उदात लावण्य के प्रतीक हैं। बहुधा चौबीस तीर्थंकरों के दोनों पार्श्वों में यक्ष—यक्षाणियों के युगल चित्र बड़े ही सौम्य लगते हैं। ''नारी चित्रण के क्षेत्र में तीर्थंकरों की अधिष्ठात्री देवियां अम्बिका पद्मावती, सरस्वती, शासन, चक्रेश्वरी और

सोलह विद्या देवियां प्रमुख हैं। इन देवी चित्रों और मूर्तियों में उज्जवल धूम्र वर्ण लोकशैली की अल्हड़ता और हस्त मुद्रायें सभी में कलात्मक श्रृंगार तथा माधुर्य ओत—प्रोत है। इस प्रकार के नारी चित्रों के उत्तम दृष्टान्त श्री सारा भाई माणिकलाल नवाब के जैन कल्पद्रुम में देखा जा सकता है।

इस प्रकार के ताड़पत्रीय पांडुलिपि 'उत्तराध्य्यन सूत्र' पर चित्रित लघुचित्र जैन शैली के सुन्दर चित्राकृतियां हैं। इसमें से एक चित्र जो दो खण्डों में संयोजित है ऊपर के भाग में मृग के साथ नारी आकृति सुन्दर बन पड़ी है। नीचे दो गायों की अलंकारिक भंगिमा भी मोहक हैं।

'निशीथचूर्णिका' नामक ताड़पत्रीय जैन ग्रन्थ पर चि्त्रित जिन भगवान का चित्र अत्यन्त मार्मिक है। लगभग ११८२ वि० का यह चि्त्र जिनके दोनों और नायिका का चित्रण है। ये चि्त्राकृति जैन शैली का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वस्त्रों की फहरान कागज की तरह, वक्ष आगे की ओर निकले, आखें आगे की ओर निकली, गुड़ियों की तरह की ये नारी आकृतियां जैन शैली की देन हैं। वाराणसी कला भवन में संग्रहीत श्री देव सुरि की पाटण यात्रा का सुन्दर चित्र दर्शनीय है। इसमें वाद्य बजाती तथा नृत्य करती नारियों का सुन्दर चित्र अंकित है। पुरूषों के चित्र अनोखे हैं। अपभ्रंश के प्रभाव से युक्त यह कृति जैन कला का प्रतिनिधित्व करता है।

ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है इन चित्रों में विभिन्न देवियों के चित्र भी मिले हैं जो नारी के सम्मानित रूप एवं देवत्व की याद दिलाते हैं। ताड़पत्रीय पांडुलिपि 'उपदेश माला' पर लक्ष्मी का लघु चित्र जैन शैली में अलंकारिक रूप को अभिव्यक्त करती है। १२ वीं शताब्दी की इस कृति में वस्त्रालंकरण अद्वितीय है। मुखाकृति समक्ष (दो चश्म) है। प्रभामंडल अलंकृत है तथा चार भुजा वाली इस आकृति में ऊपर के दो हाथों में कमल हैं उन कमल—पुष्पों के ऊपर दोनों और दो हाथी अपनी सूड़ से मां लक्ष्मी का अभिषेक कर रहे हैं। ये हाथी ठीक कौशाम्बी से प्राप्त गजलक्ष्मी की मृणमूर्ति के समान है। आभूषणों से पूर्ण सज्जित

कमलासना लक्ष्मी का एक हाथ खुला है। जो समृद्धि दात्री मुद्रा को अभिव्यक्ति करता है। दूसरे हाथ में कमंडल चित्रांकित है। यह सुन्दर और अनोखी कृति है। इसका स्वरूप जैन लोक शैली का परिचायक है। इसी रूपाकृतियों से युक्त एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ जो लगभग १६ वीं शताब्दी का है प्रयाग संग्रहालय के मध्ययुगीन चित्रकला कक्ष में सुरक्षित है। इस चित्रित ग्रन्थ में अनेक जैन धर्म ग्रन्थ से सम्बन्धित चित्र हैं जिनमें नारियों की अलंकारिक मुद्रायें सुन्दर हैं। शैली की दृष्टि से ये सभी चित्र अपभ्रंश के अत्याधिक समीप हैं। इन चित्रों में पृष्ठभूमि 'इंडियन रेड' तथा शरीर मे स्वर्ण रंगों की अधिकता है।

लगभग ११८४ ई० के एक ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि में सरस्वती की खड़ी चित्राकृति देखने को मिलती है जो चार भुजा वाली है। दो हाथों में कमल, एक में पोथी और चौथे हाथ में लेखनी चित्रित है। लेकिन वीणा को कहीं स्थान नहीं दिया गया है। वस्त्रों का अंकन सुन्दर है, केश सज्जा समुन्नत है। नीचे बगल में सरस्वती वाहन हंस भी चित्रित है। दोनों ओर दो अन्य आकृतियां भी है। इस प्रकार के अनेकों चित्राकृतियां उपलब्ध हैं जिनका सृजन जैन ग्रन्थों को सज्जित करने के लिए किया गया था। उनमें नारी की नाना अलंकृति छवि दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार के देवी कृतियों में एक देवी का चित्र उपलब्ध है जो हाथों में कमल एवं अपना आयुद्ध लिए हैं। अलंकारयुक्त इस कृति में नीचे हाथी का चित्र है जो लक्ष्मी का द्योतक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल की प्रारम्भ की चित्रकला मात्र पुस्तकों में ही है इसकी पुष्टि श्री मुल्कराज आनन्द ने भी किया है--- "१२ वीं, १३ वीं शती के पूर्व चित्रांकित कला भारत की पोथियों के अतिरिक्त नहीं मिलती। पूर्व मध्यकाल में जैन पेंटिंग ही मात्र आधार है जो छोटे-छोटे ताड़ पत्रों पर अंकित हैं।

जैन चित्रों में नारी वस्त्राभरण

जैन चित्रों के अवलोकन से यह ज्ञात हो जाता है कि उस युग में धोतियों का अधिकाधिक उपयोग किया जाता था। चित्रों में

धोतियों का चित्रांकन मोहक है। जैन चित्र शैली के प्रारम्भ के चित्रों में साधुओं के वस्त्र चमकते श्वेत या स्वर्णिम आभा वाले रूप में चित्रित किया गया है। सम्भवत: उन्हें अत्याधिक सम्मान देने के लिए ऐसा किया गया है। ईरानी प्रभाव के कारण बाद में चित्रों में अलंकारिकता बढ़ गई और इनका भी रूप बदल कर अलंकरणों से ढक गया है। स्त्रियां प्राय: चोली, चुनरी, और रंगीन धोती पहने चित्रित की गई हैं। कहीं—कहीं अलंकृति कटिवस्त्र का प्रयोग भी दिखायी पड़ता है। देवी आकृतियों में दुपट्टे का चित्रण भी दृष्टिगत होता है। वस्त्रों के अलंकारिक रूप में विभिन्नता एवं सुन्दरता दिखाई देती है।

''स्त्रियों के मुख पर टिकुली की शोभा स्पष्ट ही उनके श्रृंगार प्रियता को लक्षित करती है। कानों में कुंडल और बाहों में भुजबन्द है। सभी चित्र रत्नमालाओं से अलंकृत है ये माालायें अनेक प्रकार की है। जो गले से लेकर पैरों तक सारी आकृति को घेरे हुए है। देवी आकृतियों में नाना प्रकार के विशेष अलंकृत वस्त्रों का समावेश देखने को मिलता है। प्रभामण्डल भी अत्यन्त अलंकृत हैं। देवी नारी आकृतियां स्वर्ण जटित हैं और आभूषणों की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति अन्य नारी आकृतियों से भिन्न हैं।

इस प्रकार जैन चित्र शैली का पूर्व अवलोकन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राजपूत और मुगल चित्र शैलियों के विकास के पहले चित्रकला के क्षेत्र में जो अंकन हो रहा था उसका आधार जैन चित्र कला ही थी। नि:सन्देह जैन चित्र विधा ने ही वह सशक्त धरातल निर्मित किया जिस पर आगे चलकर भारतीय चित्र कला के विशाल भवन का निर्माण हो सका। भारतीय चित्रकला के इतिहास में इस शैली ने ऐसी बहुमूल्य कड़ी जोड़ी है जो शताब्दियों तक मजबूत श्रृंखला का काम करती रही है, जिस पर जाने कितने ही वाह्य प्रभाव पड़े किन्तु सबमें घुलमिल कर भी अपना अलग अस्तित्व बनायें रही। इन चित्राकृतियों ने भारतीय कला को ही नही बल्कि साहित्य, धर्म और संस्कृति की रक्षा में भी अपना सक्रिय सहयोग दिया है।

१०८/भा० चित्रकला में नारी अंकन,

भारतीय चित्र कला जगत में हम जैन शैली के महत्वपूर्ण स्थान पर आवरण नहीं डाल सकते क्योंकि इसी शैली ने राजपूत और मुगल चित्रविधा को प्रगति का मार्ग दिखाया है तथा साथ ही एक ऐसा वातावरण दिया है जिसके प्रभाव से प्रभावित होकर भारतीय चित्रकला सम्पूर्ण देश में नव शैलियों कों अंकुरित करने में सफल हुई।



अपभ्रंश शैली के चित्र

अपभ्रंश शैली को अनेक नाम से अभिहित किया जाता रहा है। समय–समय पर इस शैली के नाम में अन्तर आता गया कभी इसे जैन शैली, पुस्तक शैली, गुजरात शैली, सुलिपि शैली की संज्ञा दी गयी तो कभी डॉ० कुमारस्वामी ने इस विस्तृत चित्रविधा ा को पिश्चमी भारतीय शैली का नाम दिया। इस शैली के विकास का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत रहा है। सम्पूर्ण पश्चिमी भारत में अपभ्रंश शैली के चित्रों का अंकन होता रहा है। सम्भवत: इसीलिए डा० कुमार स्वामी ने इसका नामकरण पश्चिमी भारत शैली के नाम से किया था।

उत्तर मध्यकालीन युग में जब हमारे देश की चित्रकला का सृजन कुंठित हो चला था, अतीत की परम्परा पर आधारित 'अजन्ता', 'बाघ' और अन्य गुहा चित्रों की भांति चित्रांकन की प्रथा प्राय: समाप्त हो गयी। कागज के ज्ञान को प्राप्त कर चित्र कला ने अपना रूप ही बदल दिया। चित्रकार भित्ति पटों के स्थान पर कागज पर चित्रांकन करने लगे। इस युग के कुछ भित्ति चित्र जिन्हें वेरूल में राजा उदयादित्य ने बनाये थे, अवशेष रह गये थे। भारत के उत्तरांचल में तो इस तरह का भित्ति चित्र यदि कहीं देखने को सुलभ हैं तो मात्र ललितपुर के मदनपुर गांव में निर्मित विष्णु मन्दिर के चित्र जो लगभग १२ वीं शताब्दी का बना हुआ है। जहां स्थानीय अपभ्रंश शैली की कृतियां देखने को मिलती हैं। इस शैली के चित्रकला को अपभ्रंश शैली की संज्ञा दी गयी है। कुछ भिन्नता के साथ अलग–अलग प्रदेशों में विभिन्न रूप में भारतीय चित्रकला किसी न किसी आवरण में अवश्य प्रस्फुटित हो रही थी।

प्रसिद्ध विद्वान श्री रायकृष्णदास जी ने इस शैली को अपभ्रंश शैली का नाम दिया क्योंकि इस शैली को पश्चिमी सीमा में बांधना उचित नहीं था। अपभ्रंश शैली के अनेकों ग्रंथ चित्र उत्तर भारत में बने हैं। जौनपुर का कल्पसूत्र इस बात का प्रमाण है। श्री रायकृष्णदास जी ने इस शैली का नाम अपभ्रंश शैली इस लिए रक्खा क्योंकि इस शैली के चित्रों में विकृति का रूप ही विशेष रूप से परिलक्षित होता है। वास्तविकता से दूर यथार्थता से विमुख इस शैली के चित्रों में शरीरिक भंगिमा कठोर, आंख, मुंह,नाक सभी अस्वाभाविक लगते हैं। इस शैली का विकास ११ वीं से १६ वीं शताब्दी तक हो जाता है। जबकि कहीं—कंहीं इसके बाद भी इसका प्रभाव चित्रों पर पड़ा हुआ दृष्टिगत होता है। १६ वीं शताब्दी तक का युग विशेषत: जो सल्तन युग था। उसमें इस शैली का उत्कर्ष दिखलाई पड़ता है। इस शैली के चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों में देखने को मिलता है। उन पोथियों में बीच बीच के चौकोर स्थानों पर बने हुए चित्र अपभ्रंश शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अपभ्रंश शैली के चित्र जिनमें मानवाकृतियों का अंकन किया है खिलौनों के समान लगते हैं। यही नहीं कहीं—कहीं ये चित्र कपड़े के गुड्डों के समान निर्जीव लगते हैं जिनमें जीवन की कोई गति दिखलाई नहीं पड़ती। आकृतियों में परली आंख शून्य में बाहर निकले हुये चेहरे सवाचश्म हैं। नाक नुकीली हैं जो अनुपात में अत्याधिक बड़ी लगती है। लगता है ये मानवाकृतियां वास्तविकता से दूर बेडौल सी है। नारी चित्रांकनों में कोई सौन्दर्य नहीं है। पुरूषों की आकृतियां भी अस्वाभाविक लगती है। सभी चित्राकृतियां जैसे भाव शून्य हों।

अपभ्रंश चित्रशैली और नारी चित्रांकन

अपभ्रंश शैली के चित्रों में सभी रंग बड़े ही चटक और चमकदार हैं। ये रंग आंखों को लगते हैं। पेड़ पौधे जिनका अंकन इस शैली में किया गया है उनमें निर्जीवता है। पशु तथा विंहगों के दृश्य भी कपड़े व कागज के खिलौनों की तरह लगते हैं। इस शैली

का स्पष्ट लक्षण तो सल्तनत काल में ही उजागर होने लगा था, किन्तु १३वीं शती में बहुदेववाद का बोलबाला हो जाने के फलस्वरूप देवी देवताओं के नाना रूपों में चित्रों का अंकन होने लगा था। इस काल के लगभग सभी चित्र ताड़पत्रों पर बने होते थे। १४वीं शती में जब कागज की बाहुल्यता हो गयी तब बहुत से चित्र कागजों पर बनें। आज भी उन पोथियों में सुरक्षित ये चित्र अपभ्रंश शैली के जीवित अवशेष हैं। इन चित्रों में देवी—देवताओं के चित्र अत्याधिक हैं। इन चित्रों का अवलोकन कर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मध्यकालीन चित्र शैली में भी प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में नारी चित्रण अवश्य होता रहा है। अपभ्रंश शैली के चित्रों में जिनका अंकन ताड़पत्रों पर हुआ है पर्याप्त मात्रा में देवियों के चित्रांकन हुए हैं। अलौकिक आभा से युक्त इन देवियों के चित्रों में भी बड़ी रूढ़िता, जड़ता व नेत्र भंगिमा, वस्त्र विन्यास आदि विद्यमान हैं जो अपभ्रंश शैली के पूवार्द्ध में प्रचलित था। अन्त में आगे चलकर ये चित्र कागज पर सुरूचिपूर्ण ढंग से बनने लगते हैं किन्तु उनमें भी शैलीगत रूढ़ि विशेषतायें अवश्य हैं। आगे चलकर इस शैली का निर्माण केन्द्र मांडू और जौनपुर बन जाता है। उस समय इन चित्रों की जड़ता में कुछ कमी अवश्य आ गयी है। ऐसा आभास होने लगता है। इस काल की आकृतियों में कुछ गति के लक्षण भी स्पष्ट दृष्टिगत होने लगता है। फिर भी इस शैली के चित्रों में अजन्ता जैसा सौन्दर्य प्रवाह नहीं दिखलाई देता। ‘‘यही नहीं इन चित्रों का वर्ण विधान, संयोजन अत्यन्त सीमित है। उनमें मुख्यत: आधार, रंगों का ही उपयोग दिखलाई देता है। जैसे लाल, पीला, नीला, काला, हरा, श्वेत आदि। स्वर्ण और रजत चूर्ण का प्रयोग भी खूब हुआ है। इस शैली का सौन्दर्ययुक्त चित्र भारत कला भवन वाराणसी में भी संरक्षित है। ऐसे चित्र ‘‘उत्तराध्ययन सूत्र’८ की प्रति में निहित है। जिसमें रजत के स्थान पर अवरक का प्रयोग किया गया है। अवरक की चमक बड़ी सुन्दर लगती है।

कलाभवन वाराणसी में संग्रहित एक ग्रन्थ से एक ऐसी ही कृति देखने को मिलती है। चित्र दो खण्डों में संयोजित है जिसका

प्रसिद्ध विद्वान श्री रायकृष्णदास जी ने इस शैली को अपभ्रंश शैली का नाम दिया क्योंकि इस शैली को पश्चिमी सीमा में बांधना उचित नहीं था। अपभ्रंश शैली के अनेकों ग्रंथ चित्र उत्तर भारत में बने हैं। जौनपुर का कल्पसूत्र इस बात का प्रमाण है। श्री रायकृष्णदास जी ने इस शैली का नाम अपभ्रंश शैली इस लिए क्खा क्योंकि इस शैली के चित्रों में विकृति का रूप ही विशेष रूप ने परिलक्षित होता है। वास्तविकता से दूर यथार्थता से विमुख इस ौली के चित्रों में शरीरिक भंगिमा कठोर, आंख, मुंह,नाक सभी नस्वाभाविक लगते हैं। इस शैली का विकास ११ वीं से १६ वीं ाताब्दी तक हो जाता है। जबकि कहीं–कहीं इसके बाद भी सका प्रभाव चित्रों पर पड़ा हुआ दृष्टिगत होता है। १६ वीं शताब्दी क का युग विशेषतः जो सल्तन युग था। उसमें इस शैली का त्कर्ष दिखलाई पड़ता है। इस शैली के चित्र जैन धर्म से म्बन्धित पाण्डुलिपियों में देखने को मिलता है। उन पोथियों में च बीच के चौकोर स्थानों पर बने हुए चित्र अपभ्रंश शैली का तिनिधित्व करते हैं।

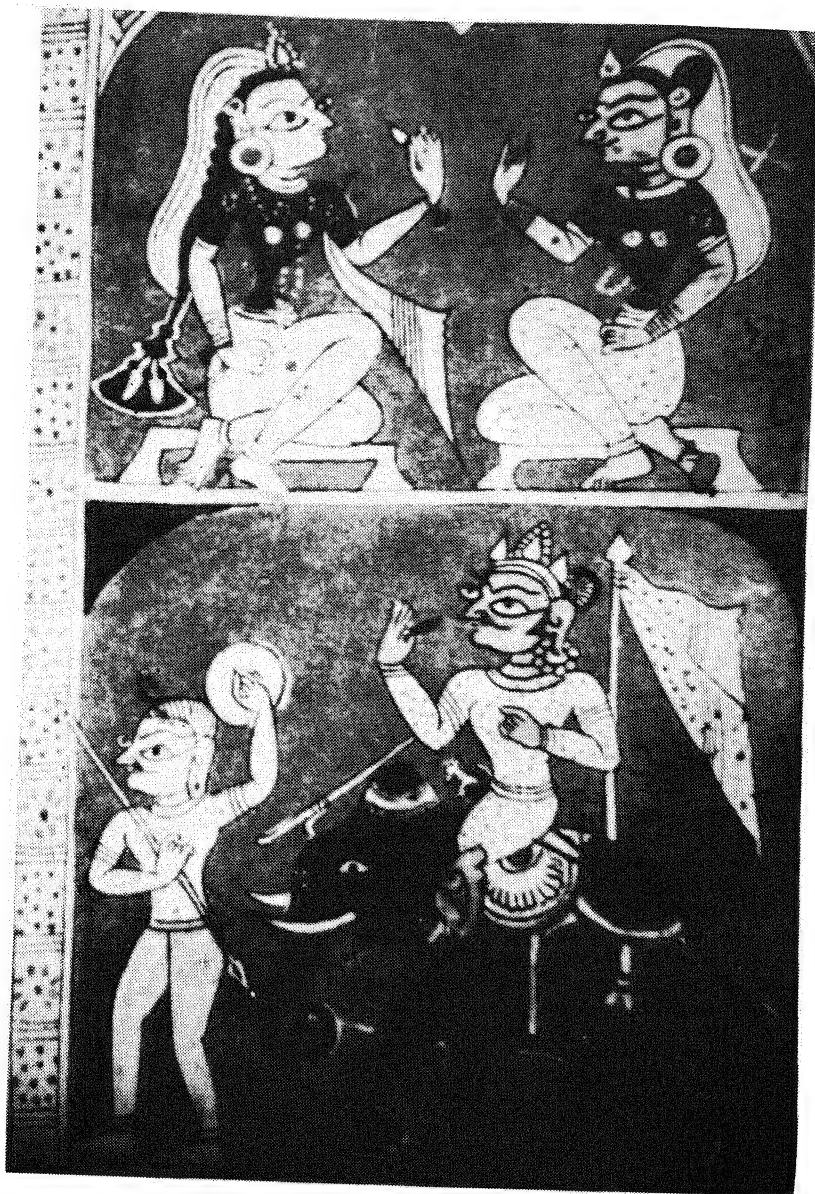
अपभ्रंश शैली के चित्र जिनमें मानवाकृतियों का अंकन या है खिलौनों के समान लगते हैं। यही नहीं कहीं–कहीं ये चित्र पड़े के गुड्डों के समान निर्जीव लगते हैं जिनमें जीवन की कोई ो दिखलाई नहीं पड़ती। आकृतियों में परली आंख शून्य में बाहर कले हुये चेहरे सवाचश्म हैं। नाक नुकीली हैं जो अनुपात में याधिक बड़ी लगती है। लगता है ये मानवाकृतियां वास्तविकता दूर बेडौल सी है। नारी चित्रांकनों में कोई सौन्दर्य नहीं है। पुरूषों आकृतियां भी अस्वाभाविक लगती है। सभी चित्राकृतियां जैसे शून्य हों।

भ्रंश चित्रशैली और नारी चित्रांकन

अपभ्रंश शैली के चित्रों में सभी रंग बड़े ही चटक और ःदार हैं। ये रंग आंखों को लगते हैं। पेड़ पौधे जिनका अंकन ौली में किया गया है उनमें निर्जीवता है। पशु तथा विंहगों के भी कपड़े व कागज के खिलौनों की तरह लगते हैं। इस शैली

का स्पष्ट लक्षण तो सल्तनत काल में ही उजागर होने लगा था, किन्तु १३वीं शती में बहुदेववाद का बोलबाला हो जाने के फलस्वरूप देवी देवताओं के नाना रूपों में चित्रों का अंकन होने लगा था। इस काल के लगभग सभी चित्र ताड़पत्रों पर बने होते थे। १४वीं शती में जब कागज की बाहुल्यता हो गयी तब बहुत से चित्र कागजों पर बनें। आज भी उन पोथियों में सुरक्षित ये चित्र अपभ्रंश शैली के जीवित अवशेष हैं। इन चित्रों में देवी—देवताओं के चित्र अत्याधिक हैं। इन चित्रों का अवलोकन कर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मध्यकालीन चित्र शैली में भी प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में नारी चित्रण अवश्य होता रहा है। अपभ्रंश शैली के चित्रों में जिनका अंकन ताड़पत्रों पर हुआ है पर्याप्त मात्रा में देवियों के चित्रांकन हुए हैं। अलौकिक आभा से युक्त इन देवियों के चित्रों में भी बड़ी रूढ़िता, जड़ता व नेत्र भंगिमा, वस्त्र विन्यास आदि विद्यमान हैं जो अपभ्रंश शैली के पूवार्द्ध में प्रचलित था। अन्त में आगे चलकर ये चित्र कागज पर सुरूचिपूर्ण ढंग से बनने लगते हैं किन्तु उनमें भी शैलीगत रूढ़ि विशेषतायें अवश्य हैं। आगे चलकर इस शैली का निर्माण केन्द्र मांडू और जौनपुर बन जाता है। उस समय इन चित्रों की जड़ता में कुछ कमी अवश्य आ गयी है। ऐसा आभास होने लगता है। इस काल की आकृतियों में कुछ गति के लक्षण भी स्पष्ट दृष्टिगत होने लगता है। फिर भी इस शैली के चित्रों में अजन्ता जैसा सौन्दर्य प्रवाह नहीं दिखलाई देता। ''यही नहीं इन चित्रों का वर्ण विधान, संयोजन अत्यन्त सीमित है। उनमें मुख्यत: आधार, रंगों का ही उपयोग दिखलाई देता है। जैसे लाल, पीला, नीला, काला, हरा, श्वेत आदि। स्वर्ण और रजत चूर्ण का प्रयोग भी खूब हुआ है। इस शैली का सौन्दर्ययुक्त चित्र भारत कला भवन वाराणसी में भी संरक्षित है। ऐसे चित्र ''उत्तराध्ययन सूत्र'८ की प्रति में निहित है। जिसमें रजत के स्थान पर अवरक का प्रयोग किया गया है। अवरक की चमक बड़ी सुन्दर लगती है।

कलाभवन वाराणसी में संग्रहित एक ग्रन्थ से एक ऐसी ही कृति देखने को मिलती है। चित्र दो खण्डों में संयोजित है जिसका

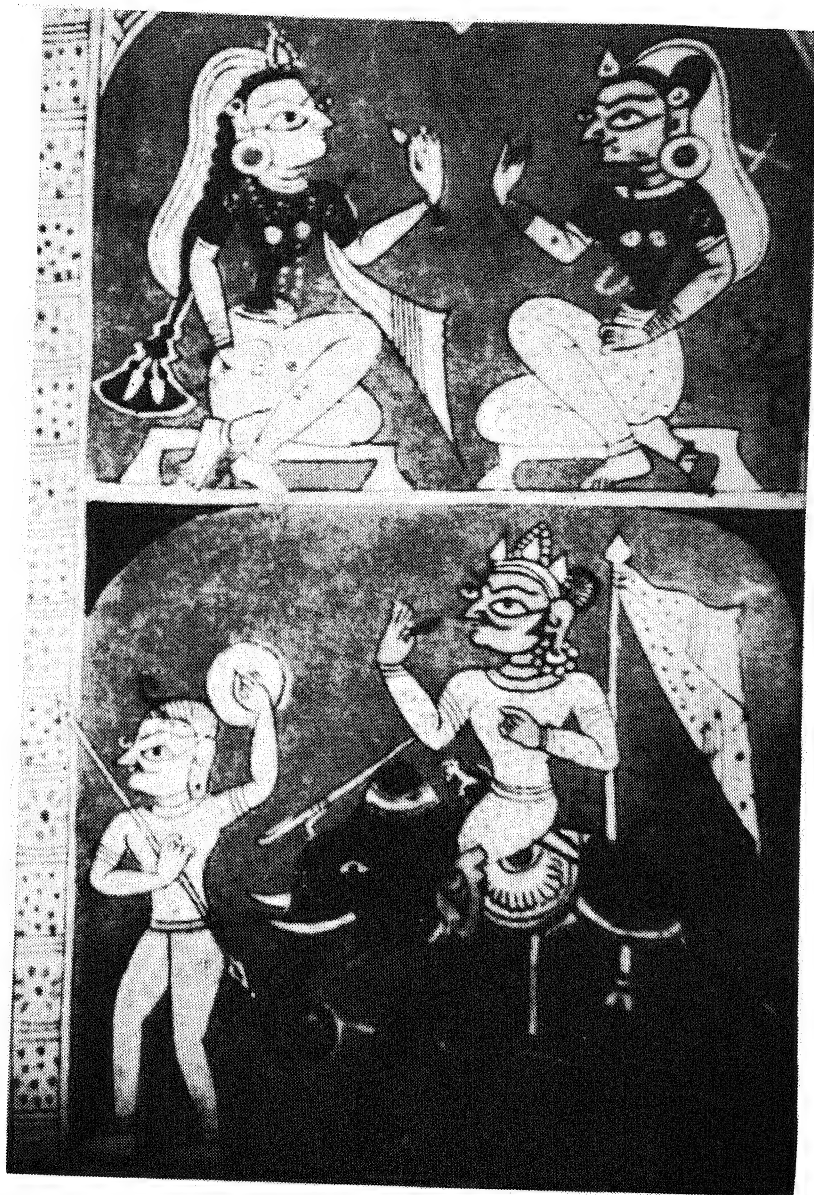


लौरचन्दा के चित्र (अपभ्रंश)

शीर्षक मृगया—बिहार है। पृष्ठभूमि पूर्णतया रक्तिम वर्ण का है ऊपर के दृश्य में हाथी का सुन्दर चित्रण है। रंग विधान इसे खिलौनों की भांति अभिव्यक्त करता है। उस पर आरूढ़ आकृतियां भी अपभ्रंश शैली के सुन्दर नमूने हैं इसमें पीछे बैठी नारी आकृति बड़ी सुन्दर है पर बैठने की मुद्रा अस्वाभाविक है और चित्र उड़ता हुआ लगता है। अलंकरणों से चित्र को सजाने का प्रयास किया गया है, जो अस्वाभाविक सा लगता है। चित्रों में वाह्य रेखायें काले रंगों से आंकी गयी हैं जिनमें लयात्मकता का सर्वथा अभाव है। जानवरों तथा पक्षियों के चित्र भी खिलौनों की भांति लगते हैं। वस्त्र कागज की तरह कोणात्मक हैं।

अपभ्रंश शैली के पूर्व विकास का काल लगभग १०९० ई० है। अब इतिहास प्रसिद्ध राजा जयसिंह का काल प्रारम्भ होता है। उसी समय से चित्रित ग्रन्थों के विकास का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। यहां की सभी चित्रित कृतियां जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। कल्पसूत्र में महावीर और अन्य जैन तीर्थंकरों की जीवन गाथाएं है। 'कल्पसूत्र' की एक प्रति जो पाटन के संग्रह में सुरक्षित है सौन्दर्ययुक्त है। इसमें भी अनेकानेक पुरूष व नारी आकृतियां दर्शनीय है, किन्तु उनका सम्बन्ध मूल ग्रन्थ से नहीं है। यद्यपि इन कल्पसूत्रों की प्रतियां धार्मिक भावनाओं से ही अंकित करायी जाती थी जो जैन साधुओं को दान स्वरूप भेंट किये जाते थे। सम्भवतः ये ग्रन्थ रूढ़िगत परम्परा पर आधारित थे और इनका चित्रांकन भी परम्परागत रूढ़ियों से युक्त था।

पांडुलिपियों में चित्रांकन की परम्परा को कागज के आविष्कार ने एक नया मोड़ दे दिया। लगभग १५ वीं व १६वीं शती के मध्य युग के कलकाचार्यकथा 'एवोकल्पसूत्र' की अनेक प्रतियों का चित्राकंन हुआ और जगह—जगह इन ग्रन्थों का अंकन होने लगा। 'रति रहस्य' जैसे हिन्दी की पांडुलिपियां तैयार की गई जो महामुनि वात्सायन के कामशात्र पर आधारित हैं। इन पोथियों को इस युग में चित्रित किया गया। इस चित्रित ग्रंथ में रति क्रियाओं में संलग्न नारी की अगणित चित्राकृतियां हैं। चित्रांकन की दृष्टि से ये नारी चित्रण



लौरचन्दा के चित्र (अपभ्रंश)

शीर्षक मृगया—बिहार है। पृष्ठभूमि पूर्णतया रक्तिम वर्ण का है ऊपर के दृश्य में हाथी का सुन्दर चित्रण है। रंग विधान इसे खिलौनों की भांति अभिव्यक्त करता है। उस पर आरूढ़ आकृतियां भी अपभ्रंश शैली के सुन्दर नमूने हैं इसमें पीछे बैठी नारी आकृति बड़ी सुन्दर है पर बैठने की मुद्रा अस्वाभाविक है और चित्र उड़ता हुआ लगता है। अलंकरणों से चित्र को सजाने का प्रयास किया गया है, जो अस्वाभाविक सा लगता है। चित्रों में वाहृय रेखायें काले रंगों से आंकी गयी हैं जिनमें लयात्मकता का सर्वथा अभाव है। जानवरों तथा पक्षियों के चित्र भी खिलौनों की भांति लगते हैं। वस्त्र कागज की तरह कोणात्मक हैं।

अपभ्रंश शैली के पूर्व विकास का काल लगभग १०९० ई० है। अब इतिहास प्रसिद्ध राजा जयसिंह का काल प्रारम्भ होता है। उसी समय से चित्रित ग्रन्थों के विकास का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। यहां की सभी चित्रित कृतियां जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। कल्पसूत्र में महावीर और अन्य जैन तीर्थंकरों की जीवन गाथाएं है। 'कल्पसूत्र' की एक प्रति जो पाटन के संग्रह में सुरक्षित है सौन्दर्ययुक्त है। इसमें भी अनेकानेक पुरूष व नारी आकृतियां दर्शनीय है, किन्तु उनका सम्बन्ध मूल ग्रन्थ से नहीं है। यद्यपि इन कल्पसूत्रों की प्रतियां धार्मिक भावनाओं से ही अंकित करायी जाती थी जो जैन साधुओं को दान स्वरूप भेंट किये जाते थे। सम्भवतः ये ग्रन्थ रूढ़िगत परम्परा पर आधारित थे और इनका चित्रांकन भी परम्परागत रूढ़ियों से युक्त था।

पांडुलिपियों में चित्रांकन की परम्परा को कागज के आविष्कार ने एक नया मोड़ दे दिया। लगभग १५ वीं व १६वीं शती के मध्य युग के कलकाचार्यकथा 'एवोकल्पसूत्र' की अनेक प्रतियों का चित्राकंन हुआ और जगह—जगह इन ग्रन्थों का अंकन होने लगा। 'रति रहस्य' जैसे हिन्दी की पांडुलिपियां तैयार की गई जो महामुनि वात्सायन के कामशात्र पर आधारित हैं। इन पोथियों को इस युग में चित्रित किया गया। इस चित्रित ग्रंथ में रति क्रियाओं में संलग्न नारी की अगणित चित्राकृतियां हैं। चित्रांकन की दृष्टि से ये नारी चित्रण

सुन्दर भंगिमाओं से युक्त हैं जिनमें नारी के अंग प्रत्यंगों का नग्न चित्रण है किन्तु ये चित्र अश्लीलता की पराकाष्ठा को प्राप्त नहीं हैं। इनमें रतिक्रियाओं में लिप्त नारी का अंकन किया गया है। कहना न होगा कि इस ग्रन्थ में सब कुछ होते हुए भी आकृतियों में अपभ्रंश शैली की सारी विकृतियां विद्यमान हैं। वही शून्य में स्थित परली आंख, नुकीली नाक, नोकदार दोहरी ठुड्डी आदि।

अपभ्रंश शैली में ही 'वसन्तविलास' नामक ग्रन्थ की चित्रित प्रतियां देखने को प्राप्त हुयी हैं जिनसें नारी मुद्राओं का अंकन अत्यन्त भावपूर्ण है। लगभग १५ वीं शती का एक पट चित्र पाटन के संग्रह में है जो ३०'' लम्बा व ३२'' चौड़ा है जिसमें जैन तीर्थों का चित्राकंन किया गया है। इस चित्र को मूलतः चौड़ाई में दो भागों में बांट कर ऊपरी भाग में तीर्थयात्रियों को पर्वत पर चढ़ते हुए चित्राकिंत किया गया है। इसमें नारी चित्रांकन भी है। इस चित्र में कई स्थानों पर भक्तों को नाचते हुए चित्रित किया गया है। यह चित्र लगता है कई विषयों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसमें मन्दिर, जैन तीर्थंकर, धर्मोपदेशक, विश्राम करते बैलगाड़ी इत्यादि का चित्रण करके सारे वातावरण को जन—मानस के अधिक समीप लाने का प्रयत्न किया गया है। चित्र संयोजन सौन्दर्ययुक्त है साथ ही रेखाओं में सशक्त अभिव्यक्ति की क्षमता विद्यमान है। लगता है चित्रकार ने समस्त संसार को चित्र में आंक देने का प्रयास किया है। नारियों का चित्र भी सुन्दर है, वस्त्रों की फरहान अपभ्रंश शैली का प्रतीक बना हुआ है।

अपभ्रंश चित्रों पर ईरानी प्रभाव

चौहान वंश के अन्त के साथ ही दिल्ली सल्तनत का श्रीगणेश हो जाता है। मुसलमान भारत की धरती पर अपने पैर जमाने लगते हैं। दो संस्कृतियों का आपस में सम्मिलन हुआ। भारतीय चित्रकारों ने इस नव प्रतिभा को अपने में समाहित करना स्वीकार कर लिया। चूंकि गुजरात इन सृजनात्मक कृतियों के निर्माण का केन्द्र था और गुजरात प्रदेश दिल्ली के आधीन हो गया



जैन देवी आकृतियाँ (जैन ग्रन्थ से)

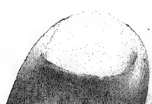
था ऐसी स्थिति में यहां की चित्रकला पर विदेशी प्रभाव का पड़ना स्वाभाविक ही था। इस काल के बने हुए अपभ्रंश शैली के चित्रों पर इरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होने लगता है। ''उन चित्रों के हाशियों में कुछ आकृतियां इससे प्रभावित लगती है। अहमदाबाद के देवशानापाड़ा स्थित जैन ज्ञान भण्डार के संग्रह से प्राप्त 'कल्पसूत्र' की एक प्रति के हासिये पर इस प्रभाव से युक्त चित्रांकन देखने को मिलता है। इन चित्रों में चित्रांकित मुखाकृतियां ईरानी लगती हैं। यही नहीं इनके वस्त्र विन्यास, रूप सज्जा सभी पूर्व अपभ्रंश शैली से भिन्न हैं। वस्त्रों में अलंकरण बेल—बूटे सभी पूर्णतया इरानी हैं।

ईरानी प्रभावयुक्त नारी चित्रण

१५ वीं शती के अंतिम चरण में रचित कल्पसूत्र इस युग की उत्कृष्ट कृति कही जा सकती है जिसके हाशिये पर नाना राग—रागनियों के विभिन्न भंगिमाओं का तथा नृत्य आदि के चित्र बड़े ही प्रभावयुक्त हैं। नारी मुखाकृतियों में कुछ लावण्य भी दृष्टिगत होता है। राग—रागनियों के चित्रण में पर्याप्त नारी चित्रण हुये हैं जो इस शैली को सौन्दर्य प्रदान करता है। इनका अवलोकन कर हम स्पष्ट ही कह सकते हैं कि नई संस्कृति के संसर्ग का अत्यन्त विस्तृत प्रभाव हमारे देश के अपभ्रंशित चित्रों पर पड़ा है। ''इसी प्रकार 'कालकाचार्य—कथा' में भी मानवाकृतियों का पर्याप्त अंकन ईरानी प्रभाव से युक्त है। वस्त्रों की फहरान, प्याज, सदृश्य दाढ़ी, कटी हुई मूछों का अंकन, रंगों में लाल रंग के चेहरे व आंखों की बनावट सबमें ईरानी चित्र विधा स्पष्ट झलकती है। इस काल के चित्रों का विश्लेषण करने से यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के निर्मित चित्रों पर ईरानी शैली अपनी प्रतिभा की छाप शुद्ध भारतीय अपभ्रंश शैली पर डाल रही थी। नारी चित्रों में कुछ लयात्मक अभिव्यक्ति उजागर होने लगा था उत्तर मध्य यकालीन चित्रकला के इतिहास में इसका विशेष महत्व है, क्योंकि इस युग में विकास की एक नई दिशा प्राप्त हो रही थी। इस नये



अमरूशतक (राजस्थानी शैली)



युग ने भारतीय कलाविदों को, जिनकी कलासृजन की प्रतिभा कुंठित हो रही थी नई दिशा व प्रेरणा प्रदान किया। चित्रकला में इसका परिणाम सुखद ही रहा। हमारे देश की कला को आगे विकासोन्मुख होने में बड़ी सहायता मिली।

उत्तर मध्यकाल के अन्तिम चरण में जब अपभ्रंश शैली को नवप्रेरणा मिली तब से चित्रांकनों में कुछ कोमलता और सजीवता दिखलाई देने लगी। विशेषकर नारी भंगिमाओं में कुछ अधिक प्रवाह और लोच दृष्टिगत होने लगता है। १६ वीं शती की चित्रित कामशास्त्र की एक प्रति मिली है जो इसी शैली में चित्रित की गई है जिसमें कामदेव का चित्रण बड़ा ही रोचक है. इसी तरह इस काममशास्त्र में चित्रित नारी अंकन में भंगिमा लययुक्त है।

इस शैली का कोई अलग नाम करण नहीं हुआ है। इसे भी अपभ्रंश शैली ही कहते हैं। किनतु आंख नाक और चेहरे के अंकन में प्रारम्भिक अपभ्रंश शैली से भिन्नता है। इस नव प्रभावित अपभ्रंश शैली का विकसित रूप "लगभग १५२५ ई० में चित्रित अवधी काव्य 'लौर चन्दा' कथा की प्रति है जिसमें अवधी प्रेमगाथाओं का चित्रण है। यह सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है जिसका सृजन 'मुल्ला दाऊद' ने चन्दायन नाम से किया था। इसमें लौरिक जो प्रेमी था और चांद जो प्रेमिका थी इनकी कथा चित्रित है। निःसन्देह चित्रकारों ने इस रस लिप्त ग्रन्थ का चित्रांकन करके मध्यकालीन चित्रकला के इतिहास में चार चांद लगा दिया है। इस ग्रन्थ की सभी पंक्तियां गेय हैं जिसे अवधी से फारसी लिपि में रूपान्तरित किया गया है। इस बहुमूल्य ग्रन्थ के कुछ पृष्ठ वाराणसी के कलाभवन में हैं। इस ग्रन्थ की कई प्रतियां बनी हैं जिनमें से कुछ लाहौर और पंजाब के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस मूल ग्रन्थ के चित्रित प्रतियों के चित्रशैली में स्थानगत विशेषता एवं भिन्नता है। इसके बारे में डॉ० रामनाथ ने अपने प्रसिद्ध शोधग्रन्थ मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास में इस ओर इंगित किया है कि "लाहौर संग्रहालय के प्रति के चित्र राजस्थानी शैली के हैं। और भारत कला भवन के

चित्र अपभ्रंश शैली के हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कलाभवन के अंकित चित्र अधिक प्राचीन है। राजस्थानी शैली में चित्रित लाहौर की प्रति के बाद की विकसित शैली पर आधारित है। इनके चित्र अत्याधिक सजीव व गतिमान हैं। चित्रकार की इन कृतियों में विषय की अभिव्यक्ति भावपूर्ण है और अलंकरणों के बोझ से लदी नहीं हैं। वस्त्रविन्यास पूर्णतया वास्तविक से लगते हैं। उत्तर मध्यकालीन भारतीय इतिहास के आधार पर हम कह सकते हैं कि जौनपुर सम्पूर्ण उत्तर भारत का प्रधान शिक्षा केन्द्र था। जहां मध्ययुगीन सस्कृति पुष्पित एवं पल्लवित हुयी यहां देशी चित्रकारों को राजाओं का संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा जिससे कला भी विकसित होती रही। ''लौरचन्दा'' के चित्रित प्रेम गाथाओ में नारी चित्रण बड़े प्रिय लगते हैं प्रेम गाथाओं पर आधारित नारियों की सुन्दर भंगिमायें दर्शनीय है। उनमें सौन्दर्य तो है ही साथ ही भंगिमाओं में पर्याप्त लोच एवं कमनीयता है। बनारस कला भवन वाले एक प्रति में चित्र को कई भागों में विभक्त करके उनका इस प्रकार संयोजन किया गया है कि गाथाओं का अधिकतम अंश चित्रसंयोजना में आ जाय। एक में मध्य दो भागों में विभाजित कर दिया गया है। मध्य के ऊपरी कोठे का चित्रण है जिसमें नायिका को अपने प्रियतम का दर्शन कर लेने को प्रेरित कर रहे हैं। नीचे उसका प्रियतम ऊपर रस्सी फेंक कर उससे मिलने का उपक्रम करने में तल्लीन है। उसकी मुखमुद्रा में अदम्य उत्साह हैं। ठीक उसके दूसरी ओर प्रहरी अस्त्र लेकर बैठा हुआ ऊंघ रहा है। पृष्ठभूमि में गहन अधेंरा व्याप्त है,तारे आकाश में टिमिटिमा रहे हैं। साथ ही निस्तव्ध रात्रि को अभिव्यक्त कर रहे हैं। नायिका के मुखमण्डल पर व्यग्रता है साथ ही अत्यन्त उत्साह भी है।

नारी की सुन्दर भंगिमा एवं मनोहर अभिव्यक्ति के लिए विशेषकर उत्तर मध्यकालीन युग में चित्रित कृतियों में दूसरा कोई अन्य चित्र बढ़कर नहीं हो सकता। इस युग में जो अपभ्रंश शैली के कृतियों में नवविकास हुआ वह सब कुछ इस चित्र में स्पष्ट ही

परिलक्षित होता है।

"लौरचन्दा का दूसरा चित्र संयोजन भी दर्शनीय है इस चित्र के संरचना में भी चित्र को दो खण्डों में विभाजित करके ऊपरी खण्ड में परस्पर दो नारी चित्रण है जो आपस में वार्ता कर रही हैं। एक नारी तो कोई राजकुमारी सी लगती है उसकी रूप सज्जा, वस्त्र, वेणी बन्धन सभी कुछ सुन्दर एवं सजीव है दूसरी स्त्री रंग व रेखाओं से कोई सखी या सेविका लगती है। अंकन अपभ्रंश शैली में ही है किन्तु इस सुन्दर चित्र में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। नीचे के चित्र में राजा का चित्र है जो हाथी पर बैठा जा रहा है हाथी का चित्र कुछ लयात्मक है। इस प्रकार का यह चित्र अपने ढंग का अनोखा है। इसका संयोजन भी उसी प्रेमगाथा पर आधारित है।

"लौरचन्दा" जैसे प्रेम गाथा के चित्रित ग्रन्थ में एक ओर चित्र सौन्दर्ययुक्त है। यह चित्र भी दो चित्रों में विभक्त है, ऊपरी खण्ड में नारी की मोहक भंगिमा दर्शनीय है। इस चित्र में दो प्रेमी जन, नायक और नायिका का परस्पर वार्तालाप है। पीछेवासी भी चित्रित हैं। आगे की नायिका अपने सौन्दर्ययुक्त सृजन से अपनी श्रेष्ठता, स्वयं अभिव्यक्त कर देती है। आंखों की रचना नाक तथा ग्रीवा सभी कुछ पूर्ण अपभ्रंश शैली को अभिव्यक्त करता है। फिर भी सजीवता से पूर्ण यह चित्र अपनी अभिव्यंजना में स्वयं समर्थ है। आगे की नायिका चित्रण में दोनों उरोजों का चित्रण उसके अतिश्रृंगारिक रूप को व्यक्त करता है।

गुजरात जो अपभ्रंश शैली का सृजन केन्द्र ही था जहां नाना ग्रथों की प्रतियां तैयार की गई और उन्हें अनेक नारी मुद्राओं से अलंकृत किया गया। वहीं के सरस्वती पट का एक चित्र बड़ा ही सौन्दर्ययुक्त है जिसमें भारतीय नारी की मनमोहक भंगिमा का चित्रण किया गया है यह कृति भी अपभ्रंश शैली में ही है किन्तु नारी की भंगिमा दर्शनीय है। इसमें दो नारी चित्रण है। एक मृदंग वादिका एवं दूसरी नृत्य मुग्धा नारी का चित्रण है। नृत्य विभोर

नारियां त्रिभंग मुद्रा में अति भंगता को अभिव्यक्त कर रही है रूप सौन्दर्ययुक्त है। आभूषणों से सज्जित इस नारी का अंग प्रत्यंग सौन्दर्यमय है। पार्श्व में मृदंग बजाती हुई नारी भी सौन्दर्यशाली है। वस्त्र विन्यास अलंकृत है। पृष्ठभूमि अलंकरणों से युक्त है। फूल पत्तियों से युक्त यह चित्राकृति बड़े ही सुन्दर ढंग से संयोजित है।

अवधी काव्य ''लौरचन्दा' की ही तरह, भक्त कवि विल्वमंगल ने एक ग्रन्थ की रचना की थी जिसे 'वालगोपाल—स्तुति' की संज्ञा दी गई है। इसके आधार पर बनी ऐसी प्रतियां प्राप्त हुयी हैं जो १६ वीं शती में चित्रित की गई थी। इसमें आकृतियों का मोहक चित्रण हुआ है। नारी चित्राकृतियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे सभी संगीत में तनमय हों। ऐसे दृश्यों का अंकन किया गया है मानों नृत्य और संगीत का प्रभाव चल रहा हो इस चित्र में काव्य का वर्णनात्मक चित्रण है।

इसी अवधी काव्य 'लौरचन्दा' नामक ग्रन्थ के आधार पर आधारित चित्र कला भवन वाराणसी में संग्रहीत है। जिसमे परस्पर दो स्त्रियों का वार्तालाप चित्रण किया गया है। प्रेम गाथा को अभिव्यक्ति करने वाले इस ग्रन्थ को अनेक चित्रों से सज्जित किया गया है। इस चित्र में चित्रित एक स्त्री तो कुलीन लगती है तथा दूसरी हाथ की मुद्रा मे कुछ समझा रही है। ऐसी भावना को व्यक्त करने वाला यह चित्र रंग योजना एवं चित्र संयोजना की दृष्टि से अद्वितीय है। पृष्ठिभूमि में अपभ्रंश शैली के समान ही लाल रंग की अधिकता है। अधिकाधिक भाग में पीले रंग का उपयोग किया गया है। रेखाओं में कठोरता का आभास अपभ्रंश शैली का परिचायक है। ऊपरी भाग कक्ष के आन्तरिक भाग को लक्षित करता है।

अहंमदाबाद से इसी शैली का एक बहुत बड़ा पट चित्र प्राप्त हुआ है जो लगभग १६ वीं शती का है। यह पट चित्र पूर्ण सजीव सा लगता है। इसमें मुगल चित्रों की भरमार है जिसमें पुरूषाकृतियों के साथ नारी चित्रण मोहक है साथ ही उनके प्रेम क्रीड़ा में नाना मुद्राओं का अनोखा अंकन देखने को मिलता है। इसी

युग में 'गीतगोविन्द' नामक ग्रन्थ की अनेक सचित्र पोथियाँ उत्तरी भारत में प्राप्त हुयी है। जिसमें कृष्ण राधा का प्रेम, आलिंगित मुद्राएं आंकी गई है। कहना न होगा कि नारी की ऐसी सुन्दर श्रृंगारिक भंगिमा कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। इसमें अपभ्रंश शैली की सभी विशेषताएं निहित हैं। अपभ्रंश शैली में जो परली आंख के अंकन का प्रचलन था सम्भवत: १५वीं शती तक तो बना ही रहा किन्तु आगे चलकर १६वीं शती में उसका अन्त हो जाता है। अब अधिक स्वाभाविक और लययुक्त सौन्दर्यमयी आभा से लिप्त नारी चित्रांकन राजस्थानी शैली के चित्रों में दृष्टिगत होने लगा।

"१४३९ ई० में सुल्तान महमूदशाह खिलजी के शासनकाल में रचित 'कल्पसूत्र' की एक प्रति मांडू से प्राप्त हुयी है। इसकी रचना जैन धर्म पर आधारित है। इस कृति में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। हमारे देश के चित्रकारों को ईरानी बेल—बूटे तथा नक्काशीदार डिजाइनों का पूर्ण ज्ञान था। ये चित्र लोक—चित्रण के अत्यन्त समीप हैं ऐसा आभास होता है। चित्रांकन की योजना सुन्दर है। हाथी और घोड़े दासियां तथा राजा व रानी का चित्रण स्पष्टतया स्वाभाविक और भावप्रद है। वैभवशालिनी नारी से लेकर देवदासी तथा मातृ रूपा नारी का अंकन भी इस कृति में हुआ है। अपभ्रंश शैली के इन चित्रों का विषय क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। एक दो नहीं अनेक इस तरह के ग्रन्थ माण्डू में चित्रित हुए मिले हैं जिन पर ईरानी शैली का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। इसका मूल कारण विदेशी राजदूतों का मालवा में आना ही था। इस प्रकार ईरानी कला का सम्पर्क भारतीय चित्र—कला से होता रहा। मांडू में ही चित्रित 'न्यामतनामा' नामक ग्रन्थ इस शैली के चित्राकृतियों के लिए ज्वलन्त प्रमाण है।

डॉ० रामनाथ ने अपने शोधग्रन्थ "मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "पाकशास्त्र का यह ग्रन्थ गयासुद्दीन खिलजी (१४६९—१५०० ई०) के राज्यकाल में लिखा गया। यह फारसी नस्ख लिपि में है और इसकी लिखावट

मांडू से ही प्राप्त 'सादी के बोस्ता' नामक ग्रन्थ से काफी मिलती जुलती है। इसमें ईरानी शैली जैसे प्राकृतिक उद्यानों के दृश्य बनाये गये है। इसमें भी नारी चित्रण हुआ है जो पूर्णतया ईरानी प्रभाव से युक्त है। वस्त्रविन्यास पूर्व चित्रित अपभ्रंश शैली के चित्रों से भिन्न हैं और ईरानी ढंग के हैं। नारियां भी सर पर पगड़ी बाधें हुये, लम्बे लबादे की तरह का वस्त्र पहने चित्रित है। राज दरबार का सुन्दर दृश्य है। आभूषणों का सर्वथा अभाव है। वर्ण तो पूर्णतया ईरानी ही है। नेत्रों की भंगिमा सुन्दर है किन्तु आखें बहुत ही छोटी—छोटी बनी हैं। पूर्व की तरह आंखे शून्य में नहीं बनी लगती। नाक भी वक्र रेखाओं से इंगित कर दी गई हैं। आंख नाक तथा मुंह सभी अनुपातिक एवं उपयुक्त लगते हैं। शैली अपभ्रंशित ही कही जा सकती है। विभिन्न आलेखनों का अवलोकन करके, तथा नाना साक्ष्यों के आधार पर यह बात पूर्ण रूपेण सिद्ध हो जाती है कि मध्‍ मध्यकालीन चित्रकला पर ईरानी प्रभाव मुगलों से पूर्व ही पड़ने लगा था। राजस्थान, गुजरात तथा मालवा और जौनपुर जो भारतीय संस्कृति के केन्द्र थे, इनकी सृजित चित्रकला पर ईरानी प्रभाव १५ वीं शती से ही पड़ने लगा था। इन प्रान्तीय कलाकरों की कृतियों के फलस्वरूप ही मुगल शैली का जन्म हुआ। इस नवीन चित्र विधा के चित्र भारत में ही बने ऐसी बात नहीं है। इस शैली के चित्र तिव्बत, वर्मा और श्याम से भी प्राप्त हुए हैं। वे चित्र ही इसके विकास के प्रमाण है।

कला भवन वाराणसी संग्रहालय में एक 'प्रबोधचन्द्रोदय' एवं 'हरिकथा चित्रित ग्रन्थ का पृष्ठ है जिस पर अपभ्रंश शैली के चित्र अंकित है। यह ग्रन्थ लगभग १६ वीं शताब्दी का है। इसमें चित्रांकित नारी आकृतियां खिलौनो की तरह लगती है। फिर भी भावाभिव्यक्ति की क्षमता से परिपूर्ण है। वस्त्रों की फहरान, रंगयोजना, शारीरिक भंगिमा सब कुछ अपभ्रंश के बाद की कला की ओर इंगित करती है।

इस प्रकार मध्यकालीन भारतीय चित्रकला का गूढ़तम

सर्वेक्षण करने से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि गुजराती शैली प्रधान्येन ग्रन्थ चित्रण—परक है। प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता डॉ० राजकिशोर सिंह ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति' में उल्लेख किया है कि —— "गुजरात के अहमदशाह कुतुबुद्दीन के राज्यकाल में चित्रित 'वसन्त विलास' (१४५१ई०) सर्वथा भौतिक भावनाओं से पूरित है। उसमें धार्मिक एवं आध्यात्मिकता का सर्वथा अभाव है। यह 'वसन्त विलास' साढे पैंतिस फुट लम्बे और नौ इंच चौड़े सूती वस्त्र पर चित्रांकित है। डॉ० राजकिशोर सिंह 'वसन्त विलास' के चित्रणविधान पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि—— "पीली भूमि पर लाल का प्रयोग सुन्दर लगता है। चित्रांकन अजन्ता की रूढ़िबद्ध चित्रविधा से भिन्न है। चित्राकृति में चेहरे केवल आधे हैं जो पृष्ठभूमि में ही देखे जा सकते हैं। सौन्दर्य की दृष्टि से अवलोकन करने पर बादाम के बराबर डेढ़ या एक आंख ही चित्रित है। वेशभूषा के उड़ते हुये अंकन शैली की दृष्टि से अजन्ता तथा मुगल दोनों ही शैलियों से भिन्न है। इस प्रकार इस शैली के चित्रण विषय और शैली की दृष्टि से सर्वथा भारतीय है। इस काल के ग्रंथ चित्रों में कामशास्त्र सम्बन्धी कुछ चित्रांकित कृतियों को छोड़ कर लगभग सभी सचित्र ग्रन्थ धार्मिक होते थे। जैन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों को अपभ्रंश शैली में तथा बौद्ध विषयक ग्रन्थों को पाल शैली में चित्रित किया गया है। अभी भौतिक वादी लौकिक कृतियों का सृजन नहीं होता था । पाल वंशीय सम्राटों ने चित्रकला को कुछ संरक्षण अवश्य दिया किन्तु उसके पीछे धनवान लोगों की धार्मिक भावनायें ही कार्य कर रही थीं। ठीक उसी तरह गुजरात में धनवान जैन लोगों ने अपभ्रंश परम्परा को पूर्ण संरक्षण दिया । कुछ भी हो इन उच्च वर्ग द्वारा पोषित इस कला ने आगे चलकर ईरानी प्रभाव को अपनी अन्तरात्मा में समाहित कर लिया तथा एक नव शैली को जन्म दिया जिसे भविष्य में राजस्थानी चित्रविधा की संज्ञा दी गयी।



कश्मीर चित्र शैली

चित्रविदों एवं इतिहासकारों की विवेचना से यह बात सर्वथा सत्य लगती हैं कि कश्मीर के सर्वाधिक पुराने चित्रकार पुरातन पश्चिम शैली की मध्य देशीय उप शैली के पीछे चलने वाले थें। बाद में हंसुराज नामक चित्रकार ने वहां नवीन परम्परायें स्थापित की जो बाद तक चलती रही।

वैसे कश्मीर, चित्रकला का प्राचीनतम केन्द्र रहा है। भारतवर्ष के उत्तरांचल के सभी देशों में यहीं से चित्रकला का प्रचार हुआ हैं। यहां के चित्र अधिकतर स्थानीय चित्रकारों के द्वारा ही सर्जित है। जिनमें अजन्ता की मुद्राओं की परम्परा का निर्वाह हुआ है। विशेषकर नारी मुद्रायें तो उसी भावभंगिमा पर आधारित है।

''कश्मीर में जो चित्रशैली प्रचलित थी जिसका उल्लेख अनेक मध्यकालीन साहित्यों में उपलब्ध है किन्तु बहुचर्चित इस चित्र विधा में आकें गये चित्र अभी उपलब्ध नहीं हैं। इसमें काई दो राय नहीं कि कश्मीर, चिकला का अत्यन्त समुन्नत केन्द्र रहा है और यहां धीरे–धीरे एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ जिसमें प्रादेशिक विशेषताएं निहित थीं। अकबर द्वारा कश्मीर से अनेक चित्रकारों के बुलाये जाने का उल्लेख मिलता है।

हमारे देश के इतिहास में कश्मीर का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है। यहां का स्वर्गिक सौन्दर्य एवं उत्फुल्लतादायक कलामय वातावरण ही इसकी विशेषता रही है। कश्मीर के चित्रविदों के लिए वहां का मनोहारी अलौकिक सोन्दर्य प्रेरणा का स्रोत रहा है। यही कारण है कि उस धरती पर रची गयी चित्र रचनाओं में कश्मीर का प्राकृतिक वैभव व सौन्दर्य स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। यहां के राजाओं को सदा से ही सम्मान के साथ इसलिए देखा जाता रहा है कि यहां से श्रेष्ठ साहित्यों की रचना हुयी है। जो हमारे देश की बहुमूल्य उपलब्धि है साथी ही कला की सर्जना में भी इस धरती का अंपना

विशेष योगदान रहा है।

प्रसिद्ध सेवी एवं कला पारखी श्री वाचस्पति गैरोला ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय चित्रकला' में उल्लेख करते हुए लिखा है कि – "भारतीय चिकला के इतिहास में कश्मीर चित्रशैली का इसलिए विशेष महत्व है कि अपनी स्वतन्त्र सत्ता की प्रतिष्ठा करने की अपेक्षा उसके द्वारा समस्त मध्ययुगीन शाखाओं और विशेष रूप से पहाड़ी चित्र शैलियों को पनपने तथा आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा मिली है।

भारतीय चित्रकला के सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुगल शैली को सही मार्ग पर प्रशस्त कराने मे कश्मीर शैली का बड़ा योगदान रहा है और यह योगदान महान् सम्राट अकबर के प्रयासों का फल था। यद्यपि इस युग की चित्रविधा पर प्रकाश डालने वाले प्रमाणों का सर्वथा अभाव था। किन्तु हम कभी भी इन तथ्यों से विमुख नहीं हो सकते कि भारतीय चित्रकला के इतिहास में दक्षिण शैलियों के उन्नतिशील चित्रों के सृजनकाल से लेकर मध्य ययुगीन शैलियों के विकास काल को क्रमबद्धता प्रदान करने में कश्मीर चित्र कला ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

संस्कृत साहित्य का आगार प्रस्तुत करने वाला कश्मीर क्षेत्र, भारतीय संस्कृति के अभ्युदय में भी अपना पूर्ण सहयोग दिया है। तिब्बत, चीन, जापान, नेपाल और अन्य सुदूर पूर्व भागों में भारतीय चित्र कला की जो विभिन्न धारायें प्रस्फुटित हुयीं उसकी जन्म–भूमि कश्मीर ही रही। जैसे हिमालय की उपत्यका में स्थित गंगोत्री उसे समृद्धि से परिपूर्ण करती है उसी प्रकार नाना कलाचित्र विधाओं को परिपुष्टता देने में सक्षम, भारतीय पृष्ठभूमि में कश्मीर चित्र विधा का भी सम्मान युक्त स्थान है।

प्रारम्भ से ही कश्मीर चित्रविधा का एक अपना अलग ही स्वरूप रहा है, जो अत्यन्त समृद्धि एवं परिपुष्ट रही है। जिसने अपनी विशेषताओं के कारण पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। यही नहीं इस चित्रविधा में विशेषकर उत्तर मध्ययुगीन चित्र शैलियों को

पर्याप्त प्रेरणा देकर अग्रगण्य बनाया किन्तु भारतीय चित्र—शैलियों में प्राण फूंकने वाली कश्मीर शैली का क्रमबद्ध इतिहास दुर्लभ ही बना रहा। आज भी वह शोध का क्षेत्र बना हुआ है। इस विषय में 'राजतरंगिणी' ऐसा इतिहास—प्रसिद्ध ग्रन्थ भी मौन है। कहना न होगा कि इतिहास एवं संस्कृति के महान पंडित 'कल्हण' को भी इसके स्रोत का पता नहीं चल सका।

कश्मीरी चित्रविधा और नारी अंकन

कश्मीर चित्र शैली की खोज हमेशा से ही होती रही है, किन्तु कुछ विशेष तथ्य सामने नहीं आए। प्रसिद्ध इतिहासकार तारा नाथ ने ही 'हंसुराज' के सम्बन्ध में लिखा है कि इस चित्रकार ने चित्रकला के क्षेत्र में नव शैलियों को जन्म दिया। इस विषय पर डॉ० स्मिथ के विचार से भी कुछ प्रकाश पड़ता है, कि ७४० ई० में महाराज ललितादित्य ने कामौर विजय के उपरान्त मध्य देश से कुछ चित्रविदों को अपने साथ कश्मीर ले गया। उन्हीं चित्रकारों के द्वारा वहां कश्मीर चित्रशैली का प्रसारण हुआ। तथ्य जो भी हो इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि १५ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक मध्ययुकगीन चित्रविधाओं के विकास में इस शैली की प्रमुख भूमिका रही है और अकबर के द्वारा बुलाये गये कश्मीरी चित्रकारों के कार्यो का प्रभाव अकबरकालीन चित्रशैली पर अवश्य पड़ा है।

पहाड़ी शैली का जो स्वरूप अब हमारे समक्ष उजागर हुआ है उसको देखकर निश्चित रूप से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनको प्रेरित करने में कश्मीर शैली का प्रमुख हाथ रहा है। उदाहरण स्वरूप— गढ़वाल तथा वसोहली शैली के रागमाला गीतगोविन्द, भागवत तथा रामायण, व नायिकाभेद के चित्रों में नारी के वस्त्राभरण, मुकुट आदि के अंकन में स्पष्टत: कश्मीर शैली का प्रभाव दिखता है। चूंकि इस शैली में स्वतन्त्र कृतियों का अभाव है पर जो इस शैली से प्रभावित चित्रशैलियां हैं उनमें प्रभावित नारी अंकन ही इस चित्रविधा का प्रतिनिधित्व करती है। यही प्रभाव

कांगणा शैली के चित्रों में लक्षित होता है। भावभंगिमा, मुद्रायें, वस्त्राभरण सभी पर कश्मीर शैली का प्रभाव है। ऐसा लगता है कि आश्रय विहीन कलाविदों ने ही इस शैली को जन्म दिया और कालान्तर में पहाड़ी चित्रविधा में कार्य करने लगे। कुछ विद्वानों का मत है कि पहाड़ी चित्रकला कश्मीर चित्र शैली की ही देन है अत: ये कश्मीर शैली के अन्तर्गत ही है। पहाड़ी चित्र शैली कश्मीर चित्र शैली के बहुत बाद की सर्जना है। कश्मीर चित्रशैली के प्रभाव से ही अन्य पहाड़ी शैलियां प्रकाशित हुयी हैं ऐसा सहज ही स्वीकार किया जा सकता है।

शाहनशाह अकबर द्वारा तैयार कराये गये चित्रों में किस्सा 'अमीर हम्जा' के चित्रों का उस युग की चित्रकला में विशेष स्थान है। इसमें अनेक चित्र शैली के चित्र समिश्रित है। जिसमे कश्मीर चित्रविधा के चित्र भी हैं। इनमें यत्र—तत्र नारी चित्रण भी है। उनके वस्त्र—विन्यास पर पूर्णतया ईरानी प्रभाव है।

'हम्जा चित्रावली' में चित्रित अन्य वातावरण का अंकन कश्मीर वातारवण की ही अनुकरण हो सकता है अन्यत्र का नहीं। पर्वत मालाओं के चित्र पूर्णतया कश्मीरी प्रभाव को अभिव्यक्ति करते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इन चित्रों की पृष्ठभूमि पर कश्मीर शैली का प्रभाव है। इन चित्रों के अतिरिक्त कुछ फुटकर चित्र भी मिले हैं, जो कि रामायण और दशावतार तथा कृष्ण लीलाओं पर आधारित हैं। इन चित्रों की पृष्ठभूमि में शीर्षभाग पर संस्कृत भाषा में श्लोक अंकित हैं ये चित्र कश्मीर शैली की उत्कृष्ट रचनाएं हैं। इन चित्रों में विशेषकर कृष्णलीला सम्बन्धी चित्राकृतियों में पर्याप्त नारी मुद्राओं का अंकन दर्शनीय है। इनके वस्त्राभरण सौन्दर्ययुक्त है। मुखाकृति अन्य शैलियों से भिन्न है किन्तु कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। कहीं नृत्य मुद्रा तो कहीं प्रतीक्षीता नारी, कहीं कृष्ण के संग रास• रंग में लिप्त मुग्धा नायिका चित्रण इस कला की निधि है।

प्रसिद्ध विद्वान एवं चित्रकला के अन्वेषक तथा कलापारखी

श्री रायकृष्णदास ने रसिक प्रिया के भी चित्रों का उल्लेख किया है जो कश्मीर शैली के हैं जिनमें नारी की विभिन्न मुद्राओं श्रृंगाररता नारी, स्नात्का—नारी एवं अन्य कई नारियों के चित्र भरे पड़े हैं। इस चित्रावली के २२ चित्र विदेशों में संग्रहीत हैं। 'कश्मीर शैली के रागमाला चित्रों में नारी की सुन्दरतम अभिव्यंजना देखी जा सकती है। रंग योजना परिष्कृत है। साथ ही नारी के नाना रूपांकनों में सौन्दर्यता का समावेश किया गया है।

१६ वीं शताब्दी में आगरा के शक्तिवाहन नामक एक चित्रविद द्वारा निर्मित जैन ग्रन्थों पर आधारित 'शीलभद्रचरित्र' एवं 'चित्रपट्ट' भी कश्मीर शैली के सुन्दर उदाहरण हैं।

भारत कला भवन वाराणसी में संग्रहीत कश्मीर शैली के दो हस्तलिखित ग्रन्थ 'सचित्र गीता' एव "भागवत' खर्रा के रूप में सूक्ष्म अक्षरों में अंकित एवं चित्रित हैं। जिसमें देवी—देवताओं के चित्र बने हैं। उसकी बारीकी एवं सफाई देखने योग्य है। कश्मीर चित्र शैली में धार्मिक व श्रृंगारिक दोनों विषयों के चित्र आंके गये हैं। धार्मिक चित्रों में भगवान कृष्ण के जीवन लीलाओं सम्बन्धी चित्र हैं और श्रृंगारिक चित्रों में वे चित्र हैं जो रीतिग्रन्थों पर आधारित हैं। इन चित्रों में सुन्दर भंगिमायें, मुद्राओं का मोहक अंकन, यथार्थ वस्त्राभरण, सब कुछ उत्तम है। इनमें रेखायें सुकोमल हैं रंग अधिक चटक नहीं हैं पर प्रभावशाली हैं। इस शैली की कृतियों में मुख्य रंगों का ही प्रयोग देखने का मिलता है। वेशभूषा और अलंकरण पूर्णतया भारतीय हैं। चेहरे सवा चश्म ही है। पर नाक की लम्बाई अधिक नहीं है। आंखों का अंकन भी स्वाभाविक लगता हैं, मुद्रायें गतिमान हैं। पृष्ठभूमि को अलंकारों से सज्जित किया गया है। काश्मीर, परम्परा से ही भारतीय संस्कृति में पूर्ण योगदान देता रहा है। इस शैली के जो कुछ थोड़े चित्र उपलब्ध हुये हैं उनमें प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त मानवीय चित्रों की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुयी है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में कश्मीर शैली का विशेष

स्थान इसलिये हैं कि इस चित्र शैली ने अपनी समन्वयात्मकता तथा आदर्शवादिता के कारण अन्य शैलियों के सृजन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां एक ओर कश्मीर चित्र शैली ने परम्परागत भारतीय चित्रकला को आधा ार मानकर उसमें नवीन जीवन तत्वों को समाहित कर नाना नारी भंगिमाओ का सृजन किया वहीं उसने राजपूत, मुगल और पहाड़ी चित्रविधाओं को पुष्पित और पल्लवित होने में प्राण डालने का काम किया।

''१६ वीं तथा १७ वीं शताब्दी के बने अनेक स्फुट चित्र भी मिले हैं। जो कि रामायण, दशावतार, तथा कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित हैं इन चित्रों को भी कश्मीर शैली का बताया जाता है।

कश्मीर शैली के उक्त स्फुट चित्रों के अतिरिक्त अन्य चित्र भी मिले हैं जिसका निर्माण १६ वीं शताब्दी में हुआ था। ऐसे चित्रों में 'रसिकप्रियां' के ४४ चित्रों का उल्लेख श्री रायकृष्णदास जी ने किया है। अकबर द्वारा निर्मित कराये गये 'अम्जाचित्रावली' में कश्मीर शैली का कितना अंश है इसकी समीक्षा करने में 'रसिकप्रिया' के उक्त चित्रों से बड़ी सहायता मिलती है।

''आज कश्मीर शैली से सम्बद्ध जो चित्र सुरक्षित है उनमे आक्सफोर्ड की वोडलियन का चित्राधार प्रमुख है। इस चित्राधार (एलबम) में रागमाला के १८ चित्र हैं कश्मीर कलम के कुछ भित्ति चित्र ओरछा तथा दतिया के महल में सुसज्जित हैं।



चित्रकला का पुनरूत्थान एवं नारी रूपों का अंकन

मध्यकाल के उत्तरार्ध में भारतीय चित्रकला पर जो विदेशी प्रभाव पड़ा उसने हमारी कला चेतना को प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप कला में कुछ नवीनता दृष्टि गत होने लगी। १४ वीं शती के अन्तिम काल तथा १५ वीं शती के पूर्व युग में भारतवर्ष के हरेक क्षेत्रों में फिर से एक बार नवजीवन की लहर दौड़ गयी। हमारे देश का कला कौशल मानों पांच सौ वर्षो की गहरी नींद के बाद फिर से जगने की तैयारी करने में संलग्न हो गया। भारतीय चित्रकला का पुनरूत्थान प्रारम्भ हो गया। इस युग को एक बार पुन: धर्म ने प्रेरित किया और चित्रकारों ने नवशैलियों में चित्रांकन प्रारम्भ कर भक्ति आन्दोलन से सम्पूर्ण देश को प्रभावित किया। मुसलमानों के एकेश्वरवाद के साथ सामंजस्य स्थापित करने हेतु कबीर आदि महात्माओं ने जिस निर्गुण ब्रह्म की आराधना का मार्ग निकाला वह चिरस्थायी नहीं हो सका। लेकिन 'वल्लभाचार्य' और 'रामानुजाचार्य' आदि के द्वारा प्रतिपादित सगुणोपासना से भारतीय जनता को बड़ा बल मिला। यही नहीं हिन्दू धर्म का यह नया रूप जनता का प्राण बन गया। इसी धार्मिक आन्दोलन ने चित्रकला जगत में भी एक तीव्र हलचल पैदा कर दी।

'भागवतपुराण' में जिस कृष्ण और राधा के प्रेम का बीजारोपण किया गया था वह १६ वीं शती में आचार्य वल्लभाचार्य के प्रयत्नों से सिंचित होकर अंकुरित हो उठी। वही विशुद्ध प्रेमगाथा पवित्र भक्ति का रूप धारण कर जन—मानस के समक्ष मार्ग—दर्शन हेतु उपस्थित हो गई।

जनता को अपनी धार्मिक प्रवृत्ति को तृप्त करने का मार्ग

मिल गया और चित्रकला उसकी माध्यम बन गई। नि:सन्देह ऐसी स्थिति में चित्रकला को नव जीवन मिला। भगवान श्रीकृष्ण के जीवन की घटनाओं के चित्र बढ़ते गये। आज भारतवर्ष के विभिन्न संग्रहालयों में ऐसे सुन्दरतम चित्र तो संग्रहीत हैं ही, जो भारतीय चित्रकला की दक्षता का प्रतिनिधित्व करती हैं। सगुणोपासक महात्माओं के व्यक्ति चित्रों का भी सृजन हुआ और पर्याप्त संख्या में उन चित्रों का उपयोग धर्मपिपासु जनता द्वारा किया गया। यह प्रगति का आन्दोलन बहुमुखी था। संगीत की उन्नति हुई। संगीत ने चित्रकला को भी प्रेरित किया और राग मालाओं को चित्रांकन करने की प्रवृत्ति बढ़ी। लोगों को इससे बड़ी प्रेरणा मिली। सबसे बड़ी बात तो यह हुयी कि चित्रकला अपने अतीत के मार्ग को त्याग कर नव प्रयोग के मार्ग पर चल निकली। ''मध्यकालीन भारतीय कवियों ने नाटकीय काव्यों का सृजन किया है। उनकी कृतियों में अनोखा प्रेम स्वरूप दर्शनीय है। जयदेव, विद्यापीठ, बिहारी, केशव—दास आदि ने अपने कृतियों में जिस प्रेम को अभिव्यक्त किया है वे यथार्थपूर्ण नियोजन से परे नहीं है।

धर्मप्राण जनता की धार्मिक पिपासा को शान्त करने के लिए चित्रकला का माध्यम ग्रहण किया गया और पूर्व प्रचलित सुलिपि शैली के स्थान पर एक ऐसे शैली का जन्म हुआ जिसे हम आगे चलकर राजस्थानी शैली की संज्ञा से विभूषित करते हैं। वास्तविकता यही है कि कुछ सुल्तानों की संरक्षता में शुद्ध ईरानी शैली अपने पूर्ण वेग से चल रही थी वह अब इस भारतीय शैली से मिश्रित हो गयी और इसके बाद जिस नव शैली का प्रस्फुटन हुआ, उससे राजस्थानी मुगल तथा पहाड़ी शैली का अस्तित्व सामने आया। राजस्थानी और पहाड़ी शैलियां स्थान की भिन्नता के कारण अलग—अलग जगहों पर अनेक उप शैलियों के नाम से विकसित होती रहीं, जिसे वहां के हिन्दू राजाओं ने पूर्ण संरक्षण दिया था।

इस नव जागरण ने धर्म के क्षेत्र में विशद क्रान्ति तो उत्पन्न किया ही कला के क्षेत्र में भी नव शैलियों को जन्म देने में सहायक

हुआ। अब तक चल रही सुलिपि शैली के अपभ्रंशित रूढ़िवादी चित्रों के स्थान पर नई विधा ने प्रवेश किया और समय तथा शैलियों के बन्धन से जकड़े कलाकारों ने जो अब तक अपभ्रंश शैली में सीमित विषयों को चित्रांकित करते आ रहे थे तथा जिनकी आत्मा को सब प्रकार से अवरोधित कर रक्खा गया था उनके लिए स्वतन्त्रतापूर्वक सृजन करना कठिन था। उन्हें इस नव प्रेरणा ने कृष्णभक्ति को आधार मानकर कृष्ण—राधा के पावन स्नेह को अपनी तूलिका से साकार करने को वाध्य कर दिया। वैष्णववाद के प्रचार के साथ ही भक्ति की और प्रेम की धारायें जन—जीवन में प्रवाहित हो उठीं। कृष्ण जतीवन में भक्ति और प्रेम विषयक चित्रों के सृजन की नई विधा चल पड़ी। कुछ समय के बाद यही राधा और कृष्ण राग—रागनियों आदि विषय चित्रों को आंकते आंकते चित्रकारों ने अलौकिक से लौकिक प्रेम विषयक चित्रांकन भी करने लगे। कला तो नित्य ही प्रतिक्षण नवीनता धारण करने वाली होती है फिर चित्रकारों के समक्ष एक ही विषय कब तक प्रेरणा का स्रोत बना रहता। धीरे—धीरे जन—जीवन के चित्र, नायिकाभेद पर आधारित नाना चित्र, लौकिक प्रेम गाथाओं के चित्र, बनने लगे। वास्तव में प्रेम और भक्ति के माध्यम से चित्रकला में लौकिक विषयों का अंकन भी समाविष्ट हो गया। इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि चित्रकला में बहुमुखी प्रगति के द्वार खुल गये। ''राजस्थानी चित्रकला, गुजराती चित्रकला से अपनी अधिक ओजस्वी लयात्मक गति रंगों के अधिक विस्तृत नमूने और संरचना की अधिक ाक स्पष्टता मे भिन्न है। ये सोलहवीं शताब्दी से पूर्व के नहीं माने जा सकते। सबसे प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला के चित्र सूक्ष्म चित्र हैं। जो मांडू (१५४० ई०) के दरबार से दिगम्बर जैन मत के नियामतनामा पाण्डुलिपियों से प्राप्त हैं। ''मृगावती'' (भारत कला भवन वाराणसी) जयदेव कृत 'गीतगोविन्द'' (एन०सी० मेहता संग्रह लगभग १६०० ई०) जो १३५ से अधिक चित्रों से सज्जित है। गोपियों के साथ कृष्ण की सनातन प्रेम—लीला को चित्रित



हुक्कापान (राजस्थानी शैली)

करता है।

इस युग में कृष्ण जीवन विषयक तथा रागमाला सम्बन्धी और कथा काव्य सम्बन्धी जितने भी चित्र मिले हैं वे सुलिपि शैली से सर्वथा भिन्न हैं। इस शैली के चित्रों में रूढ़ियों के त्याग का आभास मिलने लगता है। साथ ही चित्राकृतियां अधिक स्वाभाविक लगने लगती हैं। नारी चित्रणों में वस्त्राभरण अब अधिक स्वाभाविक लगते हैं। जैसा उस काल में उपयोग किया जाता था, वस्त्राभरण यथार्थत: वैसे ही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह युग ऐसा था जब भारतीय चित्रकला विकास की ओर अग्रसर हुई और नव चित्र विधा अपने स्वरूप को आरम्भ कर सकी। इस चित्र शैली में नारी की अगणित मुद्राएं चित्रित की गयीं जो आज भी भारतीय चित्रकला की बहुमूल्य निधि बन कर सुरक्षित है जिसकी विवेचना निम्न अंशों में प्रस्तुत की जायेगी। नारी दिन और रात के ६४ विखण्डों में चौंसठ रूप धारण करती है। चित्रकला की अभिव्यंजना शक्ति ने नारी के उस चौंसठ कलाओं से युक्त चौंसठ रूपों में से सर्वाधिक रूपों का अंकन बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है।

राजस्थानी चित्रकला और नारी अंकन

भारतीय चित्रकला में राजस्थानी चित्रशैली धार्मिक आन्दोलन के फलस्वरूप ही उद्‌भुत हुयी थी, इसलिए स्वाभाविक ही था कि इसके चित्रांकन का विषय अधिकाधिक धर्म प्रधान हो। इस काल के पूर्व जो चित्र विधा प्रचलित थी जिसे अभभ्रंश या सुलिपि शैली की संज्ञा दी जाती रही है, ईरानी प्रभाववश अपना स्वरूप बदलने लगी। पूर्व प्रचलित शैली की सारी रूढ़ियां इस शैली में दूर हो गयीं। चेहरे सवाचश्म के स्थान पर एक चश्म बनने लगे। नेत्रों की भंगिमा भी बदल गयी। वस्त्रों में कठोरता समाप्त होने लगी। ये अन्तर मात्र शैली के ही हैं, विषय दोनों शैलियों के लगभग एक से ही रहे हैं। दोनों में कृष्ण जीवन, रागमाला, श्रृंगार और ऋतु सम्बन्धी चित्र मिलते हैं। इस काल में व्यक्ति चित्रों की बाहुल्यता एवं जैन चित्रों का अभाव है। सुलिपि शैली में जैन चित्र ही अधिक चित्रित होते थे। जैन विषयक चित्रों की अधिकता के कारण

ही इसे जैन शैली भी कहा जाता रहा है। उस युग में व्यक्ति चित्र बहुत कम बनाये जाते थे। सुलिपि शैली के चित्र अधिकतर प्रमुख ग्रन्थों के इकहरे कागज पर बने हैं, जबकि राजस्थानी शैली के चित्र अलग—अलग और मोटे कागजों पर बने हैं। पूर्व के चित्रों में नीले पीले और लाल रंगों की ही अधिकता है। जबकि राजस्थानी चित्रकला में विभिन्न रंग तथा चटकीले रंगों का उपयोग देखने को मिलता है। राजस्थानी चित्रशैली में नारियों का चित्रांकन अत्याधिक है। विभिन्न दृष्टिकोण से अवलोकन करने पर ऐसा आभास होता है जैसे राजस्थानी चित्र विधा सुलिपि शैली का उत्कृष्ट रूप हो। यह शैली भारतीय चित्रकला के इतिहास में लगभग १५०० ई० से १९०० ई० तक अस्तित्व में रही। क्रमश: प्रगति की ओर बढ़ती हुयी यह चित्रविधा अधिक परिपुष्ट होती गयी। इस शैली की चित्रकला को डा० कुमार स्वामी ने राजपूत शैली की संज्ञा दी है जिसमें पहाड़ी शैली भी सम्मिलित है हांलाकि पहाड़ी शैली का स्वरूप इससे कुछ भिन्न हैं, जो आज एक अलग चित्रविधा का प्रतिनिधित्व करती है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि राजस्थानी चित्र विधा ने मुगल शैली से बहुत कुछ लिया और मुगल शैली पर अपनी प्रतिभा का प्रभाव भी डाला। राजस्थानी चित्रकला में मात्र वैष्णव विषयों के ही चित्र नहीं अन्य कृतियों का भी अंकन हुआ । इसके अतिरिक्त विलक्षण कृति "चौर पंचाशिका" का चित्रण भी किया गया, जो मूलत: प्रेम और श्रृंगार पर ही आधारित विषय हैं। अवधी प्रेमगाथा 'लौर—चन्दा' और 'मृगावती' में भी लौकिक प्रेम का ही आख्यान प्रस्तुत है जिसका बड़ा ही मनोहारी चित्रण देखने को सुलभ है।

राजस्थानी चित्रकला की कृतियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है। एक भक्ति चित्रण दूसरा रीति चित्रण। भक्ति जीवन में कृष्ण जीवन की लीलाओं का सौन्दर्ययुक्त चित्रण हैं तथा रीति चित्रण में हिन्दी के रीति काव्यों पर आधारित विषयों की मनमोहक अनुकृति है। इन रीति काव्यों से सम्बन्धित चित्रों में

नायक—नायिका भेद प्रमुख है।

राजस्थानी शैली में हमें एक विशेष प्रकार का चित्र भी देखने को मिलता है। जिनमें अगणित नारी चित्रांकन हुए हैं। इन कृतियों में नारी की चोटी, पहुंची, भुजबन्द और लहंगे के मोड़ में विशेष रूप से बड़े एवं काले रंग के फूलदार झब्बे लटकते हुए हैं। ऐसे ही झब्बे अकबर व जहांगीर कालीन चित्रों में भी दृष्टिगत होते हैं पर वास्तव में यह अपभ्रंश शैली का समुन्नत रूप ही लगता है, जिसका प्रारम्भ लगभग १५ वीं शताब्दी से राजस्थान में प्रारम्भ हो गया था। यही चित्र विधा बाद में मेवाड़ शैली में परिवर्तित हो गयी। इस शैली के चित्रों में नारियों की चोटी तथा लहंगा के नाड़े उसमें लटकते हुए बड़े झब्बे विशेष हैं। इन चित्रों में चित्रित रागमालाओं के चित्र बड़े ही मार्मिक लगते हैं। चित्रकारों ने नायिका के चित्रांकन में विशेष सफलता प्राप्त किया है। नारियों के चित्रण में सौन्दर्य, परम्परा के अनुकूल चित्रित किये गये हैं। जिसमें अलंकारिकता अधिक है। लटकते हुए इन झब्बेदार चित्रों वाले परम्परा में चित्रित 'गीतगोविन्द' का चित्र श्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें भगवान कृष्ण नारियों के साथ नृत्य मग्न हैं।

राजस्थानी चित्र विधा के अनेक लक्षण मुगल शैली से मिलते जुलते हैं, इसी कारण चित्रकला के इतिहास में इस शैली को मुगल शैली का ही एक अंग माना जाता रहा है। डा० कुमार स्वामी के खोज के फलस्वरूप इस चित्र विधा की विशेषताएं समक्ष आ सकीं। यही नहीं इस शैली को मुगल शैली से अलग निरूपित किया जा सका। अब तो अनेक लक्षण इस चित्रविधा का अलग अस्तित्व सिद्ध करने में समर्थ हैं जो सिद्ध कर देते हैं कि राजस्थानी शैली मुगल कला से पूर्व की है और उस पर बाद में मुगल कला का प्रभाव अवश्य पड़ा। किन्तु राजस्थानी चित्रशैली में जो विशष्टता विराजमान है वह मुगल चित्रकला मे नहीं आने पायी है।

भारतवर्ष में "मुगलों के आगमन के पूर्व ही भित्ति चित्रण की परम्परा समाप्त प्राय: हो गयी थी। मात्र अपभ्रंश पुस्तक चित्रण

की परम्परा ही विद्यमान थी। लगभग ५०० वर्षों तक अपभ्रंश शैली में ही सृजन होता रहा। कुछ तकनीकी विभिन्नता अवश्य दृष्टिगोचर होने लगी। संस्कृत भाषा के कई ग्रन्थ जैसे 'गीतगोविन्द' 'रसमंजरी' आदि का भी चित्रण अब नायक—नायिका भेद के आधार पर होने लगे। उस युग की सर्वाधिक विशेषता यह रही कि काव्य और चित्रकला दोनों ने ही एक दूसरे को प्रभावित किया। काव्य में वर्णित नायिका के सौन्दर्य को चित्रकारों ने अपना प्रिय विषय बनाया और उनके चित्रांकन में पूर्ण सफलता प्राप्त की। चित्रकला एवं काव्य दोनों ही मानव मन को आनन्दानुभूति कराने के माध्यम हैं, अतः दोनों ने मिलकर एक विशेष अध्याय का सृजन किया। स्वर्गीय मधु मेहता के मधु मालवा संग्रह से लगभग १५ वीं शताब्दी का एक ऐसा चित्र सुलभ हुआ है जिसका चित्रांकन मालवा के मांडू क्षेत्र में हुआ जिसमें पूर्व जैन परम्परा की पुर्नव्यवस्था दृष्टिगत होती है। उन्मुक्त प्रेम की तीक्षणताओं का उत्कृष्ट प्रभावशाली संकेत दर्शाया गया है। पूर्ण समतलीय लाल पृष्ठभूमि, आनन्दमय प्रभाव की सृष्टि करती है। पार्श्व में टिमटिमाता हुआ दीपक जो शून्य शय्या पर अपना प्रज्वलित प्रकाश विकीर्ण कर रहा है ऐसा प्रतीत होता है मानों वह पुष्पाच्छादित वृक्षों के उर्ध्व गमन की समता कर रहा हो। दोनों ही उन्मुक्त मिलन के प्रतीक हैं। स्त्री कुछ उद्विग्न है और अपने प्रिय पर कुछ शासन करती हुयी सी लगती है। चन्द्रावती के मुखाकृति पर क्रोध की भावना है। उसका प्रिय उसके पैरों को धीरे—धीरे ऊपर उठाता है। वास्तव में नायक की यह क्रिया उसके अतिप्रेम प्रवृत्ति का सूचक है। इस प्रकृति की अभिव्यक्ति संस्कृत काव्यों मे अत्याधिक हुई और बाद मे भारतीय चित्रकला में चरित्र प्रधान सूत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वस्त्र विन्यास पर ईरानी प्रभाव विद्यमान है। वस्त्राभूषणों में फुन्दे लगे हुए हैं। आंखों में कुछ विकृत के लक्षण है फिर भी यह चित्र सुन्दर है। और यह अपभ्रंश के बाद के युग का प्रतिनिधित्व करता है।

"गीतगोविन्द" पर आधारित एक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। चित्र में कुछ शैलियों का समिश्रण है। कठोर मुद्राएं, बड़ी—बड़ी आंख वाहय प्रदर्शित उभड़े हुए आभूषण सभी मालवा शैली के परिचायक है। किन्तु रंगयोजना राजस्थानी हैं। पुष्प युक्त वृक्ष, चित्र रचना को और भी कल्पनात्मक बना देते हैं। वैसे उड़ीसा के चित्र अधिकतर ताड़पत्र पर अंकित किये जाते थे जबकि अन्यत्र यह विधि बहुत पहले ही समाप्त हो गयी थी। सामूहिक चित्रों में कामसूत्र पर आधारित चित्रों का अधिक सृजन हुआ है। प्रस्तुत चित्र में भी राधा—कृष्ण का प्रेम दिग्दर्शन कराया गया है जिसमें राधा बैठी हुयी हैं और कृष्ण उनकी कलाई थाम कर एक हाथ मे एक बड़ा सा कड़ा पहना रहे हैं। इसमे तेज तिरछी आंखें और व्यग्र मुखाकृति पश्चिमी भारत की जैन चित्रकला की याद दिलाती हैं। यह सम्भव है कि इस प्रकार की कला किसी समय अपने उद्‌गम स्थान में ही नहीं बल्कि उड़ीसा और अन्य भागों में भी प्रचलित थी। पोशाक और रत्नाभूषण की सज्जा ही इसे उड़िया (उड़ीसा शैली) का रूप प्रदान करती हैं।

१५७० ई० का चित्रित एक चित्र "पत्र लिखती हुई प्रेमिका" का महाराज वीकानेर के संग्रहालय से प्राप्त हुआ है। १६ वीं शती में संगीत की शास्त्रीय (परम्परागत) रीति राग आदि रागिनियों को देवी और देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और उनकी कथाओं को अभिव्यक्त करने वाले चित्रों की रचना की गयी है। उनके उन्मुक्त प्रेम के मान्य परम्पराओं पर रचित कविताओं को आधार माना गया है। इस चित्र में नायिका अपने प्रिय को विरह से परिपूर्ण पत्र लिख रही है। नीचे फर्श पर अलंकारिक मयूर अंकित है। पास में दासियों के चित्रण है। वस्त्रों की रचना, उनकी मुद्रायें मुगल शैली के पूर्व की कला का आभास करा देती हैं। काव्यों में इस प्रकार के नाना दृश्य सौन्दर्यमय चित्र रूपों में ढाल दिये गये हैं। उन सुन्दरतम कृतियों का आधार नारी अंकन ही है। राजस्थानी शैली के एक चित्र में श्रीकृष्ण को राजकुमार की तरह

अंकित किया गया है जो वाटिका में राधा से प्रणय—निवेदन करने हेतु उनके पीछे—पीछे चल रहे हैं।

''महाकवि केशव ने 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' की सुन्दर भावमयी रचना की जिसको तत्कालीन चित्रकारों ने व्यापक रूप से चित्रांकित किया। 'रसिकप्रिया' से भी उत्कृष्ट 'कविप्रिया' जैसे रीति काव्यों को चित्रमय रूप दे देने में चित्रकारों ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। ब्रजभाषा को नई दिशा मिली और इसी शैली पर अनेक काव्यों की रचना होने लगी। साथ ही चित्रकारों ने उन्हें अपनी दक्ष तूलिका से चित्रित करके एक ऐसे नव शैली को प्रवाहित किया जो युगों तक चलती रही।

डा० रामनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''मध्यकालीन भारतीय कला एवं उनका विकास'' नामक ग्रन्थ में महाकवि केशव के योगदान की चर्चा करते हुये लिखा है कि ''केशव ने काव्य में दो परिपाटियों को जन्म दिया। उन्होंने सोलह श्रृंगार एवं स्त्री अलंकरण के सोलह प्रसाधनों का वर्णन किया है। चित्रकारों ने भी इन सोलह श्रृंगार को ध्यान में रखकर अपनी चित्राकृतियों में नारी का अंकन किया है। यही कारण है कि शास्त्रोक्त एवं श्रेष्ठतम विधि से नारी चित्रांकन हो सका। महाकवि केशव ने काव्य में 'बारहमासा' गीतों की रचना करके एक नई दिशा दी। ये लौकिक श्रृंगारमयी रचनायें बड़ी प्रचलित हुयीं। ब्रजभाषा काव्य में 'बारहमासा' गीतों पर आधारित विषयों ने देशी चित्रकारों को अत्याधिक आकर्षित किया। जिसका मूल कारण नारी का नख—शिख सौन्दर्य तो था ही साथ ही साथ प्रकृति के सुमनोहर छटा का चित्रांकन करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। चित्रकारों ने प्रेम भावना को नवीन ढंग से व्यक्त करने का माध्यम ढूंढ लिया। यह यथार्थ सत्य है कि उस युग में संगीत ने अपने नये आयाम ढूढ़े और संगीत की प्रगति के साथ ही साथ राग माला के चित्र बनाये जाने लगे। यह एक विलक्षण आश्चर्य है कि चित्रकारों ने संगीत के अव्यक्त भावों को भी रेखाओं और रंगों के माध्यःयम से साकार करने में पूर्ण सफलता प्राप्त किया है। लगभग १८ वीं

शताब्दी का एक चित्र जो प्रिन्स आव वेल्स बम्बई के संग्रहालय में सुरक्षित है। इस चित्र में एक नर्तकी का सौन्दर्य अभिव्यक्त किया गया है। सौन्दर्य अभिव्यंजना की दृष्टि से यह कृति श्रेष्ठ है। इसमें नारी की शारीरिक सुन्दरता श्रेष्ठता को प्राप्त है।

'अमरुशतक' ग्रन्थ जिसे राजस्थानी शैली के चित्रों द्वारा सज्जित किया गया है नारी के अगणित मुद्राओं से परिपूर्ण है। इस शैली के चित्रों में लाल रंग के पृष्ठभूमि अपभ्रंश चित्रों की याद दिलाते हैं।

राजस्थानी चित्रों में दैनिक जीवन के चित्रों की भरमार है। श्रृंगार करते नारी, गाते बजाते, स्नान करते नारियों के असंख्य चित्र दर्शमीय हैं। राजस्थानी शैली के अन्तर्गत बूंदी में निर्मित तथा वर्तमान प्रिन्स आव वेल्स संग्रहालय बम्बई में संग्रहीत एक 'हुक्कापान' नामक चित्र है जिसमें तीन नारियों के चित्र हैं। नारी के चित्रों की भंगिमा मोहक है। वस्त्रों पर मुगल प्रभाव लक्षित होता है।

''राजस्थानी शैली के चित्र महापुराण नामक एक दिगम्बर जैन ग्रन्थ की १५४७ ई० की प्रति में भी मिले हैं इसमें लगभग ४५० चित्र हैं।''

नारी चित्राकृतियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि नारी चित्रण वास्तविकता के अत्यन्त निकट लाकर चित्रित किया जाने लगा। राग माला के चित्रों का अंकन पन्द्रहवीं शती में प्रारम्भ हो गया था जिसका यथार्थ निखरा रूप १६ वीं शती में प्रकट हुआ। १५५० ई० की गुजराती कल्पसूत्र की एक प्रति में सर्वप्रथम राग माला के चित्र देखने को मिलते हैं। उसके बाद इस विषय पर अनेक कृतियां जैसे संगीत पारिजात, देव कृत 'राग—रत्नाकर' तथा अन्य कई ग्रन्थ हुये, जिसमें नारी की भंगिमायें दर्शनीय हैं। इन रागमाला के चित्रों का चित्रांकन वहीं हुआ जहां राग विशेष की प्रधानता थी। पंजाब प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में जो हिन्दू रियासतें थीं। वहां इन हिन्दी काव्यों को बहुत आदर मिला। किन्तु इन स्थलों पर रागमाला के चित्रों का अंकन नहीं के बराबर है। राजस्थान, मालवा, बुन्देलखण्ड में ही इस विषय के चित्रांकन की बाहुल्यता देखने को मिलती है।

राग माला के चित्रों में नारी अंकन

राजस्थानी शैली का जन्म १५ वीं शताब्दी माना जाता है। रागमालाओं के अंकन का प्राचीन रूप हमें बीजापुर से प्राप्त राग माला चित्रावली में देखने को मिलता है जिसकी रचना शैली में अपभ्रंश कला की कुछ विशेषताएं भी स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। इस तथ्य से हम कभी भी विमुख नहीं हो सकते कि संगीत सम्बन्धी चित्रों की मूल प्रेरणा ऋतु गीतों एवं नायिका भेद से मिली थी, क्योंकि उसी के आधार पर रागों का मानवीयकरण ब्रजभाषा के कवियों ने किया। इसके पूर्व पृष्ठभूमि में भक्ति आन्दोलन का ही प्रभाव निहित था। भगवान योगिराज कृष्ण के राग प्रधान सगुण रूप ने संगीत मर्मज्ञों में यह भाव जागृत कर दिया कि प्रत्येक राग अथवा रागिनी का दैवी स्वरूप भी है। संगीत की पराकाष्ठा उस दैवी रूप को धरातल पर साकार करने में ही है।

आराध्य का साक्षात्कार साधक मंत्री और ध्यान से करता है। इसलिए संस्कृत और ब्रजभाषा में पद्य की रचना ध्यान करने के लिए की गयी। रागमाला के चित्र भी इसी आधार पर चित्रित किये गये हैं। साहित्यिक परम्परा में प्रचलित नायक—नायिका के रूप में किया गया और उन्हें चित्र कृतियों में उतारा गया। अत: इस स्वरूप चित्रांकन में सौन्दर्य सरसता नारी के लालित्यमय रूप की अनेक कृतियां साधना की पराकाष्ठा को प्राप्त है। इन चित्रों में प्रकृति का

सुन्दर रूप नारी चित्रांकनों को और अधिक आकर्षक बनाने में सफल हुआ है। प्रयाग संग्रहालय में संग्रहीत राग भैरवी का चित्रण बड़ा ही सुन्दर है। यह चित्र नारी चित्रांकन के सर्वगुणात्मक रूप का प्रतिनिधित्व करता है। राग रत्नाकर के अनुसार प्रत्येक राग की पंच रानियां हैं जिसे हम रागिनियां कह सकते हैं। इन प्रत्येक रागों से श्रृंगाररस की निस्पत्ति होती है। इस श्रृंगार प्रधान चित्रण में नायक और नायिका का रूपक खींचा गया है। डा० सुरेश नारायण सक्सेना का कहना है कि –'रागमाला के चित्रों में श्रृंगार अभिव्यक्त होता है। उनमें कई श्रेणियों में ऐसे चित्रण हैं जो नायक–नायिका भेद को अभिव्यक्त करते हैं।

रागमाला के चित्र ऋतु चित्रणों से पूर्ण साम्य रखते हैं। जैसे राग मेघ का अंकन वर्षाऋतु के चित्रण से भिन्न नहीं है। वे दीपक राग के चतुर्दिश प्रज्जवलित दीपों का चित्रांकन है। जैसा राग हो उसी ऋतु में गाने का विधान है। इसी कारण चित्रों की पृष्ठभूमि में उन्हीं ऋतुओं का चित्रांकन भी होता था। रागमाला के चित्रों में 'टोणी रागिनी, असावरी, और मधुमाधवी आदि रागों में सुन्दर नायिका चित्रण देखने को मिलता है। नारियों का सौन्दर्ययुक्त चित्रण राजस्थानी शैली की अपनी विशेषता है। इनमें चित्रित नायिकायें काव्यों में वर्णित नारी सौन्दर्य के आधार पर चित्रित की गई है। साथ ही इन कृतियों में राजस्थानी शैली की विशेषता भी परिलक्षित होती हैं चेहरे एक चश्म, आंखें सौन्दर्ययुक्त, नासिका का सुन्दर अंकन, नारी शरीर में सौन्दर्य की पराकाष्ठा विद्यमान है। वस्त्राभरण उस युग में प्रचलित नारीवस्त्रों के समान है। इन चित्रों में नारी का वेणी बन्धन अत्यन्त मनोरम है। अधिकतर गूंथी हुयी चोटियां और उसमें लगे हुये फुन्दे इस शैली की विशेषता को अभिव्यक्त करते हैं।

इन चित्रों के पृष्ठभूमि में ऋतुओं के चित्रों का अंकन होने के कारण रागमाला, नायिकाभेद तथा बारहमासा के चित्रों में बड़ा भ्रम

उत्पन्न हो जाता है क्योंकि इनमें चित्रांकन एक दूसरे से पूर्णतया साम्य रखते हैं। दृश्य चित्रण नारी वेशभूषा, शारीरिक भंगिमायें, सभी एक दूसरे से मिलती हैं और रंग योजनायें लगभग एक ही जैसी है। इनमें भेद करना बड़ा कठिन हो जाता है, किन्तु रागमाला के चित्रों में राग का ध्यान अंकित कर दिया गया है। इन चित्रों के अंकन में जहां नारी का अंग प्रत्यंग सौन्दर्ययुक्त एवं लालित्यपूर्ण ढंग से दिग्दर्शित कराया गया है वहीं प्रकृति का सुन्दर एवं मार्मिक अंकन चित्र शैली में प्राण फूकंने में पूर्ण समर्थ हुआ है। पशु, विहंग, वृक्ष, लतायें सभी में मानवीय भावों को आर्विभूत करके इसका अंकन किया गया है जो इस शैली की अपनी विशेषता है। इस शैली में सृजित चित्र अत्यन्त लोकप्रिय हुए और इस लोकप्रियता से प्रेरित होकर ही नये नये राग रागिनियों की खोज हुयी तथा नये रागों का स्वरूप समक्ष आया। अन्तत: इन राग रागिनियों की संख्या १०८ के लगभग हो गयी जिनकी अनेक प्रतियां चित्रांकित हुयीं जिनमें अगणित सौन्दर्ययुक्त नारी का अंकन दर्शनीय है। भगवान श्रीकृष्ण और गोपियों को राग और रागिनी के रूप में नायक—नायिका मानकर चित्रित किया गया है। राजस्थान के बूंदी शैली में एक ऐसा चित्र प्राप्य है जिसमें कृष्ण और गोपियों का नृत्य एवं संगीत में लिप्त चित्रण है। पृष्ठभूमि में बादलों का सुन्दर दृश्य मोहक है। यह मेघ मलार राग की अभिव्यक्त करने वाला सौन्दर्ययुक्त चित्र है जिसमें मेघों का सुन्दर रूप चित्र संयोजना में जान डाल रहा है। राजस्थानी रागमाला के चित्रों में गौरी रागिनी का भी सुन्दर चित्र देखने को मिलता है जिसमें तीन नारी चित्रण अपने भाव विन्यास एवं सुन्दर मुद्राओं के लिए विख्यात हैं। पृष्ठभूमि में प्रकृति का तथा पक्षियों का अलंकारिक रूप दर्शनीय है।

मध्यकाल में उत्तर भारत के जौनपुर नगर में भी रागमाला के चित्रों का अंकन हुआ। उत्तरमध्यकालीन युग में जब वहां शर्की का राज्य था चित्र एवं वास्तु कला की आशातीत उन्नति हुयी। वहां चित्रित राग माला चित्रों पर अपभ्रंश शैली का प्रभाव है। जौनपुर

केन्द्र में चित्रित विषयों में रागमाला के चित्र तो हैं और उनमें नायिका भेद का अंकन भी है किन्तु नारी चित्राकृतियां अपभ्रंश के अधिक निकट हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में जौनपुर में रागमाला चित्रों का विकास ऐसी स्थिति में हो रहा था जिसमें राजस्थानी शैली के समान ही दूसरी परली आंख का अभाव था, साथ ही एक चश्म आकृतियां नारी शरीर में सौन्दर्य की अधिक अभिव्यक्ति, किन्तु जकड़ अकड़ से बहुत दूर, आंख की पुतली का बड़ा आकार, इत्यादि विशेषताएं थी। यह स्वरूप राजस्थानी शैली का ही प्रारम्भिक रूप था जो आगे चललकर पूर्ण विकसित हुई और लगभग १९ वीं शताब्दी तक फूलती फलती रही।

इस शैली के चित्राकृतियों में विशेष कर नारी चित्रण के क्षेत्र में अनेकानेक नारी आकृतियों का सृजन हुआ जो आज भी भारतीय चित्रकला की निधि बनी हुयी है। आगे चलकर नारी के नखशिख सौन्दर्य की आभा भी इन चित्रों में दर्शनीय है। मेवाड़ की धरती जो वीरों की धरती मानी जाती रही है वहां अपभ्रंश शैली में नारी चित्रण देखने को मिलते हैं। फिर आगे पन्द्रहंवी शताब्दी तथा सोलहवीं शताब्दी में यहां के चित्रकला का विकास अवरूद्ध सा हो गया। सम्भव था कि वहां के राजनीतिक उथल—पुथल के कारण कला को प्रोत्साहन न मिला हो, किन्तु आगे सम्राटों की संरक्षण पाकर यहां भी नाना प्रकार के चित्रांकन होने लगे जो मुगल प्रभाव से प्रभावित हो गये। भागवतपुराण की कई प्रतियां यहां चित्रांकित की गई पर सभी मध्यकाल के बाद की ही है। कविवर केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' का भी चित्रांकन हुआ जिसमें अनेक नारी चित्रांकन है। इन ग्रन्थों पर आधारित नायिका चित्रांकनों में बहुत से चित्र मुगल प्रभाव से ग्रसित हैं। ऐसा आभास होता है कि इन नारी चित्रों में लम्बी किन्तु अनुपातिक सुन्दर नासिका, लम्बे चेहरे तथा मछली के समान सुन्दर नेत्रों वाली नारी आकृतियां अत्यन्त सुन्दर हैं।

राजस्थानी चित्र विधा में जहां एक ओर कृष्ण भक्ति विषयक तथा रीति ग्रन्थों पर आधारित चित्रों की सर्जना हुई वहीं रागमाला के श्रेष्ठ चित्रों का भी निर्माण होने लगा। उनका विशेष

स्थल आमेर, बून्दी, जोधपुर था जहां विभिन्न परिपाटियों में चित्र सृजित किये गये। प्रत्येक शाखा में कुछ अपनी विशेषता थी जिसके आधार पर उनकी चित्र विधा को पहचाना जा सकता है। बूंदी शैली के चित्रों में मुगल प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नारी वस्त्र विन्यास, अलंकरणों पर मुगल प्रभाव है। इस शैली के अनेक चित्र प्रयाग तथा वाराणसी कला भवन के संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इनमें एक चित्र 'राग विलावल' बड़ी ही विलक्षण कृति है। इस चित्र में तीन नारियों का अंकन है। एक नारी जिसकी आकृति, सौन्दर्य रूप रंग मोहक एवं कुलीन है, अपनी रूप सज्जा में लीन है। दूसरी नायिका हाथ में आरसी लिए दिखला रही है। दोनों नायिकाओं का चित्र बड़ा ही मोहक है। पार्श्व में बैठी एक सेविका वाद्य यंत्र बजा रही है। संगीत की मधुरिम ध्वनि के बीच श्रृंगार रत नारी का अद्वितीय चित्रण इस कृति की विशेषता है। पृष्ठभूमि में महल का सुन्दर चित्रण है। कुल मिलाकर इस चित्र की रचना अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त है।

रागमाला के चित्रों में नारी अंकन स्थान की भिन्नता के आधार पर लगभग सभी स्थानीय शैलियों में कुछ न कुछ अन्तर के साथ अवश्य हुआ है। इन चित्राकृतियों में नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। रागों के साथ ही साथ इनकी भी महानता कलात्मक दृष्टि से अत्याधिक है। मुगल शैली से प्रभावित राग माला के चित्रों में नारी वस्त्र—विन्यास पूर्णतया मुगल शैली के ही है। वस्त्रों में घांघरे व रंग—रंजित दुपट्टों का अंकन अत्याधिक है। नारी भंगिमा कलात्मक है तथा सौन्दर्याभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है। रागमाला के चित्रों में 'रागिनी ककूम' का भी सुन्दर चित्र मोहक है इस चित्र में नारी चित्रण के साथ ही साथ प्रकृति का सुन्दर चित्रण, चित्र का प्राण ही है। ❑



काव्य चित्रों पर आधारित नारी अंकन

राजस्थानी चित्रकला में काव्य चित्रों का बड़ा महत्व है जैसा ऊपर हम वर्णन कर आये हैं कि वैष्णववाद के अभ्युदय ने इस दिशा में सृजनात्मक क्रान्ति पैदा कर दिया। १२ वीं शताब्दी से १५ वीं व १६ वीं शताब्दी तक कितने ही कवियों ने लाक्षणिक सौन्दर्य से युक्तकाव्य ग्रन्थों की रचना की जिसमें देव कृति 'गीतगोविन्द' उल्लेखनीय है। यह काव्य ग्रन्थ १२ वीं शताब्दी का है। इसके पूर्व लगभग १० वीं शताब्दी में 'भागवतपुराण' में भी कृष्ण और व्रज बनिताओं के प्रेम का उल्लेख आता है। इसी कृष्ण प्रेम की भावना ने वैष्णव वाद की नीव को पृथ्वी के अन्तराल तक में सुदृढ़ कर दिया। लगभग १६ वीं शताब्दी में वल्लभाचार्य जी ने कृष्ण के पावन प्रेम को जनमानस तक पहुंचाया। विल्व मंगल ने 'बालगोपाल स्तुति' में भी इसी प्रेम चर्चा को अपना आधार बनाया है। महाकवि केशव की 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' ने नारी के श्रृंगार मय रूप को जनमानस के पटल पर उतार दिया जिससे नारी का लौकिक रूप चित्रांकित करने की प्रेरणा मिली और नारी के अंग प्रत्यंगों का यथार्थ चित्रण हुआ। 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ में नायक—नायिका भेद ही प्रमुख है। अत: स्वाभाविक रूप में चित्रकारों ने 'रसिकप्रिया' पर आधारित नारी को चित्रों में ढाल दिया। उन काव्य चित्रांकनों में नारी के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं। कविवर केशव ने 'रसिकप्रिया' में नारी के सोलह श्रृंगार का उल्लेख किया है। इससे चित्रकारों को नारी चित्रांकन में विशेषकर श्रृंगारिक रूप चित्रण के लिए एक स्वस्थ आधार मिल गया।

राजस्थानी चित्रविधा के बूंदी चित्रशैली में अनेक नायक एवं नायिका के चित्र देखने को मिलते हैं। मुगल प्रभाव से युक्त इस चित्र विधा का एक अपना अलग ही रूप है। वाराणसी कला भवन

से प्राप्त एक सुन्दर नायक—नायिका चित्र ऐसा है जिसमें नारी का सुन्दर चित्रण अवलोकनीय है। नायक—नायिका को अपने दाहिने पार्श्व में भूजालिंगित किये दिखलाया गया है। उसके आगे गुड्डे के समान छोटे आकार में सेवक है। नायक अपने बायें हाथ में हुक्का पकड़े धूम्रपान कर रहा है। महल के आगे आंगन का दृश्य है। आंगन में बहुत बड़ा सा पिंजड़ा पड़ा है जिसमें पक्षी कलरव कर रहे हैं। कुछ पक्षी बाहर निकल कर दाने चुग रहे हैं। बर्तन में पक्षियों के पीने का जल रक्खा है जिस पर पक्षी टूटे पड़ रहे है। ये पक्षी सम्भवत: कबूतर हैं। नायक और नायिकाओं के पीछे दासीं खड़ी चामर झल रही है। नायिका एवं दासी के सौन्दर्य में भिन्नता दिखलाने के लिए रंगों का सहारा लिया गया है। दासी को श्याम व नायिका को गौर वर्णा बनाया गया है जो इस शैली की विशेषता है। नारी के मुखांकन की सुन्दरता अद्वितीय लगती है। वस्त्र बड़े सलीके के हैं। आभूषणों में काले फुंदने लटक रहे हैं। महल के उस पार द्वार पर चिक पड़ा हुआ है, जिसके पार खड़ी नारी का चित्रण सुन्दर है। चिक के अन्दर से उसकी झलक दिख रही है जो बड़ा ही मार्मिक लगता है साथ ही चित्रकार की दक्षता को अभिव्यक्त करता है।

महाकवि केशव ने बारहमासा ऋतुओं के गीतों की रचना प्रारम्भ करके अन्य ब्रजभाषा के कवियों के लिए मार्ग खोल दिया, साथ ही चित्रकला में नारी अंकन के अपार विषयों के सृजन की भी प्रेरणा मिली। हर ऋतु में वियोगिनी नारी का चित्रण हुआ। बारहमासा के ये चित्र बड़े ही सौन्दर्ययुक्त एवं जनप्रिय हुए है। इन कलात्मक कृतियों में नारी के विभिन्न मुद्राओं के साथ ही साथ प्रकृति का मनोहारी चित्रण उल्लेखनीय है। चूंकि नारी के विभिन्न अभिधेय ही इन ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, इससे प्रेरित होकर नारी के नाना रूपों का सृजन इस शैली के चित्रकारों ने किया काव्य ग्रन्थों के आधार पर चित्रित किये गए चित्रों में 'मृगावती' अवधी काव्य का भी बड़ा महत्व है। 'चौरपंचाशिका' में उत्तमकोटि का नारी चित्रण दर्शनीय है। इसी तरह 'गीतगोविन्द' को भी अलग—अलग स्थानों पर

चित्रित किया गया था, जिनमें पर्याप्त नारी मुद्रायें दर्शनीय हैं। बाद के चित्रित 'गीतगोविन्द' के चित्र अपभ्रंश शैली से भिन्न स्वाभाविक तथा अधिक सजीव है। उन चित्रित नारी मुद्राओं में लयात्मकता विद्यमान है।

काव्य ग्रन्थों में जिनके चित्र विशेष रूप से आंके गये उनका विषय लौकिक प्रेम ही था। प्रेम के विशेष आलम्बन नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण, चित्रकारों ने अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त ढंग से किया है। 'अमरूशतक' व 'रसमंजरी' ग्रन्थों पर आधारित चित्र बहुत कम बने हैं। दंतिया जो राजस्थानी शैली के चित्र सृजन का प्रमुख केन्द्र था, वहां के महाराजा 'शत्रुजीत' के काल में मतिराम के 'रसराज' काव्य का चित्रांकन विस्तार से हुआ है। इन ग्रन्थों पर आधारित जो नारी चित्रण देखने को मिलते हैं उसमें अष्ट नायिका अथवा दस नायिका का चित्रण विभिन्न रूपों में हुआ है। किन्हीं चित्र में 'प्रोषित पतिका' नारी का चित्रण है तो कहीं खंडिता व कलहान्तरिता नारी के चित्रण दर्शनीय है। कहीं विप्रलब्ध तो कहीं वासकसज्जा व कहीं उत्कंठिता तथा अभिसारिका नारी के मनोरंजक चित्र अंकित किये गये हैं जिन्हें देखकर बस देखते ही रहने की इच्छा होती है। नायिका भेद और रागमाला चित्रों में श्रृंगारिक दृश्यों के विविध प्रकार के नारी सौन्दर्य का निरूपण हुआ है। ''स्त्री की सुकुमार शरीर की लज्जालु, चेष्ठाएं और गतियां प्रवाहमान लयात्मक रेखाओं, मधुर रूपों तथा कोमल झलक में गुम्फित है, जो प्रेम और सुन्दरता का संसार उत्पन्न कर देता है जो उतना ही शाश्वत है, जितना वह प्रेम, जिसमें उस नारी ने अपना हृदय उड़ेल दिया है। ''ये नारी चेष्टाएं श्रृंगार रस के उन उपरोक्त भावों तथा संवेग का समावेश करती हैं जो उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को उन्नत और रूपान्तरित करती है।

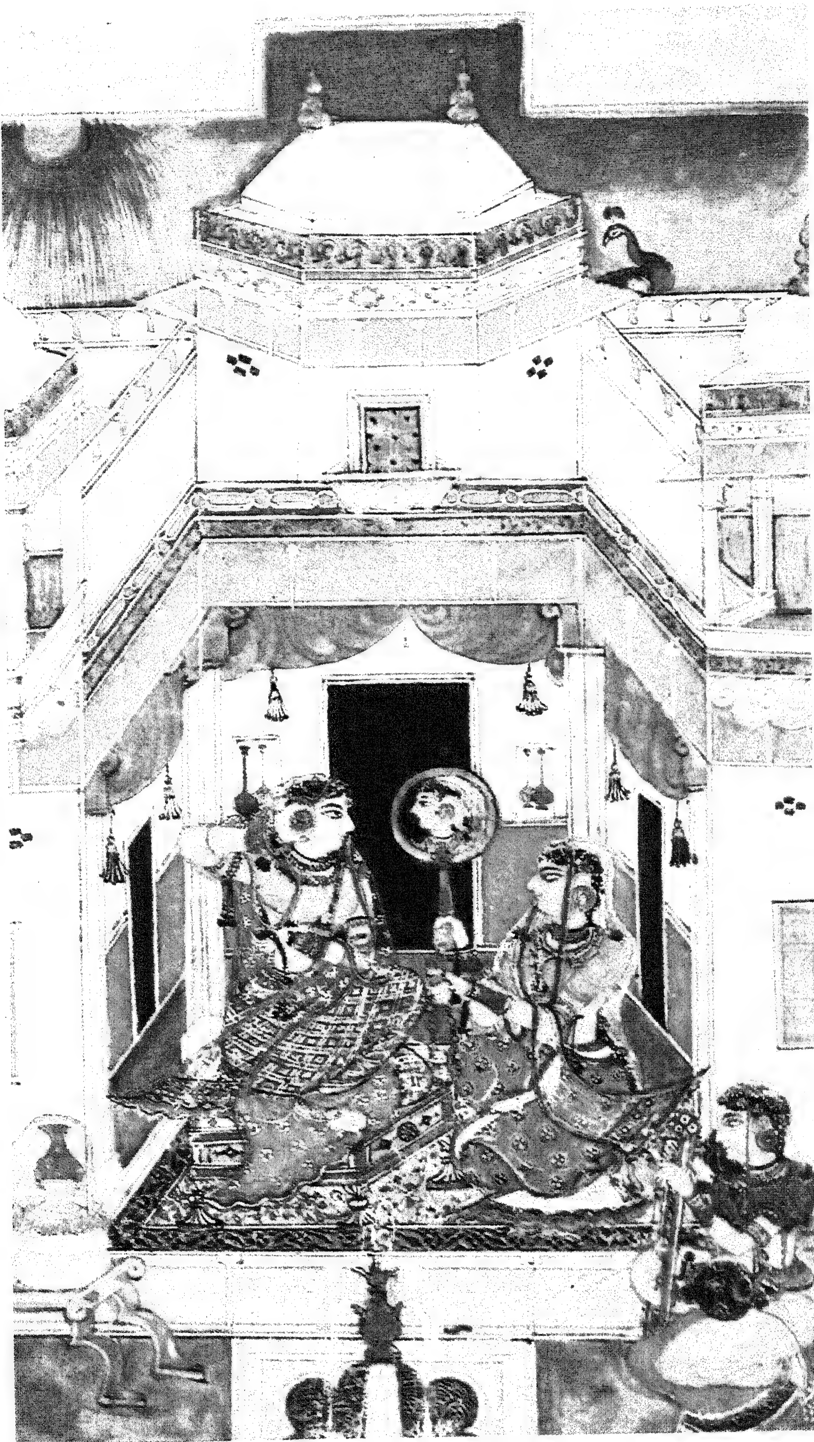
कृष्ण जीवन से सम्बन्धित कई ऐसे चित्रों का अंकन हुआ है जिसमें स्वाधीनपतिका नारी का चित्रण है। इनमें भगवान श्री कृष्ण द्वारा राधा का श्रृंगार करते चित्रांकित किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण

अपने प्रिया राधा के वेणीबन्धन को संवारंते हुए अनेक जगह चित्रित किये गये हैं। इसी तरह आगतपतिका नारी, प्रवत्स्यतू प्रेयसी नारी का चित्रांकन भी बड़ा मनोहर लगता है। ये सभी प्रेम आख्यान काव्यग्रन्थों के आधार पर नारी के अगणित चित्रांकन राजस्थानी शैली की बहुमूल्य निधि हैं जिनमें भारतीय नारी का वास्तविक स्वरूप झलकता है।

'वालगोपाल—स्तुति' में चित्रांकन अपभ्रंश शैली से भिन्न है। नारियों के चित्रण में लयात्मकता है। वेणीवन्धन पूर्वचित्रित शैली से भिन्न है। वस्त्र अलंकरण, हाथों की मुद्रायें सब कुछ एक नवीन चित्रविधा की ओर संकेत करते हैं।

डा० कुमारस्वामी इस नव विकसित शैली को राजपूत शैली की संज्ञा देते हैं। इस शैली को उन्होंने दो शैलियों में विभाजित किया है। एक राजस्थानी दूसरी पहाड़ी शैली। राजस्थानी शैली का क्षेत्र बुन्देलखण्ड और राजपुताना प्रदेश है तथा पहाड़ी शैली के चित्रों का सृजन—क्षेत्र कांगड़ा, जम्मू, गढ़वाल, पंजाब व हिमालय क्षेत्र मानते है। आगे पहाड़ी शैली विभिन्न ,क्षेत्रीय देशी राजाओं की संरक्षता में देशगत विभिन्नता के साथ खूब विकसित हुयी। इनमें नारी की सुन्दर श्रृंगारिक भंगिमा का अंकन बेजोड़ है। राजस्थानी शैली का सृजन क्षेत्र राजस्थान, मेवाड़, बीकानेर, जोधपुर, और बूंदी है। बुन्देलखण्ड में ओरछा और दतियां दो विशेष केन्द्र थे जहां रीति चित्रों का तथा रागमाला चित्रों का अंकन हुआ। ये पहाड़ी शैलियां मुगल सम्पर्क के साथ धीरे—धीरे विकसित हुई और अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी। भारतीय चित्रकला के इतिहास में ये चित्रशैलियां नारी चित्रांकन के लिए अद्वितीय हैं। ❑





रागिनी विलावल (बूंदी शैली)

मुगल चित्र शैली

भारतीय चित्रकला के इस पुनरुत्थान के साथ ही साथ हमारे देश में एक ऐसी सत्ता का उदय होता है जिसमे कला की प्रवृत्ति कूट—कूट कर भरी हुयी थी। भारत में मुगल वंश की सत्ता को जन्म देने वाला बाबर मध्य एशिया का निववासी था। उसका सम्बन्ध ईरान से बराबर बना रहा। सुलभ इतिहास के पृष्ठ यह नहीं बतलाते कि बाबर के दरबार में किसी चित्रकार को संरक्षण प्राप्त था। हां इस बात का प्रमाण अवश्य मिल जाता है कि बाबर कला प्रेमी और कला तत्व का पारखी अवश्य था। बाबर ने अपनी आत्मकथा में ईरान के प्रख्यात चित्रकार 'विहजाद' के कलाकृतियों की समीक्षा लिखी है जो बाबर की चित्रकला—विषय के मार्मिक ज्ञाता होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। बाबर का यह कला प्रेम उसके वंश में अनेक पीढ़ियों तक चलता रहा इन्हीं कलाप्रिय मुगल शासकों की संरक्षता में पुष्पित भारतीय चित्रकला को पुनः एक बार पल्लवित होने का सुअवसर मिला। चूंकि मुगल जाति विदेशी थी, इस कारण स्वाभाविक था कि भारतीय चित्रकला भी विदेशी प्रभाव से प्रभावित हो।

भारत पर मुगलों के आक्रमण से पूर्व ईरान में चित्रकला का विकास अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर चुका था जो चीनी चित्रकला से प्रभावित थी। इस प्रकार भारतीय चित्रकला पर ईरानी चित्रकला का प्रभाव पड़ना युग संगत ही था। बाद में भी मुगल सम्राटों का ईरान से सम्पर्क बना ही रहा।

बाबर का पुत्र हुमायूं भी अपने जीवन में संघर्ष ही करता रहा। उसका जीवन कठिनाइयों में ही व्यतीत हुआ फिर भी कलाप्रियता उसे विरासत में मिली थी। वह युद्ध में भी चित्रकला के

लिए कुछ न कुछ समय निकाल ही लेता था। यदि हम हुमायूं को भारतीय चत्रिकला में मुगल शैली का बीजारोपण करने वाला कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस समय वह भारत से भाग कर ईरान पहुंचा वहां की चित्रकला ने इसे अत्यधिक आकर्षित किया और हुमायूं ने वहां रह कर ईरानी चित्रकला के गूढ़तम तत्वों का अध्ययन किया। यही नहीं भारत लौटते समय वह अपने साथ दो प्रमुख चित्रकार 'ख्वाजा अबुस्समद' और 'मीर सैयदअली' को ले आया। हुमायूं भारत में एक नवीन शैली को जन्म देना चाहता था क्रिन्तु दुर्भाग्यवश यह पवित्र कार्य उसके हाथों नहीं हो सका और भारत पहुंचने पर उसकी मृत्यु हो गयी। चित्रकारों के इस प्रगतिशील शैली को संरक्षता देने का श्रेय उसके पुत्र अकबर को मिलता है।

मुगल चित्रकला का इतिहास इस वंश के शासन के साथ–साथ चलता रहा है। बाबर और हुमायूं कला–प्रेमी होते हुये भी परिस्थितियों वश कला को जो रूप देना चाहते थे नहीं दे सके। वास्तव में मुगल चित्रकला का युगारम्भ अकबर के काल में ही हुआ। भारतीय चित्रकला में मुगल चित्र शैली महान कला प्रेमी यौवन को प्राप्त कर शाहजहां के काल से ह्रास को प्राप्त होने लगी। इस प्रकार भारतीय चित्रकला की यह विशिष्ट शैली लगभग २५० वर्षों में अपना विकास उत्थान और पतन देखकर विनष्टप्राय हो गयी।

मुगल चित्रकला का पैत्रिक विकास स्थल तो ईरान समरकन्द और हिरात ही था जहां तैमूर वंशीय सम्राटों की संरक्षता पाकर ईरानी चित्रविधा ने संसार की बेजोड़ कृतियों को जन्म देने में समर्थ हुयी। वहां की चित्रकला अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंच कर 'विहजाद' जैसे कलामर्मज्ञ को जन्म दिया। उसी ईरानी कला का प्रभाव मुगल भारतीय चित्रकला पर पड़ा । यही कारण है कि कुछ कला समीक्षक इस ईरानी चित्र शैली को ईरानी भारतीय चित्रशैली की संज्ञा देते है।

मुगल सम्राट अकबर मुसलमान होते हुए भी चित्रकला के प्रति अपार प्रेम रखता था। चित्रकला के प्रति उसके विचार बड़े ही स्पष्ट एवं उदार थे। ''वह कहा करता था कि कला चित्रकार को ईश्वर के समीप लाने का माध्यम है। वह मनुष्य को ईश्वर के समीप लाती है न कि उसे अधर्मी बनाती है। उसके विचार में चित्रकार के पास वह अद्‌भुत साधन है जिसके द्वारा वह ईश्वर को पहचानने में समर्थ है। श्री एम० पी० श्रीवास्तव का कहना है कि –– ''हिन्दू पत्नियों से यह कलात्मक रुचि अकबर को विरासत में मिली थी। उसके अन्त:पुर शयनगृह और रानियों के रहने, श्रृंगार करने, उठने बैठने के स्थान चित्रों से सुसज्जित रहते थे। इसीलिए वह अपने आराध्यदेव को इस माध्यम में उतारने को विवश है क्योंकि उसी ने उसे अंकन की प्रेरणा दी है। इससे उसकी ज्ञान गरिमा भी बढ़ेगी। इस प्रकार सम्राट द्वारा आश्वस्त होकर चित्रकारों ने प्रकृति के साथ ही साथ मानवीय चित्रों का भी सृजन किया।

महान सम्राट अकबर ने कुरान में लिखे गये इस्लामी रूढ़ियों को तोड़कर चित्रकला को दरबार में पूजित ही नहीं किया वरन् इसे धर्म का मध्यम बना देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्राट अकबर की संरक्षता प्राप्त करके अब्दुलसमद ने भारतीय ईरानी चित्रकला के नव विधा की नींव डाली। प्रसिद्ध इतिहासकार अबुलफजल ने लिखा है कि हिन्दुओं के चित्र अधिक सुन्दर होते हैं, संसार में कुछ ही उसके समकक्ष होगें।

ईरानी और भारतीय शैली कालान्तर में भारतीय हो गई, ऐसा मुगल चित्राकृतियों के सूक्ष्म अवलोकन से स्वत: स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में अकबर ने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही इस विषय में विशेष रुचि ली। इसका प्रमाण हमें तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से ही मिल जाता है। इतिहासकार अबुलफजल के पास चित्रकारों की एक लम्बी सूची थी जिनमें प्रसिद्ध चित्रकारों जैसे— मीर सैयद, दशवन्त, बसावन, ख्वाजा अब्दुस्समद आदि का नाम उल्लिखित था। अकबर इन चित्रकारों को अत्याधिक सम्मान देता था। इन्हीं दरबारी चित्रकारों ने इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थ बाबर की

आत्मकथा ''बाबरनामा'' को भी चित्रित किया था। महाभारत के 'रज्मनामा' नामक अनुवाद को, मानवीय चित्रों, प्रकृति तथा युद्ध सम्बन्धी चित्रों से सुसज्जित किया था। इन दरबारी चित्रकारों में अधिकतर हिन्दू चित्रकार थे जिन्होंने दरबारी जीवन के चित्र तो आकें ही साथ ही अनेक ऐतिहासिक चित्रों में भी सुन्दर नारी चित्रांकन किया। चांद बीबीं का अश्व पर आरूढ़ सुन्दर चित्र इसी युग में आंका गया जो आज ब्रिटिश संग्रहालय में संरक्षित है। अपने ढंग से विलक्षण दृश्यों का चित्रांकन इन चित्रकारों ने किया जो आज भी भारतीयता की निधि बनी हुई हैं। 



मुगल चित्रकला में नारी की मोहक भंगिमा

भारतीय मुगल चित्रशैली का पूर्व रूप ईरानी चित्र शैली ही रही। कारण स्पष्ट है कि प्रारम्भ में जो भारतीय चित्रकार थे वे ईरानी कलाविदों की संरक्षता में कार्य करते थे या यों कहें कि उनसे सीखते थे। इस कारण ईरानी प्रभाव से युक्त जो चित्र बने हैं उनमें आकृतियां अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त हैं। इनकी रंग योजना भी मोहक हैं। मुख्य रंग रक्तिम वर्ण के तथा नीले और सुनहरे है। इन चित्राकृतियों में रेखाओं की सूक्ष्मता दर्शनीय है। रेखाओं में कोमलता एवं एक अविरल लय विद्यमान है। इन चित्रों में तत्कालीन वेश–भूषा देखने को मिलती है। यही नहीं इन चित्रों में अलंकारों की प्रधानता दृष्टिगत होती है। ईरानी चित्रकारों ने नारियों के सौन्दर्ययुक्त चित्र बनाये। उनके सभी अवयवों का चित्रांकन बड़ी चातुरी से किया गया है। उस काल के नारी चित्रों में तत्कालीन आभूषणों का अंकन करके नारी सौन्दर्य में वृद्धि की गयी है। इस प्रकार नारी अनेकानेक रूपों एवं भंगिमाओं का चित्रण प्रारम्भिक मुगल चित्रकला में हुआ है। लैला मजनू, हीररांझा जैसे प्रेम गाथाओं का श्रृंगारमय चित्रांकन हुआ है फिर नारी के विभिन्न रूपों के अंकन का अभाव कैसे सम्भव हो सकता है। मुगल चित्रकला में नारी के मोहक रूपों का अंकन पर्याप्त मात्रा में सुलभ है।

अकबर के काल में कई ग्रन्थों को सचित्र बनाया गया जिनमें से प्रमुख ग्रन्थ 'हम्जानामा' 'बाबरनामा' 'अकबरनामा' 'लीलावती' 'लैलामजनू' आदि है। कई ऐसे ग्रन्थों को भी चित्रांकित किया गया जो संस्कृत भाषा से फारसी में अनूदित किये गए थे। इस प्रकार यह युग साहित्य और चित्रकला को निकट लाने में सफल हुआ।'' इस शैली के निर्माता अधिकतर हिन्दू कलाकार थे



राधा कृष्ण (मुगल शैली)

इसी कारण मुगल शैली की आत्मा पूर्ण भारतीय है जिनमें नारी के अनेक सौन्दर्य रूपों का अंकन प्राप्य है।

अकबर के काल में दरबारी जीवन के अधिकतर ऐसे चित्र सुलभ हैं जिसमें नारी चित्राकृतियां भरी पड़ी हैं। मुगल बेगमों के चित्र, दासियों परिचारिकाओं के चित्र, नर्तकियों के चित्र आदि अनेक भावाभिव्यक्तियों को स्पष्ट करने वाली आकृतियां उस युग के चित्रकारों द्वारा अंकित की गई हैं जो कि भारतवर्ष के ही नहीं, विदेशों के संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने में संलग्न है। एक ऐसा दुर्लभ चित्र जो आज ब्रिटिश संग्रहालय में संग्रहीत है। जिसमें दो नायिकाओं को एक संत के कुटिया में पहुंच कर वार्ता करते अभिव्यक्त किया गया है। चित्र में रात्रि का दृश्य दिखलाया गया है दूर आकाश में द्वितीया का चन्द्रमा सौन्दर्य के साथ ही रहस्यमयता को अभिव्यक्त कर रहा है। बादलों का सौन्दर्ययुक्त चित्रण दर्शनीय है। इसी संग्रहालय में प्रणय का एक सुन्दर चित्रण है जिसमें दो अश्वों पर नायक और नायिका पहाड़ों के बीच एकान्त स्थल पर विचार कर रहे हैं। नायिका दूर एकान्त चोटी पर चलने को इंगित कर रही है यह सुन्दर चित्र अपने ढंग का एक ही है। बहुत से ऐतिहासिक चित्रणों में युद्ध आदि का चित्रण भी हुआ है जिनमें स्त्रियों का अंकन भी है। रामायण, महाभारत तथा धार्मिक कथाओं के चित्रों में भी पर्याप्त मात्रा में नारी अंकन देखने को मिलता है। इन धार्मिक आख्यानों को अंकित करने वाले कलाकार हिन्दू थे और इन चित्रों का अंकन अकबर के उत्तरार्ध काल में उन्हीं चित्रकारों द्वारा किया गया जब अकबर के परिवार का राजपूत परिवारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। यही नहीं अकबर स्वयं हिन्दू धर्म की पुस्तकों के प्रति श्रद्धा रखने लगा था। उसने रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों को चित्रित करवाया। इन चित्रों में अंकित नारी चित्रण मुगल शैली के होते हुए भी उनमें पूर्ण भारतीयता विद्यमान है। इन चित्रों की अंकन विधा अजन्ता शैली से साम्य रखती है। इन चित्रों की रेखाएं स्पष्ट तथा सुन्दर है। इनमें रंगों का प्रयोग दर्शनीय है। ''मुगल चित्र शैली में नायिका चित्रों का



दीपयुक्त नायिका (मुगल शैली)

उल्लेख करते हुए डा० आशीर्वादी लाल का कहना है कि —— मुगल सामन्तों के हरम के दृश्य और विशेषकर श्रृंगार करने का चित्र बहुत ही पसन्द किए जाते थे। शराब पीता या देती हुई अथवा गाने सुनाती हुई सुन्दर स्त्रियों के चित्र अधिकता से बनाये जाते थे। नायिका भेद चित्रों के अंकन में भी मुगलकालीन चित्रकारों ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित इस शैली के नाना चित्र दर्शनीय है। इस शैली की एक चित्राकृति उसी संग्रहालय में संरक्षित है। उक्त चित्र मुगल कला शैली में अंकित अद्वितीय कृति है जो सामान्य राजपूत कथानक पर आधारित है। इसमे एक युवती निशाभिसारिका के रूप में मिलन स्थल की ओर हाथ में दीप लिये हुये प्रस्थान कर रही है। चित्राकृतियों पर स्पष्ट मुगल शैली का प्रभाव है। वस्त्राभरण, हस्त मुद्राएं, नेत्र भंगिमा एवं कर्णभार सभी कुछ बड़े ही सजीव हैं। यह सौन्दर्ययुक्त कृति मुगल नारी प्रियता का द्योतक है।

इस प्रकार का एक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। राजस्थान प्रदेश की राजधानी जयपुर, दिल्ली के अधिक समीप होने के कारण राजपूतों के प्राचीन राज्य अलवर की राजधानी थी जो अठारहवीं शताब्दी में मुगलों के प्रभाव में अधिक रहा। इसके पूर्व चित्रित चित्र तथा राजस्थान के सभी क्षेत्रीय चित्र अवलोकन से इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि इसने अपने किसी विशेष शैली का निर्माण नहीं किया। १८ वीं शताब्दी के अन्त में अवध की राजधानी लखनऊ ने इसे सर्वाधिक प्रभावित किया। इस शैली के दरबारी और बाजारू चित्रकार अनेक प्रकार की भिन्न—भिन्न शैलियों में चित्र रचना कर रहे थे। उपरोक्त कथित चित्र में लखनऊ शैली से प्रभावित इस चित्र में दो स्त्रियों का चित्रण है। उन्हें प्रेमियों का आलिंगन भी तुच्छ प्रतीत होता है। एक स्त्री एक प्याले में मदिरा ढाल रही है, जबकि दूसरी स्त्री आलस्य पूर्वक उसके स्कन्ध को स्पर्श करती हुयी चित्रित की गई है। साथ ही वह उसकी कलाई को थपथपा रही है। दूसरी स्त्री मुसलमानी

टोपी पहने है। उस युग में ऐसा भी होता था कि महाराजाओं के परिवार के हिन्दू सदस्य भी यदा कदा मुसलिम पोशाक भी पहिनते थे। सम्भव है कि ऐसा ही हो। इस प्रकार की असमानता के होते हुए भी राजस्थान के ये चित्र आत्मिक रूप से मुगल शैली से भिन्न हैं। वस्त्राभरणों के भ्रमवश भले ही हम इसे मुगल शैली का मान लें। इस चित्र में श्रेष्ठ देदीप्यमान रंग विधान और आकृति का अंकन भारतीय शैली के पवित्र लय एवं सुर की याद दिलाते हैं। राजा प्रताप सिंह (१७७९—१८०३ ई०) के राज्यकाल में जयपुर चित्रकला की मुख्य विशेषता नारी विषयक विशद् अध्ययन ही थी। इसी से इस काल में नारी चित्रण की प्रधानतां है। इस चिंत्र में भी आकृति की सादगी एवं मुद्राओं की एन्द्रियता प्रधान है।

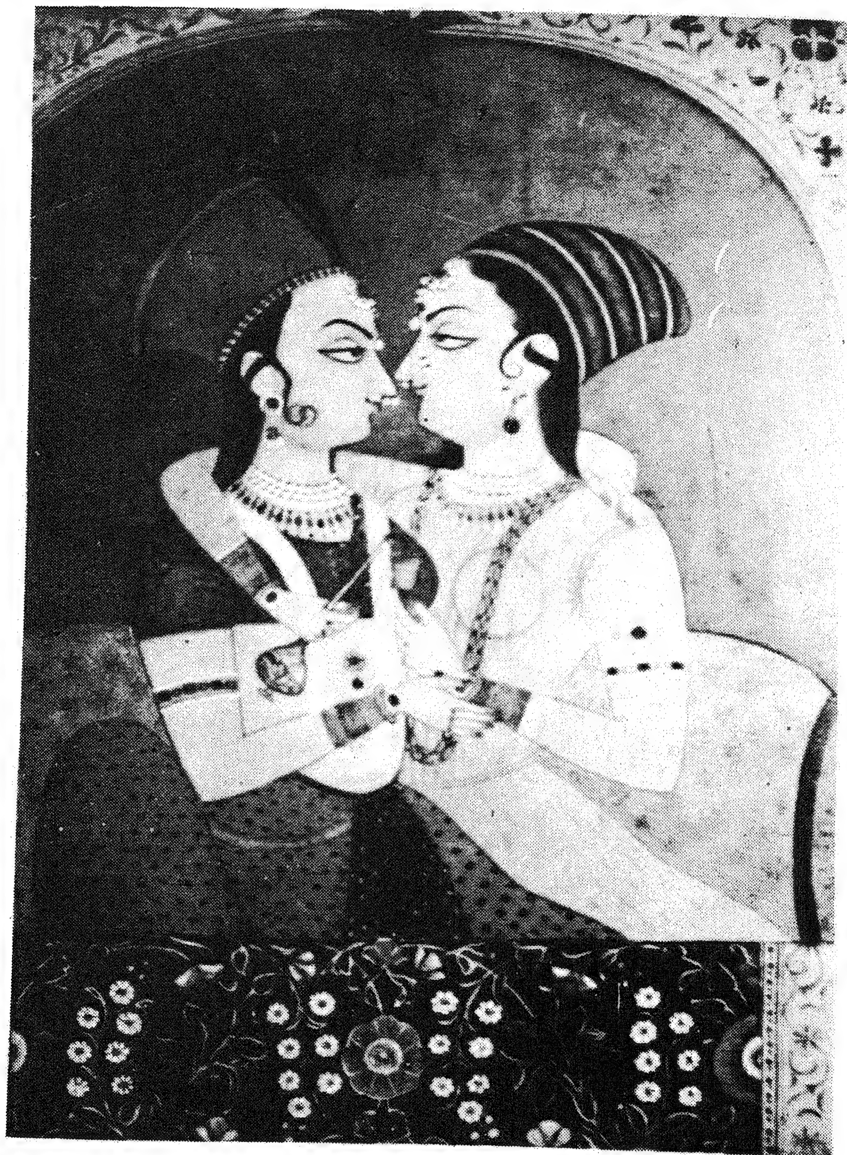
१७ वीं शताब्दी का एक और चित्र मुगल शैली में अंकित प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में संरक्षित है जिसमें रात्रि दृश्य का चित्रांकन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। मुगल कालीन चित्रकारों के लिए निशा एवं अप्राकृतिक प्रकाश एक विशेष आकर्षण का विषय रहा है। यद्यपि उनकी निशभिव्यक्ति में भय, प्रकाशन की प्रभा नहीं मिलती बल्कि उस स्थान पर आध्यात्मिक आनन्द साधना एवं ध्यान की ही अभिव्यक्ति दृष्टिगत होता है। उक्त चित्र में एकान्तमय वातावरण में नारी के सुकोमल अंग, पारदर्शी वस्त्र विन्यास एवं अर्चना मुद्रा सब कुछ चित्रकार की अमर साधना का जीवित प्रमाण है। मध्य में अंकित स्त्री के वस्त्रों के अंकन पर मुगल वंश की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। वातावरण पर शान्ति प्रदर्शन का भाव दर्शनीय है।

दिल्ली स्थित लाल किला संग्रहालय में मुगल युग की अनेक कृतियां संरक्षित है जिनसे तत्कालीन कला पर प्रकाश पड़ता है। लगभग १८ वीं शताब्दी का एक चित्र यहां संरक्षित है जिसमें नीरव रंजनी में मिलन स्थल पर प्रेमी और प्रेमिका का चित्रांकन है। यह चित्र इस बात का द्योतक है कि रंग योजना प्रस्तुत करने की मुगल विधि अजन्ता गुहा के चित्रों में प्रयुक्त विधि के समान ही है। कुछ मुगलकालीन चित्रों में यह छाया और गहरी हो गयी है।

सम्भवत: ऐसा यूरोपीय चित्र शैली के प्रभाव के कारण है। विशेषत: सिर की पृष्ठभूमि में अधिक गहरी रेखा दर्शायी गयी है। इस चित्र में मुद्राएं सौन्दर्याभिव्यक्ति एवं भाव प्रकाशन सम्बन्धी समायोजनायें गतिशील विदेशी शैली से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इसमें प्रेमी नायक—नायिका स्नेहाभिवादन में संलग्न है। पीछेपरिचारिका हाथ में मदिरापात्र लिए हुए खड़ी है। पृष्ठभूमि भी सौन्दर्ययुक्त है।

'प्रेम—पत्र' पढ़ते हुए नारी का चित्रांकन अपने ढंग का अनूठा ही है। मोहक भंगिमा में खड़ी नारी मुगल चित्रकला का सुन्दर नमूना है। आंखों की बनावट तथा उसकी भंगिमा में खड़ी नारी 'मुगल चित्रकला की सुन्दर देन है। आंखों की बनावट तथा उसकी भंगिमा अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त है। हाथों की रचना मनोहारी एवं यथार्थ चित्रण को प्रकट करता है। वस्त्र विन्यास मुगल चित्र पृष्ठभूमि में रहस्य एवं जिज्ञासा के भाव को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार अकबर के काल में जो अब तक ईरानी प्रभाव से ग्रसित थी, इसके विरुद्ध मुगल चित्रकला में जो प्रतिक्रिया व्याप्त हो चली थी वह जहांगीर के काल में ही समाप्त हुयी जबकि मुगल चित्रकला विहजाद के प्रभाव से पूर्ण मुक्त हो गई। अब मुगल चित्र कला को नई दिशा मिली और कलाकारों को विषय तथा विधा की नई प्रेरणा मिली जिसने मुगल चित्रकला को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया।

सम्राट जहांगीर के संरक्षण में मुगल चित्रकला ने जो अपना परिष्कृत रूप सामने रक्खा वह सराहनीय है। वह स्वयं चित्रकला से इतना प्रेम करता था कि वह अपना अत्याधिक समय चित्र शालाओं में और चित्राकृतियों के बीच व्यतीत करता था। उसने हरम के बेगमों के चित्र स्त्री चित्रकारों द्वारा बनवाए। इससे उसके कलाप्रियता का पता चलता ही है साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि जाहंगीर के काल में स्त्री चित्रकारों का भी अस्तित्व एवं सम्मान था। ऐसी स्थिति में नारी के कोमलतम भावनाओं तथा नारी के मोहक सौन्दर्य की रचना चित्रों के माध्य से होना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि मुगल चित्रकला में नारी के असंख्य चित्र आकें



राजमहल की दो महिलायें (मुगल शैली)

गए हैं जो आज भी भारतवर्ष के अनेक संग्रहालयों में संरक्षित है।

मुगल शैली के चित्रों में हाशियों का सुन्दर चित्रण जहांगीर कालीन चित्रकला की देन है जिससे मूल चित्रों में अभूतपूर्व सौन्दर्य आ गया है। प्रस्तुत चित्र में भी यह सौन्दर्य प्रदर्शित है। पुष्पाच्छादित वृक्षों एवं पौधों में भी वही सुथरापन है जो पर्वतों को भी अपने कांटे एवं फूलों से आवेष्टित किए रहते हैं। पंजाब के पहाड़ियों की हिन्दू चित्रकला के प्रतिकूल इसमें प्रेमियों को दृश्य चित्रों में पूर्णरूपेण घुलाने—मिलाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। पुष्पों की गहरी लालिमा दृश्यों को बड़े ही कोमलता से रंजित करती है। वास्तव में आकस्मिक आलिंगन की आनन्दमय धड़कनों को संप्रेषित करने का और कोई सुन्दर उपयुक्त संगत युक्त माध्यम नहीं हो सकता था। यह वासनाओं की अपेक्षा प्रेमियों का दरबारी सौन्दर्य है, जो इन चित्राकृतियों में अभिव्यक्त हुआ है। जहां तक रेखा रंग और रचना का सम्बन्ध है प्रत्येक वृक्ष और पुष्प असम्बद्ध दिखाई पड़ता है। आकृति और लय दोनों में किसी के साथ भी स्त्री की तुलना पुष्पों से नहीं की जा सकती जो प्रेमिका के स्थायी प्रेम भावना या लगाव को प्रदर्शित करती है। प्रेमिका के बायें हाथ में मदिरा का प्याला मात्र उसकी विरोध भावना को अभिव्यक्त करता है। यह मुगल प्रभावित चित्रकला है जिसमें प्रकृति के प्रति वह भारतीय योगदान है जिसमें रहस्यों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

प्रयाग संग्रहालय में मुगल शैली के दुर्लभ चित्रों का संग्रह है जो अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए विख्यात है। एक चित्र में मुगल राजकुमारी को विचार मग्न चित्रांकित किया गया है। राजकुमारी बैठी हुई कुछ सोच रही है। इसमें बैठी हुयी नारी की भावमय मुद्रा अत्यन्त मोहक है। रंगयोजना में विविधता है। चित्र में हरे रंग की अधिकता देखने योग्य है। वस्त्रों में भी हरीतिमा बड़ा प्रिय लगता है। वस्त्र की पारदर्शिता मुगलकालीन विशेषता का परिचायक है।

इसी संग्रहालय में नारी का एक और सुन्दर चित्र देखने को मिलता है। इसमें डाल पकड़े हुए नारी का चित्रांकन है। उत्कंठिता

नारी एक हाथ से सुकोमल वृक्ष की डाल को पकड़े हुए खड़ी है तथा दूसरे हाथ से कलाभवन वाराणसी में संग्रहीत एक सुन्दर चित्र है जिसमें एक नायिका को चकडोरी (चकई) खलते हुए चित्रित किया गया है। यह अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त नारी भंगिमा को प्रतिविम्बित करने वाला चित्र है। नारी सौन्दर्य, इसमें प्रदर्शित शारीरिक सौन्दर्य से फूटी पड़ती है वस्त्र विन्यास भी मोहक है। तूलिका का कमाल इस चित्र की विशेषता है। यह नारी चित्रण अपने ढंग का एक ही है शरीर की सुन्दरता, उसमें उत्पन्न किये गये लोच स्वयं कमनीयता से और भी द्विगुणित हो गयी है। वस्त्रों का अंकन चित्रकार के साधना को अभिव्यक्त करता है।

इसी कला भवन संग्रहालय में मुगलकालीन एक "भारतीय सुन्दरी' नायिका का चित्र संरक्षित है जो अपने ढंग की अद्वितीय है। इस चित्र में सबसे बड़ी विशेषता भारतीय नारी चित्रण की है कि मुगल युग में, मुगल चित्र विदों द्वारा इसकी रचना हुई है किन्तु इसमें पूर्णतया भारतीय नारी सौन्दर्य की अभिव्यंजना हुई है। हाथों का उत्कृष्ट और वास्तविक मोहक अंकन अच्छे श्रेणी के मुगल चित्रों की पहचान है। यह विशेष गुण सम्भवत: जहांगीर कालीन चित्रों में सर्वाधिक रूप से दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त अंग—प्रत्यंग यथार्थता का आभास कराते हैं। राजस्थानी चित्रों में स्वाभाविकता का अभाव खटकता है पर मुगल शैली के चित्रों में यथार्थ के दर्शन होते हैं। इस नारी चित्रण में चेहरे, आंख, भौंह, नासिका, हस्त मुद्रायें, अंग—प्रंत्यंग सभी कुछ दर्शनीय है। झीनी ओढ़नी तो जैसे चित्र का प्राण ही हो। वास्तव में तूलिका का मोहक प्रदर्शन इस चित्र में झलकता है।

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में संग्रहीत एक चित्र ऐसा है जिसमें मुगल शैली की अभिव्यक्ति तो है पर वह अवध के प्रान्तीय शैली से प्रभावित है। यह मुगल कला की एक परिमार्जित विधा है जो आत्मानन्द की अनुभूति कराने वाली कृतियों का आगार माना जाता रहा है। इन चित्राकृतियों में चट्टान, बादल एवं नदियों का कलापूर्ण यथार्थ चित्रण हुआ है। चित्र के चारों ओर सुन्दर

हाशिये बनाये जाते थे जिनमें सुन्दर बेल—बूटे, प्राकृतिक दृश्य, पेड़, चट्टानें तथा नीले, पीले, लाल रंगों के अतिरिक्त चमकीले रंगों के साथ ही सोने का काम किया जाता था जो चित्र में वैभवयुक्त कला में झिलमिलाते सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। इस कला का सुन्दर रूप कभी—कभी इतना श्रेष्ठ होता था कि मूल चित्र हाशिये के सौन्दर्य के आगे फीके पड़ जाते थे। वर्लिन के राजकीय पुस्तकालय में जहांगीर कालीन श्रेष्ठ हाशिये का चित्रण है जिसमें शाकी और मदिरा का दौर चल रहा अभिव्यक्त किया गया है। साथ ही संगीत के लयों में झूमते नायक नायिकाओं के चित्रण में इस मुरक्के में जान डाल दिया है। इनमें एक नहीं अनेक चित्रकारों का योगदान होता था। इसकी पुष्टि अनेक चित्रकला सम्बन्धी ग्रन्थों से होती है। मुगल चित्रकला का अंग प्रत्यंग सौन्दर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ लगता है और नारी चित्रांकन ने तो उसमें जीवन ही ढाल दिया है।

पहाड़ी चित्र शैली

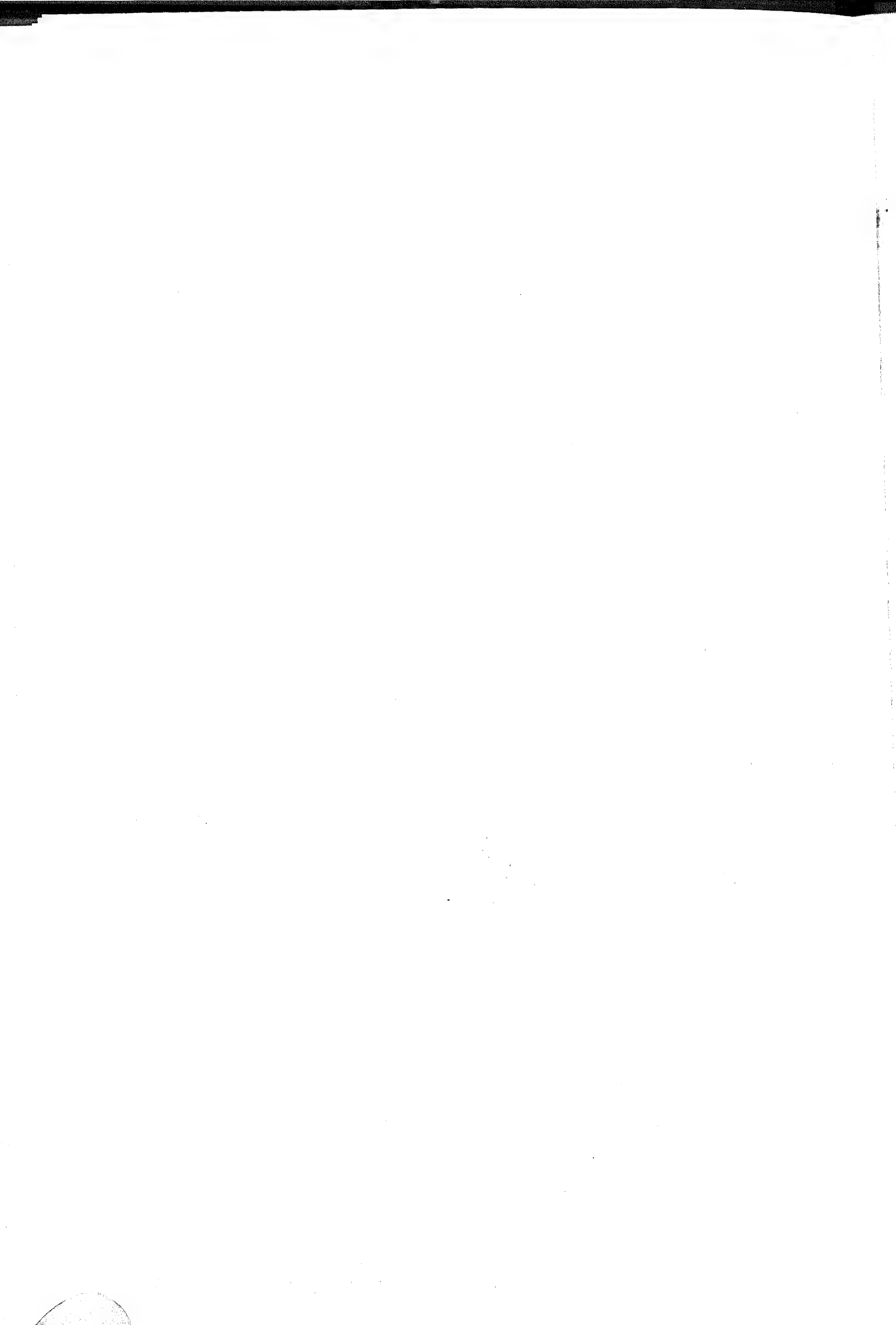
राजस्थानी चित्र शैली के उत्तरार्ध में ऐसी चित्र शैली का जन्म हुआ जिसे हम देशी चित्रकारों की देन मानते हैं। ये भारतीय चित्रकार मुगल और ईरानी प्रेरणा को स्वीकार करते हुए भी लोकभावनाओं का चित्रण करने में विशेष अभिरूचि रखते थे। इस प्रकार १७ वीं शताब्दी में क्षेत्रीय शैलियां विकसित होने लगीं किन्तु इन स्थानगत चित्र शैलियों पर भी किसी न किसी रूप में मुगल चित्रशैली का प्रभाव अवश्य पड़ा। इस क्षेत्रीय चित्र शैलियों के विकास के साथ ही साथ जिस नव शैली का प्रादुर्भाव हुआ उसे हम पहाड़ी शैली की संज्ञा से अभिहित करते हैं। ईरानी शैली के ह्रास का युग ही पहाड़ी चित्र विधा के उत्थान का काल था। भारतीय चित्रकला की यह विशिष्ट शैली उत्तरी भारत के पहाड़ी रियासतों में पुष्पित एवं पल्लवित होती रही। यदि हम इस शैली के जीवन व क्रियाशीलता का अध्ययन करें तो यह बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है कि इस शैली के उत्थान व वैभव का सम्बन्ध मुगल शैली

के पतन से जुड़ा हुआ है। कारण कि शाहजहां के अन्तिम काल व औरंगजेब के प्रारम्भिक युग में मुगल दरबारी कलाकारों की वह प्रतिष्ठा तथा मर्यादा नहीं रही, जो अकबर और कलाप्रिय सम्राट जहांगीर के राज्यकाल में था। अतः वे चित्रकार मुगल दरबारों का परित्याग कर इन पहाड़ी रियासतों में चले गये जहां उनकी साधना के लिए उन्मुक्त और स्वतन्त्र वातावरण मिला और साथ ही पूर्णतया भारतीय संस्कृति के आधार पर अपनी कला प्रतिभा उजागर करने का अवसर मिल गया। इस प्रकार अब कांगड़ा, जम्मू व वसौली, का सानिध्य मिला और भारतीय चित्रकला का कलेवर ही बदल गया। यद्यपि उसकी आधारशिला राजस्थानी ही थी। अब एक ऐसी नव–शैली का पूर्ण यौवन पूरित सौन्दर्य हमारे समक्ष निखर कर आया जिसमें सौन्दर्य की आभा फूटती दिखलाई देने लगी। इन चित्रों में यथार्थता के दर्शन होते हैं यही नहीं इनमें भावाभिव्यक्ति की क्षमता के साथ ही साथ पूर्ण सजीवता व सौन्दर्य परिलक्षित होता है। इस शैल के चित्रों में यथार्थता तो है ही साथ ही भावनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण दर्शनीय है। चित्र रचना सजीवता से परिपूर्ण और रमणीक है। विषयों का चयन पर्वत राजस्थानी परम्परा में ही है जो नायिका–भेद, रागमाला तथा रीति काव्यों पर आधारित है किन्तु उनके चित्रांकन की विशेषता, तूलिका की दक्षता इस शैली को अन्य शैलियों से भिन्न अभिव्यक्त कर उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा देते हैं। कहना न होगा कि पहाड़ी चित्र विधा में आंके गए चित्रों में जो विलक्षण सौन्दर्य है तथा अन्तरमन को अनुभूति करा देने की क्षमता विद्यमान है वह अन्य शैलियों में नहीं है।

इस शैली का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था। पंजाब में जन्मी व हिमालय के विस्तृत उपत्यका में विकसित इस चित्र विधा में जाने कितनी विशेषताएं हैं जो अध्ययन का विषय है। पहाड़ी शैली के चित्र यद्यपि पुराणों, महाकाव्यों एवं विभिन्न धार्मिक आख्यानों पर आधारित हैं किन्तु उनकी आधुनिकता हमें ब्रज भाषा के कवियों द्वारा रचित काव्यों के आधार पर दृष्टान्त रूप में देखने को मिलती



माह कार्तिक (पहाड़ी शैली)



हैं। कुछ चित्र लोक कला, लोक साहित्य और लोक आचारों पर आधारित हैं। कुछ पहाड़ी चित्र शैली के चित्र नायिका भेद को आधार मानकर बनाये गए। अजन्ता की भांति इस चित्र विधा का अंकन भी स्वान्त: सुखाय लगता है। भले ही स्थानीय संरक्षकों की संरक्षता में इनका चित्रांकन हुआ फिर भी चित्रकारों के स्वतन्त्र कल्पना का रूप उनके स्वान्त: सुख की ओर अवश्य ही इंगित करता है। पहाड़ी शैली के चित्रों में भावों का सफल अंकन हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही साथ घटनाओं का सुन्दर चित्रण इसकी अपनी विशेषता है। ''पहाड़ी चित्रविधा में वर्णित नारी चित्रों के सम्बन्ध में 'जमीला ब्रजभूषण का कहना है कि—'राजपूत शैली की भांति इस शैली में भी नायक और नायिकाओं को विभिन्न मुद्रा में चित्रित किया गया है। विशेषता यह है कि नायिका का चित्रों में स्थान श्रेष्ठ है और नायक का गौण।

पहाड़ी शैली के चित्रों में पृष्ठभूमि का अंकन अनोखा है जो मूल चित्र विषयक वातावरण की सृष्टि में जीवन भर देते हैं। चित्रों की उपर्युक्त पृष्ठभूमि अभीष्ट विषय को अधिकाधिक उजागर करने में पूर्ण सफल हुये हैं। पहाड़ी शैली के चित्रकार, चित्रकार तो थे ही साथ ही साथ काव्य शास्त्रों के ज्ञाता भी थे। उनकी कृतियों में प्रसंग के अनुरूप ओज, माधुर्य, प्रसाद जेसे गुण विद्यमान हैं। उनकी रेखओं में एक अविरल प्रवाह है जो प्राणवन्त हैं उनकी समुन्नत रंग योजना उनकी उदार कल्पना का सहयोग पाकर अत्यन्त निखर उठा है। यही कारण है कि भारतीय चित्रकला के इतिहास में अजन्ता के बाद पहाड़ी शैली की चित्राकृतियों को समाद्रित किया जाता है। ❑



पहाड़ी चित्र शैली

इस क्षेत्र विशेष में विकसित पहाड़ी शैली की आत्मा तो राजस्थानी ही थी, अतः स्वभावतः विषय भी पूर्वकालीन राजस्थानी ही है। वही परम्परागत विषय जैसे— नायिका भेद, रीति काव्य पर आधारित चित्रण किन्तु चित्रण अधिक सौन्दर्य युक्त तथा अपनी मौलिकता से युक्त है। रेखाओं और रंगों में पूर्ण लालित्य ही इस शैली को अन्य शैलियों से अलग करती है और श्रेष्ठता के चरम बिन्दु पर पहुंचा देती है। पहाड़ी शैली के चित्रों में जितनी सौन्दर्याभिव्यक्ति की क्षमता है उतनी राजस्थानी शैली में नहीं है। नारी चित्रण पहाड़ी शैली में विविध रूपा है जो इस शैली की विशेषता है। चूंकि पहाड़ी शैली के चित्रों में भी नायिकाभेद का चित्रांकन हुआ है अतः स्वाभाविक ही है कि इस चित्रविधा में नारी का नख–शिख सौन्दर्य देखने को मिले। प्रोषित पतिका, अभिसारिका तथा अन्य नायिकाओं के चित्रांकन पहाड़ी शैली के चित्रकारों के बड़े प्रिय विषय रहे हैं। पहाड़ी शैली में चित्रित नारी मुद्राएं बड़ी ही सजीव लगती है। रेखाओं में इतनी सजीवता और सूक्ष्मता विद्यमान है कि बस देखते ही रहने की इच्छा होती है। नारी नेत्रों की भंगिमा बड़ी मोहक है। रूपांकन में लावण्य झलकता है। नारी के वस्त्राभरण बड़े ही वास्तविक और यथार्त है। हिन्दू शैली के वस्त्रविन्यास अपने ढंग के अलग ही हैं।

इस प्रकार इन देशी चित्रकारों के द्वारा उरेहे गए चित्राकृतियों का अवलोकन करके हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि नारी चित्रण में विभिन्न रसों और भावों का अंकन इस शैली की अपनी विशेषता है। उनकी रेखाएं भावानुवर्तिनी होकर कठोर से कोमल होती गई और उनकी रेखाओं द्वारा अभिव्यक्त नारीजीवन के चित्रांकन में

प्रवाह, गति एवं स्पन्दन है। पहाड़ी शैली में चित्रित नारी भावों को अभिव्यक्त करने वाले वे चित्र उच्चता के शिखर पर रक्खे जा सकते हैं जिनका चित्रांकन हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों के रचनाओं पर आधारित है। उन लाक्षणिक ग्रन्थों से प्रेरित होकर चित्रित नायक—नायिकाओं के अंकन में पहाड़ी शैली के कलाविदों को जो सफलता मिली है अन्य शैली के कलाकारों को नहीं प्राप्त हो सकी है। कांगड़ा शैली के चित्रांकन में दैनिक जीवन के मोहक चित्र अपने ढंग के एक ही हैं।

कांगड़ा, जो पहाड़ी शैली का प्रधान केन्द्र रहा है—पहाड़ी चित्रविधा का प्रमुख अंग ही है। कांगड़ा शैली अपने क्षेत्र में विकसित ऐसी कला थी जिसकी सर्जना दिल्ली के निराश्रित चित्रकारों द्वारा हुई थी जो इस क्षेत्र में आकर तत्कालीन शासकों का संरक्षण प्राप्त कर लिए थे। इनके चित्रों के आंकने का आधार मुख्यतः मुगल ही था। मुगलों के अन्तिम काल में यह शैली विकसित हुई। कांगड़ा शैली के चित्रकारों का विषय ग्रामीण जीवन, पहाड़ तथा जंगलों के दृश्यों से युक्त है, तथा स्वाभाविक मानवीय भावनाओं एवं क्रियाओं से ओत—प्रोत है। इन चित्रविदों ने स्त्रियों के सौन्दर्ययुक्त मनोभावों का सुन्दर चित्रण कर इस शैली को समुन्नत किया है जो इस शैली की अपनी विशेषता है। मोलाराम कांगड़ा शैली के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार थे। मोलाराम के चित्रों में प्रकृति के साथ ही पशु—पक्षियों का भी सुन्दर चित्र दर्शनीय है। डा० फारूखी ने भी पहाड़ी शैली में कांगड़ा विशेष विधा के चित्रकारों में मोलाराम को सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कहा है। मोलाराम चित्रकार के साथ ही एक सफल और योग्य कवि थे जिनकी रचनायें तत्कालीन समाज की अभिव्यक्ति हैं, साथ ही नारी के विविध रूपों की अभिव्यंजना भी है। मोलाराम के चित्रों की प्रसंशा करते हुये इतिहासकार आशीर्वादीलाल का कहना है कि —— पहाड़ी कांगड़ा शैली का सबसे सुन्दर चित्रकार मोलाराम था।उसके रात्रि के चित्र तो विशेष रूप से सुन्दर हैं।

चित्रकार मोलाराम में चित्रविधा और काव्य अभिव्यंजना का जो संगम देखने को मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। वह अपनी कृतियों



नायक-नायिका (पहाड़ी शैली)

पर या उनकी पुस्तकों के ऊपर चित्रों का विस्तृत विवरण लिख दिया करते थे जिसके फलस्वरूप उनकी काव्य रचना और चित्र रचना में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो जाती थी। साथ ही चित्र की पहचान भी।

मोलाराम का एक सुन्दर मार्मिक चित्र 'चकोर खिलावत है' नारी की शारीरिक भंगिमा में जो लोच दिखलाया गया है वह उनके दक्ष तूलिका का कमाल है। नायिका पीछे मुड़ कर चकोर की ओर उन्मुख है एक हाथ में वस्त्र पकड़े चकोर को सम्बोधित है वस्त्र विन्यास के साथ ही मुखाकृति तथा रूप सज्जा कला की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हैं। चित्र में ऊपर लिखा है---

''बाग विलोकन को अवला निकसी मुख चन्द्र दिखावत ही।
लखि संग चकोर करत, शब्द, कठोर सुनावत हीं।।
उझकि उझकि फिरकी सी फिरी, चहुं आस पासहि।
कहत कवि मोलाराम चली हटि कै दुपटा, पट चोंच वचावत ही।।

मोलाराम ने नायक—नायिकाओं के अनेक चित्र बनाये हैं। जिनकी व्याख्या चित्र के ऊपर स्वरचित काव्यों में लिखकर चित्र में चार चांद लगा दिया है। श्री मुकन्दी लाल वैरिस्टर जो एक सफल कला अन्वेषक रहे हैं, के संग्रह में संग्रहीत प्रोषितपतिका का रेखा चित्रांकन है जिसमें मोलाराम ने नायिका के रूप की, तथा श्रृंगार सौन्दर्य की प्रशंसा उघृत की है---

कमल विकास पर राजै, चंद इन्द्रवधु।
की घौ सोम अंक पर दुज भोम वार से।।
मानक से जगै की घौ, कुन्दन खचित।
चारु ज़ड़े हैं झुमक ये काम सुनियार के।।
हेरत हि हरे मन मानों जग जीत वे को।
कंचन के पत्र लिखे मन वसि कारे को।।
आनन्द के सदन कहत, वियोग हू के।
प्यारी जू के बदन पर रंदन प्यार के।।

उपयुक्त प्रोषित—पतिका चित्र में लिखित काव्य द्वारा तथा भावाभिव्यक्ति के द्वारा कवि एवं चित्रकार मोलाराम ने नायिका के

रूपमाधूर्य का वर्णन किया है। उसके सौन्दर्य की तुलना चांद तथा इन्द्राणी से किया है। नारी के श्रृंगार आभूषण, और सौन्दर्य ने उसके रूप माधुर्य को और द्विगुणित कर दिया है। यही नहीं नायिका ने उसे याद दिलाया है कि प्रिय वियोग के पूर्व परदेश के समय प्रिय ने अपना प्रेम—प्रदर्शन किया था, उस स्नेह को अभिव्यक्त करने वाले दांतों के निशान उसकी मुखाकृति पर अब भी अंकित हैं जो वियोग में उसके सहयोगी बने हुये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कांगड़ा शैली का बहुमूल्य रत्न मात्र मोलाराम की कृतियां ही इस शैली को सफलता की चरम सीमा पर पहुंचाने तथा श्रेष्ठता दिलाने के लिए पर्याप्त है। मोलाराम के प्रसिद्धि प्राप्त कृतियों में 'उत्कंठिता नायिका' का चित्र भी अनूठा है जिसकी सर्जना नायिका भेद के आधार पर किया गया है। इसमें प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण है साथ ही नायिका का सोन्दर्ययुक्त चित्रण मोलाराम की दक्षता को लक्षित करती है। नायिका का मुखमण्डल सौन्दर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त है। हाथों की मुद्रायें सुन्दरतम है चक्षु—अंकन मनमोहक है आभूषणों की सूक्ष्मता दर्शनीय है वस्त्रों में सुनहले रंगों का उपयोग चित्र में जान डाल देता है। इस प्रकार के अनेक ऐसे चित्रों की रचना इस चित्रकार ने की है, जो हमारे देश के कई संग्रहालयों में संरक्षित है। वे चित्राकृतियां भारतीय चित्रकला में हिन्दू कला का प्रतिनिधित्व करती हैं प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय बम्बई में संग्रहीत 'विप्रलब्धा नायिका' का चित्र अपने ढंग का अद्वितीय है, जिसमें नायक के वचन—भंग करने पर श्रृंगार विखेरती नायिका का मोहक चित्रण है।

कांगड़ा जो पहाड़ी शैली का प्रधान केन्द्र रहा है। यहां से एक चित्र प्राप्त हुआ है। जिसका विषय तो हिन्दू है लेकिन मुगल शैली से अत्याधिक प्रभावित है। यह चित्र पहाड़ी शैली का है, किन्तु कतिपय स्थानीय शैलियों का समावेश दिखायी पड़ता है। हिमालय के पर्वतीय भागों में अधिवासी मैदानी शर्णार्थियों द्वारा राधा कृष्ण' के प्रेमकथा विषयक जो चित्रांकन हुआ है उसमें भावमयी मुद्राओं का अंकन दर्शनीय है। इस चित्र में भगवान कृष्ण किसी राजकुमार की तरह चित्रित हैं। कृष्ण के साथ राधा को कुछ विशेष

मुद्रा में चित्रित किया गया है। उनकी हास्य मुद्रायें कुछ विचारमग्नता के भाव को अभिव्यक्त करते हैं। राधा के नेत्र बड़े ही सौन्दर्ययुक्त हैं। कृष्ण के नेत्र की भंगिमा बड़ी रोचक है। यह अपने ढंग की अनोखी कृति है।

राजपूत चित्र शैली के मिश्रित रूप को अभिव्यक्त करने वाला चित्र 'परिचारिकायें' अत्यन्त सुन्दर कृति है। अंजित मुकर्जी के अनुसार, ''मुगल चित्रकारों ने उन मिश्रित शैली को प्रस्तुत किया है जो राजपूत चित्र शैली की विशेषता है। 'परिचारिका' चित्र में नारियों की मुद्रायें वस्त्र विन्यास बड़ा ही सुन्दर एवं स्वाभाविक है।

पंजाबी पहाड़ी गढ़वाल चित्र शैली में चित्रित एक कृति प्राप्त हुयी है जो १७९० ई० की कृति है। यह विक्टोरिया तथा अल्वर्ट संग्रहालय में सुरक्षित है। यहां के स्थनीय शासकों ने कलाकौशल की सर्जना जागृति काल की सामन्तवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है। जहां नारी जीवन का प्रमुख उद्देश्य अपने पति या प्रियतम के प्रति वासनात्मक समर्पण ही है। आकाश की गहरी नीलिमा, गोलाकार वृक्ष, तारों सदृश्य पुष्पों एवं मुखमुद्राओं के कारण यह चित्र विधा कांगडा शैली से उत्कृष्ट नहीं मानी जा सकती। फिर भी यह चित्र भावप्रधान और सौन्दर्य की अभिव्यंजना करने वाला है। नायिका अपने प्रेमी के लिए व्याकुल है। इससे नायिका को 'प्रोषितपतिका नायिका' की संज्ञा दी जाती है।

पहाड़ी चित्र शैली पर अपनी विवेचना प्रस्तुत करते हुये प्रसिद्ध चित्रवेत्ता एवं अन्वेषक श्री राय आनन्द कृष्ण ने कला भवन वाराणसी से प्रकाशित पत्रिका कला निधि में व्यक्त किया हैं कि —— राजस्थानी चित्रविधा में जहां नायिकाभेद, रागमाला और कृष्ण लीला के चित्र हैं वहीं पहाड़ी चित्र शैली में रागमाला के चित्रों का अभाव है। पहाड़ी चित्रकारों में नायिकाभेद, और कृष्ण लीला चित्रों को ही अपना मर्म प्रकट करने का माध्यम बनाया है।

पहाड़ी चित्रविधा में नायिकाभेद के चित्रों का बाहुल्य स्पष्ट ही लक्षित होता है। श्री राय आनन्द कृष्ण जी ने स्पष्ट ही उल्लेख किया है कि —— नायिकाभेद चित्र मानव के सूक्ष्मतम भावों को

प्रदर्शित करते हैं। ''कुछ में प्रथम दर्शन की विहवलता है तो कुछ में मिलन की आतुरता। ''वास्तव में नारी का कहीं प्रेम प्रदर्शन मन को मोह लेता है तो कहीं प्रिय की प्राप्ति से अति अहलादित नायिका का चित्रण देखने को मिलता है। यही नहीं कहीं विरह विधुरा नारी का चित्रण मन को खिन्न कर देता है। विरह की अत्यन्त कारूणिक दृश्यों के मध्य नारी का उन्नत यौवन छलकता दिखलाई पड़ता है।

श्री आनन्द कृष्ण जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यंजित किया है—— ''भिन्न–भिन्न ऋतुयें नारी के प्रेमज्वाला को प्रज्वलित करती रहती हैं और इन सबके बीच रूप की राशि चपला सी कौंधती है।'' निस्सन्देह पहाड़ी चित्रकारों की ये कृतियां संसार के श्रेष्ठतम चित्रों के समक्ष अपना सम्मानित स्वरूप रखने में समर्थ हैं। मानव हृदय को रंगों में डुबों देने में वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी भूमिका का निर्वाह करती हैं। कला भवन वाराणसी के सौजन्य से वारह मासे के कई चित्रों में 'कार्तिक माह' एक चित्र है जो बड़ा ही सजीव है। भवन के अन्दर नायक और नायिका को परस्पर वार्ता करने में लीन दिखलाया गया है। स्नेह की परिपक्वता का आभास कराने वाले इस चित्र में नायक अपने दाहिने हाथ की मुद्रा से नायिका को कुछ समझा रहा है। नायक भी कुलीन है अपने बायें हाथ से ठूड्ढी पकड़े हुए गावतकिये के सहारे बैंठा है और अपने प्रिय से वार्ता करने में लीन है। चित्र में मुखाकृति का भव्य सौन्दर्य है, साथ ही नारी सुलभ शीलता की भी स्पष्ट अभिव्यक्ति झलकती है। वस्त्र विन्यास पहाड़ी कला शैली की श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करते हैं। हाथों की उगलियां बड़ी ही सजीव है, पास में प्रेमीद्वय के मनोरंजन के साधन स्वरूप चौपड़ तथा पिजड़े में छोटा पक्षी भी विद्यमान है। फर्श पर विछे वस्त्रों की अलंकारिता चित्रकारों की दक्षता को लक्षित करती है।

कलाभवन वाराणसी में संरक्षित बहुचर्चित चित्र ''कृष्ण राधा'' पहाड़ी शैली के समुन्नत चित्रों में से एक है। कृष्ण राधा की यह स्नेहाभिव्यक्ति मुद्रा बड़ा ही सौन्दर्ययुक्त है। कृष्ण अपने बायें

हाथ राधा के स्कन्ध पर डाले खड़े हैं तथा दाहिने हाथ से राधा के सौन्दर्यमयी मुखमण्डल को ऊपर उठाते हुये तथा कपोल पर हाथ रक्खे चित्रित किये गये हैं। राध स्नेह को स्वीकार कर कृष्ण को पुष्प समर्पित कर रही है। उक्त राधा—कृष्ण की सौन्दर्यमयी लीला को प्रकट करने वाले इस चित्र में नेत्रों की भंगिमा का चित्रांकन बड़ा ही हृदयस्पर्शी हुआ है। नेत्र हृदय की प्रेमाभिव्यक्ति को सहज ही प्रकट कर देने में समर्थ हैं। पीले वस्त्र धारण किये हुये कृष्ण की सुन्दर आभा पहाड़ी चित्रकारों की विशेष निधि रहा है। राधिका के वस्त्र विन्यास बड़े ही सुन्दर हैं। स्वर्ण खिचित रेखायें वास्तविकता की छाप छोड़ती हैं।

इसी प्रकार के अनक चित्र वाराणसी, प्रयाग, बम्बई, अहमदाबाद आदि संग्रहालयों में संरक्षित हैं जो पहाड़ी शैली की उत्कृष्ठ कृतियां हैं कला भवन वाराणसी में ही अनेक ऐसे चित्र हैं जिसमें पहाड़ी कलाविदों की साधना मुखर हुयी है। जिनमें नारी सौन्दर्य परिलक्षित होता है। 'गुणगर्विता नायिका', स्वर्ण काल का चित्र 'हिरण्यगर्भा', 'राधाकृष्ण कमल बन' में आदि ऐसे चित्र हैं जिनमें नायिका का मनोहारी रूप सौन्दर्य देखने को मिलता है। रागमाला का चित्र 'हिंडोलाराग' भी बड़ी सुन्दर कृति है यद्यपि पहाड़ी शैली के चित्रों में राग माला के चित्रों की कमी है पर जो है वह विलक्षण है। उपर्युक्त चित्र में कृष्ण और राधा को झूले में बैठे दिखलाया गया है। झूले के दो दण्डों के पास ही दो दो नारियों का चित्रण है जो सम्भवत: राधा की सखियां हैं। वस्त्र, लहंगा, ओढ़नी धारण किये हैं जो बड़ा ही रोचक है। एक चशम चेहरे, मोहक अंकन नेत्र भंगिमा बड़ा ही लालित्यपूर्ण हैं। चित्र संयोजन श्रेष्ठ है। सौन्दर्ययुक्त वस्त्र अपारदर्शक हैं। चित्रांकन में रेखायें सूक्ष्म एवं लयात्मक तथा मनोहारी है। वसोहली शैली में कृष्ण का राधा को बांसुरी बजाने की शिक्षा देते चित्रण मोहक कृति है। इसमें प्रकृति की सुन्दरता दर्शनीय है।



दक्षिणी चित्रविधा और नारी चित्रांकन

दशवीं शताब्दी से लेकर लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारतीय चित्रकला में पोथियों का ही चित्रांकन होता रहा है। चित्रकला के विकास के साथ ही साथ यहां भी चित्रकला अपने क्रम में विकसित होती रही। शिल्प कृतियों में तो यहां के कलाकारों ने बहुत ही उत्कृष्ट आकृतियों की सर्जना की। दक्षिणात्य चित्रशैली के स्वतन्त्र अस्तित्व का स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता। जब हम भारतीय चित्रकला का सर्वेक्षण करते हैं तो पता चलता है कि चित्रकला के इतिहास में दक्षिणी कला का बड़ा योगदान रहा है। ऐसा लगता है कि दक्षिण में बीजापुर के आदिल शाही राजवंशो का सम्बन्ध विदेशों से था। उस समय विजयनगर साम्राज्य के भित्ति चित्र की परम्परा अपनी पुरानी गतिविधियों के साथ चलती रही। वहमनी साम्राज्य के विनष्ट होने पर बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर संस्कृति के विकास के केन्द्र बन गये। यह शिया—मुस्लिम राज्य था। इसका सम्बन्ध ईरान से था और ईरानी वैभव कालीन चित्रकला का प्रभाव भारत के दक्षिणी शैली की चित्रकला पर पड़ने लगा था। इस ईरानी प्रभाव से प्रभावित यहां की प्राचीन चित्रविधा ने अपना स्वरूप ही बदल दिया। चित्रों की संरचना ईरानी प्रभाव से युक्त हो गई। आगे चलकर मुगलों के सम्पर्क में आकर यहां की कला भी मुगल कला से प्रभावित हुयी। यहां भी नाना ग्रंथों को चित्रित किया गया जिनमें नारी चित्रण की सूक्ष्मता, सुन्दर रंग विधान तथा भावाभिव्यक्ति को देखकर आश्चर्य होता है।

दक्षिणी शैली में रागमाला के असंख्य ऐसे चित्रों का अंकन हुआ है जिसमें नारी आकृतियां में सौन्दर्य हैं। इसी शैली में चित्रित 'रागिनी विलावल' में चित्रित नारी आकृतियों में बड़ी रोचकता है।

इन चित्रों की रचना में ठोड़ी का नुकीलापन इस बात का द्योतक है कि नारियों के अंकन में अपभ्रंश शैली का अवशेष विद्यमान है। प्रारम्भिक राजस्थानी राग माला और अकबर कालीन चित्रों में चित्रित नारी आकृतियों की अपेक्षा दक्षिणी राग माला में अंकित स्त्रियों की लम्बाई अधिक है और नारियां छरहरी शरीरवाली हैं।

स्त्रियों के वस्त्राभरण का अध्ययन करने से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि उनका पहनावा मुगल या राजपूत न होकर दक्षिणी है। 'रागिनी विलावल' की नायिका के चित्रण में चोली आगे बंधी है। चोली को आगे से बांधने की यह प्रथा दक्षिणी जन—जीवन में प्रचलित है जबकि राजपुताने में तथा उत्तर प्रदेश में चोली का बन्धन पीछे की ओर होता है। ओढ़नी या साड़ी सिर पर से नहीं बल्कि कन्धे को ढ़कती हुयी एक ओर बना दी जाती थी।

इन सभी तथ्यों के आधार पर दक्षिणी शैली और अन्य शैली के चित्रों में भेद करना सरल हो जाता है। नारी चित्र की दृष्टि से दक्षिणी शैली भी अन्य शैलियों से पीछे नहीं है। नारी के अनेकानेक चित्र इस चित्र विधा में दर्शनीय है। दक्षिणी शैली की एक सुन्दर रचना वाराणसी के कला भवन में संग्रहीत है जिसमें खान मुहम्मद शफकतजंग का चित्रण किया गया है यह कृति सत्रहवीं शताब्दी की बहुमूल्य देन है। इसमें खानमुहम्मद शफकतजंग को अपनी प्रेयसी के साथ गुफ्तगूं करने में व्यस्त दिखलाया गया है। इस चित्र पर स्पष्ट ही ईरानी प्रभाव लक्षित होता है। वस्त्र पारदर्शी है, अलंकरण की योजना सुन्दर है। प्रकृति के सुन्दर दृश्यों से सज्जित इस कृति में नारी भंगिमा मोहक है। इस चित्र का रंग विधान बहुरंगी है। इसी संग्रहालय में 'त्रिवेणी रागिनी' का चित्रण बड़ा ही सुन्दर है। इसमें चार नारी चित्रण हैं। पृष्ठभूमि में केले के वृक्ष का मोहक एवं दर्शनीय चित्र है।

पहाड़ी चित्र कला के विस्तृत इतिहास का विवेचन करते समय हमारी दृष्टि में वसोहली शैली की सुन्दर एवं रोचक कृतियां उभर आती हैं। अकेले वाराणसी कला भवन में ही अनेक चित्राकृतियां इस शैली की ऐसी हैं जिनमें नारियों के सुन्दर चित्र

देखने को मिलते हैं। जैसे 'टोड़ी रागिनी', 'राधा', 'वागविद्ग्धा नायिका', 'राग वर्धना', 'कुम्भा राग', 'कुमार चन्द्र राग' ये सभी चित्राकृतियां वसोहली चित्र विधा में चित्रित हैं। त्रिवेणी रागिनी इस चित्रविधा की सुन्दर कृति है।

पहाड़ी शैली के चित्रकारों की यह अनोखी विशेषता रही है कि उन्होंने जिन विषयों पर अपनी प्रवीण तूलिका चलायी हैं प्राण फूंक दिया है। मानवीय दैनिक जीवन के चित्रों से लेकर ऐतिहासिक काव्य चित्रण, पौराणिक, कथागत, सभी विषयों पर पहाड़ी शैली के चित्रकारों ने अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र आकें हैं। केशव, मतिराम, और बिहारी के रीति ग्रन्थों में थिरकती नायिका चित्रणों में अपनी उच्च कोटि की दक्षता प्रदर्शित किया है। नारी के सुकोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करके पहाड़ी चित्र विधा के चित्रकारों ने अपनी श्रेष्ठ कला अभिव्यक्ति को भारतीय चित्रकला में अजन्ता की श्रेणी में खड़े कर दिया है। पहाड़ी शैली के चित्रकारों ने नायक—नायिका के सुन्दर चित्रांकन में दक्षता प्राप्त की है। बादलों को सम्बोधित करते एक नायक—नायिका का चित्र इस चित्रविधा का प्रतिनिधित्व करता है।

पहाड़ी चित्रकला में कांगड़ा शैली तो अपना विशेष स्थान रखता ही है, इस शैली में चित्रित एक नायिका का विचारमग्न चित्र मोहक भावाभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण है। समक्ष ही कबूतरों का चित्रण प्रणय का प्रतीक है। वस्त्रों पर मुगल प्रभाव भी लक्षित होता है।

वास्तविकता यही है कि पहाड़ी चित्रविदों ने अपनी अन्तरात्मा की भावना को तथा जीवन की साधना को अभिव्यक्त करते हुये भावोद्रेक के चित्र आकें हैं। नायक—नायिकाओं के स्नेह अभिव्यक्ति को, केलिक्रीड़ाओं और हृदय की तथा मनोदशाओं का तथा जीवन के आनन्द को जैसे का तैसे चित्र में उतार देने में इन चित्रकारों को दक्षता हासिल थी। भाव एवं सौन्दर्य की अनुभूति के समिश्रण से प्रस्तुत विषय को बड़े ही माधुर्य एवं लगन से चित्रित किया गया है। कहना न होगा कि ये चित्रकार अन्तर्भावों के अभिव्यक्ति में तो पूर्ण निपुण थे ही साथ ही कलागत सौन्दर्य के विभिन्न स्वरूपों के दृष्टा भी थे जिन्होंने लौकिक तथा अलौकिक प्रणयलीलाओं का सौन्दर्ययुक्त

चित्रण किया है। प्रेम रसलिप्त संयोग तथा वियोग के गूढ़तम भावनाओं की अभिव्यंजना पहाड़ी चित्रविधा के कलाकारों की दक्ष उगलियों के चातुर्य को प्रकट करता है।

इस प्रकार पहाड़ी शैली के चित्रकार जनमानस के अधिक निकट लगते हैं और उनकी कृतियों में भारतीय जन—जीवन सौन्दर्य, धार्मिक भावना, लौकिक, श्रृंगारिक मुद्रायें, नारी का मनोरम सौन्दर्य, नया स्वरूप, सभी कुछ स्पष्ट झलकता है। ❑



मध्यकालीन चित्राकृतियों में नारी वस्त्राभरण

चित्रित कृतियों के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय इतिहास में विशेषकर उत्तर मध्ययुग में भारतीय नारी की दशा समुन्नत नहीं थी। मुगलों को आक्रामक समझा जाता था तथा सामाजिक जीवन में नारीत्व की रक्षा के लिए बाल विवाह की व्यापकता थी जो लगभग पूर्ण मुगल काल तक रही। नारी केवल हरम सुरा की जीनत ही समझी जाती थी। समाज में वस्त्र विन्यास ही नारी की लज्जा ढ़कने में समर्थ थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'मलिक मोहम्मद जायसी' एवं विद्यापति आदि ने भी इसका उल्लेख किया है। हिन्दू स्त्रियां पर्दे में रहती थीं और जब वे अपने घरों से दूसरे के यहां जाती थीं तो पालकियों में जाती थी। स्त्रियां बहू, जेठ, ससुर और सास आदि से घूघंट किया करती थी जो बड़ों के प्रति सम्मान का प्रदर्शन था। किन्तु अल्टेकर ने लिखा है कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व भारत में पर्दा का अभाव था।

आइन—ए—अकबरी के विस्तृत विवरण से हिन्दू स्त्रियों के वेश—भूषा का पता चलता है जिनके आधार पर मध्यकालीन चित्रकारों ने चित्र रचना में वस्त्रांकन किया है। राजस्थानी चित्रकला के पूर्व तथा तत्कालीन स्त्रियों के विषय में १५वीं से १६वीं शताब्दी के चित्रांकनों से पता चल जाता है कि स्त्रियों का वस्त्राभरण कैसा था। स्त्रियां कमर के नीचे के वस्त्रों में पेटीकोट, लहंगे तथा साड़ी पहनती थीं। साड़ी के नीचे वक्ष ढ़कने के लिए वे कंचुक का प्रयोग करती थीं किन्तु मुगल शैली के चित्रांकनों में ऐसा नहीं मिलता। उच्च वर्ग के नारियों को कई चुन्नटों से युक्त पेटीकोट छोटी साड़ी और लम्बी कंचुक पहने चित्रित किया गया है। इसका उल्लेख

तत्कालीन ग्रन्थों में भी मिल जाता है।

वस्त्राभरणों का ज्ञान चित्राकृतियों से तो होता ही है डॉ० जी० एन० शर्मा ने लिखा है कि "राजपूत स्त्रियां, कंचुकी, घेरदार घांघरा, पहनती थी तथा दुपट्टे का प्रयोग करती थीं। वे लम्बी वांहदार कंचुक एवं घेरदार घाघरा पहनती थीं। राजपूत स्त्रियां लहंगा पहनती थीं जिसके कपड़े प्रायः छपे हुये होते थे। लहंगे का निचला भाग मोतियों तथा जरी के काम से अलंकृत रहता था। इस प्रकार का चित्रांकन राजस्थानी चित्रों में देखने को मिलता है।

आदि काल से ही आभूषण नारी की प्रिय वस्तु रही हैं। मध्ययुग में विशेषकर उत्तर मध्ययुग में आभूषणों का पर्याप्त प्रचलन था। चित्रों में नारी आभूषणों के नाना रूप देखने को मिलते हैं। इतना अवश्य है कि मुगलों के आगमन के पूर्व नाक में पहने नारी का चित्रांकन देखने को नहीं मिलता। नाक में नथ इत्यादि का प्रचलन मुगलों के काल में हुआ। हार तथा गुलेबन्द गले में पहने जाने वाले आभूषण थे, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जाति की स्त्रियां पहनती थीं। स्त्रियां पांव में घुंघरू, पायल, सोने चांदी के बने हुये मोटे पायजेब तथा पैर के अंगूठों में विछुआ पहनती थीं। झांझर का भी प्रयोग करती थीं। स्त्रियां हाथ में सात या आठ चूड़ियां पहनती थीं। अब्बुलफजल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ आइन—ए—अकबरी' में भी उल्लेख कियाहै कि—— "ये चूड़ियां, सोने की होती थीं। स्त्रियां सैंतीस प्रकार के आभूषण पहनती थीं जिसे सर से पैर तक में पहना जाता था। ये आभूषण सोने चांदी तथा पीतल आदि धातु के बने होते थे।

इस प्रकार मध्यकालीन चित्राकृतियों में नारी की सर्जना में वस्त्र विन्यास, वेशभूषा एवं श्रृंगार सब कुछ नारी—सौन्दर्य की अभिव्यंजना को व्यक्त करते हैं।

मध्यकालीन चित्रकला में विविधरूपा नारी तथा लोक चित्रों में नारी अंकन

मध्यकालीन भारत का इतिहास सांस्कृतिक दृष्टिकोण से

अवनति का इतिहास है। इस युग में उत्कर्ष की झलक नाम मात्र को भी दृष्टिगत नहीं होती। नारी तो मनुष्य की खिलौना बनकर रह गयी थी। उसका अपना अलग कोई अस्तित्व ही नहीं था। मनुष्य के शोषण का शिकार बनी नारी शक्ति मृग की भांति अपने व्यक्तित्व एवं नारीत्व को, आवरण में छिपाये सिसकियां भर रही थी। अजन्ता के भित्ति चित्रों में प्रदर्शित आदर्शमय नारी का स्वरूप पूर्ण विकृत हो चुका था। सौन्दर्य की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करने वाली नारी मुगलों के प्रभाव के कारण हरम की शोभा बनकर रह गयी थी। नारी का आदर्श, नारी की मर्यादा सब कुछ विनष्ठ प्राय हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में नारी के रूपांकन का पावन, पवित्र रूप भी चित्रविधा से विलुप्त हो गया था, जो स्वाभाविक ही था। जैसे हम ऊपर वर्णन कर आये हैं, भारतीय चित्रकला में अजन्ता चित्र शैली की महानता, नारी के विविध रूपों की अभिव्यंजना, उसका सौन्दर्य एवं अभिव्यक्ति सिमट कर, इस युग की पुस्तकों के पृष्ठों में समाहित हो गयी थी। विशाल चित्रों के स्थान पर लघु चित्रों का प्रचलन हो गया था। मानों जैसे नारी का पूर्व आदर्शमय रूप क्षीण हो गया हो। समाज में उसका अस्तित्व घट गया हो, उसकी आभा विनष्ट हो गयी हो।

सामाजिक उथल—पुथल के कारण एवं ऐतिहासिक परिवर्तन के फलस्वरूप कला भी प्रभावित अवश्य हुयी किन्तु भारतीय चित्र कला का शाश्वत रूप सदा ही अक्षुण बना रहा। वैदेशिक प्रभाव से ग्रसित होकर भी उसकी भारतीयता सदा अमर रही। भारतीय संस्कृति की पोषिका नारी चित्रकारों के लिए सदा ही प्रेरणा की स्रोत बनी रही। शैली, स्थान, विविधतायें, रंग योजना सबमें परिवर्तन होते हुए भी नाना भिन्नताओं के मध्य सदा एकरूपता को अभिव्यक्त करने वाली भारतीय नारी ने सदा ही चित्रकारों को अपने लालित्य एवं सौन्दर्य की ओर आकर्षित किया है। नारी के मूक किन्तु वाचाल सौन्दर्य प्रेरणा ने कला मर्मज्ञों के हृदय वीणा के तारों को झंकृत करने में कभी कोई कोर कसर नहीं उठा रक्खा। अपने पावन पवित्र आस्था का प्रतिविम्ब विखरेने वाली भारतीय नारी कभी भी



राधा कृष्ण (पहाड़ी शैली)

अपने पवित्र सौन्दर्य को नहीं भुला पायी। मध्यकालीन कवियों ने तो नारी पर अगणित सौन्दर्य एवं लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना की है जो हिन्दी साहित्य की निधि हैं। उन्हीं काव्यों में वर्णित नारी के विविध रूपों का चित्रांकन चित्रकला में मध्यकालीन युग की धरोहर है। भारतीय चित्र कला के मध्ययुगीन थाती के बीच नारी के नाना रूप थिरकते हुए अवश्य मिलते हैं, जिसको देखकर वात्सायन के कामसूत्र में उल्लिखित नारी सम्बन्धित ६४ कलाओं का नाना रूप हमारे नेत्रों के समक्ष तैरने लगता है। उन चित्रों में कहीं नारी को स्नेह पत्र लिखते, तो कहीं चकोर के साथ खेलते, कहीं मृगों को तृणाकुंर खिलाते, कहीं झूला झूलते कहीं सेज बिछाकर प्रिय की प्रतीक्षा करते, कहीं प्रिय के संग अलिंगित मुद्रा में तो कहीं माननीया नारी का चित्रण, कहीं कन्दुक क्रीड़ा में संलग्न नारी, जाने कितने ही रूपों में नारी की मोहक भंगिमायें मन को बरबस ही खींच लेती हैं। हमारे अनेक ग्रन्थों में बौद्ध और जैन तथा हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करते ग्रन्थ हैं जिनमें नारी की भंगिमायें चित्रत हैं जो उस ग्रन्थ को सज्जित करने में पूर्णरूपेण सहायक हैं। इन चित्राकृतियों में अनेक ऐसे चित्र हैं जो हमें नारी सौन्दर्यय की पराकाष्ठा का ज्ञान कराते हैं। चित्रकला में नारी के नाना रूपों में, तीन रूपों का विशेष अंकन देखने को मिलता है। इन तीन मर्यादित रूपों का सर्वत्र चित्रण, शैली एवं स्थान की भिन्नता के साथ दृष्टिगत होता है।

नारी का श्रृंगारिक रूप, कला की दृष्टि से अति उत्तम है यह प्रथम स्वरूप है जिसका अंकन पर्याप्त मात्रा में हुआ है और इसमें नारी की शारीरिक भंगिमाओं को चित्रों में ढाल दिया गया है। नारी के मद भरे नयन, घनश्याम से श्यामल केश राशि तथा पाटल के समान रक्तिम वर्ण के ओष्ठ, सुन्दर सुडौल कपोल, क्षीण कटि उन्नत उरोज, चम्पक सी उंगलियां सब कुछ बड़े ही मनोरम ढंग से आंका गया है, जो चित्रकार के जीवन भर की साधना का प्रतिफल है। इन चित्रों की मुद्रायें पूर्ण वाचाल हैं और आज भी अपनी अतीत भावना को, भारतीय चित्रकला के वैभव को स्पष्ट अभिव्यक्त करती हैं।



मेघ राग (बूंदी शैली)

मध्यकालीन चित्रकला में श्रृंगार रूपा नारी

भारतवर्ष की चित्रकला में नारी को किसी न किसी रूप में आदि काल से ही चित्रित किया गया है। वह सदा से अपने विलक्षण सौन्दर्य के कारण पुरूष के हृदय की साम्राज्ञी बनी हुयी है। मानव, जीवन में नारी के अभाव में एक बहुत बड़ी रिक्तता का अनुभव करता है, फिर चित्रकार ही उसे कैसे विस्मृत कर देते। चित्रकारों की दक्ष तूलिका ने तो नारी के सौन्दर्य को उतार कर उसके रूप लावण्य को और अधिक सामान्य बना दिया है। भारतीय नारी श्रृंगार की प्रतिरूप ही है। मानव को अपने सौन्दर्यपाश से सदा बांधे रहने वाली भारतीय नारी चित्रविदों को भी अपने सुन्दर मधुरिम रूप रश्मि से आलोकित किया है। आज भी हमारा उसके प्रति आकर्षण ही है जो हमने साहित्य में, शिल्प में और चित्र कला में पर्याप्त स्थान दिया है। हम उसके सौन्दर्य सत्ता से विमुख नहीं हो सकते। अजन्ता के भित्ति चित्रों में युगल प्रतिमाओं, नारी के छलकते सौन्दर्य से पूरित रूपांकनों, थिरकते पैरों तथा सुन्दर अलंकरणों से युक्त छवि को देखकर किस व्यक्ति के मन में आनन्द की लहरें आलोड़ित नहीं होती। सौन्दर्य की पुंज बनी नारी ने उत्तर मध्य काल में ही नहीं, अतीत युग से ही कलाविदों को चित्रों में अपना प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले सौन्दर्य को आंकने के लिए बाध्य कर दिया । बिहारी ने अपने काव्य में नायिका के सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए वर्णित किया है कि श्रेष्ठ सुन्दरता वह है जो अस्थिर हो, जो क्षण प्रतिक्षण में परिवर्तित होने वाली हो।

इस प्रकार मध्यकालीन चित्रावलियों के अवलोकन से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि चित्रकारों ने काव्यग्रन्थों के आधार पर नाना रूपों में श्रृंगारमय नारी की सौन्दर्ययुक्त रचना की है। जिन चित्रों में अंकित 'लौरचन्दा' का प्रणय पूर्ण ग्रन्थ सहायक बना है तथा जिसमें नारी के उन्मुक्त प्रेम का चित्रांकन है दर्शनीय है। इनके अतिरिक्त नारी के प्रणय व्यापारों का मोहक चित्रण कवि केशव की

'कविप्रिया' एवं 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थों पर आधारित चित्रों में देखने को मिलता हैं। मतिराम, विहारी के काव्यों में उल्लिखित नायिका भेद के चित्रों में नारी का श्रृंगार ही तो छलकता है जो पहाड़ी शैली और राजस्थानी शैली के चित्रकारों द्वारा रेखांकित किये गये हैं। कविवर बिहारी के नायिका के नेत्रों की भंगिमा अद्वितीय है। पहाड़ी चित्र विधा में इस तरह के अगणित नेत्र भंगिमायें देखने को मिलती हैं। इन चित्रों को देखकर तो वस बिहारी के उस नायिका का स्मरण हो आता है जिसके बारे में उन्होंने लिखा है——

अमिय हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झूकि झूकि परत, जेहि चितवत एक बार।।

यह नेत्र भंगिमा भारतीय चित्रकला की विशेषता रही है। इन्हें चित्रों में चित्रित करके भारतीय चित्रकारों ने चित्रकला के साथ ही साथ काव्य कला को भी अमरत्व प्रदान कर दिया है। शारीरिक भंगिमाओं का अंकन तो अत्यन्त चातुरी के परिचायक हैं। मध्यकालीन चित्रों में कहीं नारी को नायक से मिलने को आतुर, तो कहीं नायक—नायिका मिलन, कहीं अभिसारिका नायिका, कहीं उत्कंठिता नायिका तथा प्रोषितपतिका नायिका, कहीं श्रृंगाररत नायिका, कहीं स्नात्का नारी की ऐसी चित्राकृतियां हैं जो भारतीय चित्रकारों के सौन्दर्य प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं और साथ ही नारी के श्रृंगारमय रूप को हमारे नेत्रों के समक्ष प्रकट करते हैं। मध्यकालीन ताड़पत्रीय पोथियों से लेकर पहाड़ी शैली के चित्रों के विकास तक नारी की श्रृंगारमय भारतीय चित्रकला रूपी आकाश में नक्षत्रों की भांति टिमटिमाते रहे हैं। विभिन्न जाति, विभिन्न धर्मों से प्रभावित होकर भी भारतीय चित्रकला में नारी अंकन अपने शाश्वत रूप को अक्षुण रक्खे हुए है। इन चित्रों में नारी के श्रृंगार की आभा फुटी पड़ती दृष्टिगत होती है।

मध्यकालीन चित्रों के अध्ययनोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस युग में नारी चित्रांकन कुछ विकृत अवश्य हो गया है। पर इनका आधार अजन्ता आदि प्राचीन गुहा ही हैऔर

समय के प्रवाह के कारण ही यह परिवर्तन दिखायी देता है। इन चित्रों में अधिकतर चित्र किसी ग्रन्थ सज्जा हेतु बने हैं या किसी ग्रन्थ पर आधारित है। स्थानाभाव एवं वर्णन के सीमा में बंधे होने के कारण सम्भव है यह विकृतता आ गयी हो। पर उन्हें श्रृंगारशून्य नारी चित्र नहीं कहा जा सकता। श्रृगार को रसराज कहा गया है और नारी श्रृंगार युक्त होकर वह स्वयं ही श्रृंगारमय हो जाती है। नारी का सौन्दर्य उसके स्वरूप में स्पष्ट ही उजागर हो उठता है।

मध्यकालीन भारतीय चित्रकला पर, ईरानी प्रभाव के कारण नारी रूपों में जो निखार लाने में सफलता प्राप्त की है उससे नारी का परिष्कृत रूप चित्रांकित हुआ, जो श्रृंगारिक एवं लालित्ययुक्त था। भारतीय देशी चित्रकारों के द्वारा चित्रांकित उन रचनाओं में जो सौन्दर्य छलकता है उसने चित्रकला के इतिहास में नारी को सदा के लिए अविस्मरणीय बना दिया है।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला में नारी के शारीरिक सौन्दर्य का समुन्नत रूप तो नहीं मिलता फिर भी जो नारी चित्रण प्राप्त हुए हैं उनमें नारी की मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण अवश्य देखने को मिलता है। देश के विभिन्न भूभागों में चित्रित किये गये जैनग्रन्थों के चित्रों में वस्त्र—विन्यास और शैली की भिन्नता के साथ नारी का पर्याप्त चित्रण हुआ है। चूंकि चित्रकला को राजकीय संरक्षता प्राप्त नहीं था इस कारण उन चित्रांकनों में वह निखार, वह लालित्य नहीं हैं जो मध्यकालीन युग के बाद के युग के चित्रकला में प्राप्य है।

ताड़पत्रीय हस्त लिखित पोथियों में चित्रित नारी का चित्रण देखने को मिलता है, जिस पर अपभ्रशं प्रभाव के कारण चित्रों में कठोरता है। कोमलता के अभाव के कारण नारी चित्रों में श्रृंगारमय रूप का चित्रण तो है लेकिन उनमें माधुर्य एवं लोच का सर्वथा अभाव है।

धार्मिक आन्दोलन ने भारतीय धार्मिक भावनाओं के साथ ही साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भी नव—जागरण उत्पन्न कर दिया और चित्रकला जगत में सगुणोपासना के फलस्वरूप कृष्णभक्ति शाखा के प्रचलन के बाद राधा—कृष्ण का अलौकिक रूप चित्रकला

का प्रमुख विषय बन गया। कालान्तर में इस धरातल पर पूर्व प्रचलित अलौकिक प्रेम लौकिक प्रेम बन गया जिसके कारण अगणित रूपों में जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है नायिका–भेद, बारहमासा एवं रागमाला के चित्रों की सर्जना होने लगी। इन सभी चित्रो में नारी के अंगप्रत्यगों के कमनीयता को अभिव्यक्त करने में चित्रकार ने अपनी दक्ष तूलिका का प्रदर्शन किया है। रीतिकालीन ग्रन्थों पर आधारित नारी के जिस सौन्दर्य को अंकित किया गया है वह भारतीय चित्रकला जगत की थाती है। जब नारी के नख–शिख सौन्दर्य को चित्रों में आंका जाने लगा तब निस्सन्देह नारी के विविध स्वरूप, नाना भंगिमायें, उनके वस्त्रावरण, उनकी मोहक अभिव्यंजना चित्रों में उतरने लगे। उस युग के नारी रूपाकृतियों में रूप माधूर्य एवं सौन्दर्य का गन्ध बिखरने लगता है।

ईरानी कला से प्रभावित चित्रों में नारी सौन्दर्य अपना अलग ही रूप प्रकट करता है फिर भी जैसा कि भारतीय संस्कृति का शाश्वत गुण रहा है कि उसने हमेशा अपने अन्दर अनेक संस्कृतियों को समाहित कर लिया और स्वयं जैसी की तैसी बनी रही। यही भावना चित्रकला के सृजन में भी दृष्टिगत होता है। ईरानी प्रभाव से युक्त होते हुए भी भारतीय चित्रकारों ने अपनी आत्मा को भारतीय ही रखा। यहां तक कि बाद के चित्रित नारी मुद्रायें पूर्णतया भारतीय ही लगती हैं। ऐसे वातावरण में सृजित जो नारी मुखाकृति हमारे समक्ष आयी उसमें पूर्णभारतीयता है साथ ही लावण्यमय भावनाओं से पूरित हैं। भारतवर्ष के विभिन्न रियासतों में सरंक्षण प्राप्त चित्रकारों ने नारी के जिन नाना मुद्राओं का चित्रांकन किया है निस्सन्देह सौन्दर्य की चरमाभिव्यक्ति को प्राप्त हैं।

भारतीय चित्रकला चाहे जिस वातावरण में अंकुरित होकर पुष्पित एवं पल्लवित हुयी हो उसकी आत्मा सदा ही भारतीय बनी रही। उसमें एक भारतीय स्वरूप की छटा बिखरती रही। इसकी व्याख्या करते हुए भवभूति के उद्धरणों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुये प्रसिद्ध कलाविद और साहित्यसेवी पंडित ब्रजमोहन व्यास जी ने

लिखा है कि —— ''यद्यपि संसार की सम्पूर्ण कलायें एक ही करूण सूत्र से बंधी हुई हैं। परन्तु सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक निमित्त भेदों से उनके वाह्य रूपों में इतना परिवर्तन देख पड़ता है कि अनेक भेदों को सहज समझ पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है——

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिणाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुदबुद तरंगमयान विकारान्,
अम्भो यथा सलिल मेवतु तत्समग्रम।।

जैसे जल को ही लीजिये निमित्तभेद से वह कभी आवर्त, कभी बुदबुद और कभी तरंग का रूप धारण कर लेता है। पर है यथार्थ वह जल ही। ठीक उसी प्रकार नाना शैलियों में चित्रांकित होकर वह नारी मुद्रायें अन्तोगत्वा भारतीय नारी का ही प्रतिनिधित्व करती हैं और भारतीय चित्रकला का सुन्दर रूप कला जगत के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं। नाना ग्रन्थों में नायिकाभेद, को आधार मानकर नारी के श्रृंगार का चित्रण भारतीय कला की निधि है। काली कजरारी नेत्रों वाली, अम्भोज ओष्ठ वाली, लम्बे घने केश–राशि से युक्त नारी का चित्रण भारतीय श्रृंगारप्रियता का द्योतक है।

पहाड़ी चित्र विधा के चितेरों की अपनी विशेषता रही है कि ''उन्होंने जिस विषय को अपनी प्रवीण तूलिका से स्पर्श की उसी में जीवन संचार कर दिया। नाना कथापरक ग्रन्थों, काव्य ग्रन्थों, पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों पर आधारित असंख्य चित्रों की रचना की गई जिनमें नारी की भंगिमायें अपना विशेष महत्व रखती है। जहां एक ओर बालमीकि और व्यास के ग्रन्थ चित्रों में नारी का आदर्शमय रूप है वहीं केशव, बिहारी और मतिराम जैसे श्रृंगारप्रिय कवियों के ग्रन्थों पर आधारित जो दृष्टान्त चित्र बने हैं निःसन्देह उनमें नारी का सौन्दर्यमय श्रृंगार छलकता है। उत्तर मध्यकालीन नारी की सौन्दंर्य छटा सम्पूर्ण ग्रन्थों में बिखरा पड़ा है। कहना न होगा कि इस काल का एक ही ग्रन्थ 'रति–रहस्य' या 'बसन्तविलास'

नारी के विभिन्न श्रृंगारमय मुद्राओं को प्रदर्शित करने मे पूर्ण समर्थ है। 'गीतगोविन्द' में कृष्ण—राधा के पावन पवित्र रूपों में भी नारी की श्रृंगारिक अभिव्यंजना स्पष्ट दृष्टिगत होती है जिसमें ऐसे श्रृंगारमय रूप की सर्जना की गयी है जो लालित्य और लावणय से पूरित है।

नारी का मातृत्वमय रूप और उसका चित्रांकन—

नारी जीवन का लक्ष्य मातृत्व की प्राप्ति ही है। वह नारी जीवन पर्यन्त अपूर्ण रहती है यदि उसे मातृत्व पद प्राप्त न हुआ हो। भारतीय नारी का यह तात्विक रूप ही उसे इस बोझ को सहन करने की क्षमता भी देता है। भारतीय नारी नाना कष्ट सहन करके भी अपने नवजात शिशु के लिए अपने प्राण उत्सर्ग करने को तत्पर रहती है। वह जीवन का हर सुख, सौन्दर्य, मां बनने के लिए समर्पित कर देना चाहती है। तभी तो वह भारतीय संस्कृति में मातृत्व के महत्व को सर्वोच्च कर देना चाहती है। इसी से भारतीय संस्कृति में मातृत्व को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सैन्धवकालीन कला—कृतियों में भी मातृत्व को मातृशक्ति के रूप में अंकन किया गया है। अजन्ता के गुहा चित्रों में मातृत्व की सुन्दर एवं आदर्शमयी रूप का चित्रांकन देखने को मिलता है। भित्ति पट पर तथागत की माता का सुन्दर चित्रण है। मायादेवी स्वप्न में निमग्न हैं और गर्भ में श्वेत हाथी के प्रवेश का दृश्य देख रही हैं। उनके मातृत्व भावना के पूर्व रूप को चित्रकारों ने भित्ति पटों पर उतार दिया है। दूसरा दृश्य तथागत के जन्म का है। इसके अतिरिक्त एक अन्य चित्राकृति में माता यशोधरा अपने पुत्र राहुल के साथ पर्यकं पर गहन निद्रा में सो रही हैं। माता यशोधरा की मुखाकृति पर अपार शान्ति की आभा खेल रही है, मानो नारी ने अपना मनोवांछित फल पा लिया हो। पुत्र को पार्श्व में सोया जानकर जैसे निश्चिन्त भाव से सो रही हैं। दुख सुख की चिन्ता से मुक्त मां के गोद में राहुल पड़ा हुआ सो रहा है। कितना मनोरम सौन्दर्य है। देखकर लगता है कि यही नारी का परम लक्ष्य है। वह पति से पुत्र रूप में अपार श्रद्धा और स्नेह की अमरज्योति पा जाती है जो उसे जीवन भर सहारा देता है। मां के जीवन में बेटे की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं

होती। योग्य पुत्र को पाकर ममत्व अपने परीक्षण में सफल हो साधना की परम लक्ष्य को प्राप्त करा देता है।

भारतीय संस्कृति, भारतीय नारी जीवन की मनोरम प्रेरणादायिनी माता का जीवन अपने बेटे के लिए आधार बन जाता है। ऐसे पावन, पवित्र स्वरूप को भला भारतीय चित्रकार कैसे भुला देता। नारी जहां मातृत्व भाव की पोषिका है वहीं त्याग की प्रतिमूर्ति भी। भारतीय नारी में यह गुण संस्कार से ही आ जाता हैं प्राचीन गुहा चित्र अजन्ता में यशोधरा, अपने पुत्र का दान देने में अत्यधिक गौरव समझती है। भारतीय नारी का यह आदर्श उसके मातृत्व को चरम सीमा पर पहुंचा देता है। नारी जीवन में त्याग का इतना सुन्दर दृश्य चित्र अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यही कारण है कि मध्य कालीन चितेरों ने नारी के इस पवित्र स्वरूप का अंकन बड़े ही श्रद्धा के साथ किया गया है। मान्डू का कल्पसूत्र जो भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्यकालीन कृतियों का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें माता का सौन्दर्ययुक्त रूप आंकने का प्रयत्न किया गया है। चित्रकार को इस कृति सर्जना में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुयी है। भारतीय चित्रकला का मध्ययुग जिसे अन्धकार युग कहा जाता है। ऐसे काल में चित्रकला की सृजनात्मक प्रवृत्ति कुंठित नहीं हुयी किसी न किसी रूप में देशी रियासतों की संरक्षता में पल रही थी। उनकी कृतियों में नारी के मातृत्वमय रूप का चित्रांकन देखने को मिलता है। कलाभवन वाराणसी के सौजन्य से तथा दिल्ली संग्रहालय से प्रकाशित सचित्र ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' में भगवान कृष्ण के नाना रूपों के साथ नारी के सभी रूप का अंकन दर्शनीय है। हिन्दू चित्रकारों द्वारा चित्रित कृतियों में जहां एक ओर नारी की मोहक भंगिमा का अंकन कर अपनी प्रतिमा का परिचय दिया है वहीं मातृत्व की पराकाष्ठा को प्राप्त कृष्ण—यशोदा का सुमनोहर सौन्दर्य, सभी कुछ अलौकिक ही लगता है।

मध्यकालीन चित्रित पाण्डुलिपियों में नारी का मातृत्व रूप कहीं न कहीं अवश्य दृष्टिगत हो जाता है। अपभ्रंश शैली के अन्तर्गत चित्रित 'वसन्त—विलास' नामक एक कृति में नारी के कई रूपों का अंकन देखने को प्राप्य है। उत्तर मध्यकाल के इस चित्रित

ग्रन्थ में लगभग ७९ चित्राकृतियां हैं। जो जैन पोथियों के अतिरिक्त, 'गीत–गोविन्द' 'रतिरहस्य' आदि ग्रंथों में भी नारी के पर्याप्त चित्र की अभिव्यंजना कराते हैं। इन चित्राकृतियों में नारी के मातृत्व रूप का चित्रांकन भी यत्र तत्र दृष्टिगत हो जाता है। इस शैली में चित्रित नारी भंगिमा में सीमान्त रेखायें स्याही से खींची गयी है। चित्र निष्प्राण हैं, अंग–प्रत्यंगों की भंगिमा व अभिव्यक्त मुद्राओं में गति का सर्वथा अभाव है। लालित्य से हीन इन नारी आकृतियों पर अपभ्रंश का प्रभाव है, फिर भी उनकी मुद्राओं में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है।

इस प्रकार नारी के अनेक रूपों में श्रेष्ठ मातृत्व रूप भी भारतीय चित्रकला का विषय रहा है। पहाड़ी शैली के रियासतीं चित्रांकनों में दैनिक जीवन के अनेकानेक चित्रण प्राप्त हुये हैं जिनमें नारी के मातृत्व का चित्रांकन दर्शनीय है। माता–शिशु विषय पर अनेक चित्र देखने को सुलभ हैं। बच्चे को पीठ पर लादे हुए, गोद में लेकर बच्चे को दुग्धपान कराते हुये, बच्चों के साथ आनन्द लेते हुये चित्र रचे गए हैं जिसमें नारी सौन्दर्य के साथ ही साथ मातृत्व की झलक मिलती है, जो नारी के आदर्शमय रूप को अभिव्यक्त करता है।

नारी के शक्तिमयी रूप का अंकन–

भारतीय नारी शक्तिरूपा है। इस तथ्य से हम कभी भी विमुख नहीं हो सकते। अतीत युग में सैन्धवकालीन प्राप्त सामग्रियों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारी को शक्ति का प्रतिरूप मानते आ रहें हैं। नारी सृजन की क्षमता से युक्त है और यह शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए सैन्धव युगीन मानव ने विभिन्न टिकरों और मुद्राओं में नारी को शक्ति देवी मानकर उनकी आराधना करता आ रहा है। चित्रों में उरेहे गये नाना रूपों में शक्ति की अनेक मुद्रायें भारतीय जनमानस में नारी की इस पवित्र भावना को अभिव्यक्त करता है। प्राचीन युग में तो नारी को देवी स्वरूप माना ही गया है। तभी तो 'दुर्गाशप्तशती' में कहा गया है––

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।

हमारे ऋषियों ने प्राचीन काल में नारी का दर्शन शक्ति के रूप में ही किया है। सृष्टि के सारे तत्वों में अन्त: शक्ति के रूप में नारी की परिकल्पना हमारे आध्यात्म का आधार है। सर्वभूतों में शक्ति रूप में स्थित दुर्गा, ललित कला में शक्ति के रूप में सरस्वती, तथा विश्व को ऐश्वर्य एवं सम्पदा देने वाली शक्ति के रूप में लक्ष्मी की कल्पना करके उन्होंनें विश्व का सृजन, पालन और संहार करने वाली, त्रिगुणात्मक शक्तियों की ओर संकेत किया है। गीता में शक्ति के और भी रूप बताये गए हैं। कीर्ति, श्री वाणी, स्मृति, मेधा, धृति तथा क्षमा। यदि हम इनकी विवेचना करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन सभी शक्तियों की अभिव्यक्ति नारी के रूप में ही किया गया है।

नारी में आत्मबल की प्रधानता होती है। अस्त्र—शस्त्रों की अपेक्षा आत्म—शक्ति श्रेष्ठ है। अपने आत्मबल के कारण ही भारत की नारी सच्चे अर्थों में लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा कही जाती है भले ही वह अशिक्षिता, अकिंचना और अबला हो। अपने इसी गुणों के कारण ही तो नारी सर्वत्र पूज्य है।

मुगलों ने नारियों को मात्र अपने हरम की शोभा ही मान लिया था। यही कारण है कि भारतीय नारी का पावन रूप कलंकित होने लगा था किन्तु इस युग में चित्रित ग्रन्थों में नारी को देवी रूप में कल्पित कर जो चित्रांकन हुआ है उनमें उसके दैवी शक्ति की ही महानता को अभिव्यक्त किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में तारा को नाना रूप में अंकित करना शक्ति की ही कल्पना है। तारा एक ऐसा नाम है जो किसी भी बौद्ध देवी के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे सनातन धर्म में पार्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, इन सभी को शक्ति देवी कहा जा सकता है। तारा शब्द संस्कृत के तार धातु से निकला है जिसका अर्थ है पार करना। अर्थात् 'तारा' संसार सागर से मुक्ति दिलाने वाली शक्ति देवी है।

८वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक तारा का रूप सर्वत्र प्रचलित हो चुका था। मध्यकालीन बौद्ध चित्रकला में इस देवी के अनेक चित्र पर्याप्त भिन्नता के साथ चित्रांकित किए गए हैं।

महायान सम्प्रदाय में जब तारा के दार्शनिक रूप का विकास हुआ तो उन्हें भी बौद्ध देवता ध्यानी बुद्ध की भांति पांच प्रकार के रूप की कल्पना की गयी। इन पांचों ताराओं का रंग भिन्न—भिन्न रक्खा गया। प्रतिमाओं में इनकी पहचान तो कुछ भ्रम उत्पन्न कर सकती है पर चित्रकला में इन्हें रंगों के आधार पर पहचाना जा सकता है क्यों कि रंगों से देवता की पहचान हो जाती है। जैसे ध्यानी बुद्ध का रंग अलग—अलग है और इनकी संख्या भी पांच है। अत: कौन सी तारा किस ध्यानी बुद्ध के परिवार की है चित्रों में निश्चित हो जता है। बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित और चित्रित पांच भिन्न—भिन्न ताराओं का चित्रण देखने को मिलता है। इनमें से कुछ की प्रकृति तो सौम्य है तथा अधिकतर भयावह स्वरूप वाली हैं। इनकी भयंकर आकृतियां सप्तमातृकाओं के समान लगती है। साथ ही यह स्पष्ट कर देती हैं कि नारी के शक्तिमयी रूप की कल्पना चित्रकारों ने उस युग में भी की थी। इन पांच रूपों का विशेषकर त्रिनेत्र वाले चित्रों का सृजन महायान शााखा में प्रचलित तांत्रिक विचारधाराओं के फलस्वरूप हुआ है। उदाहरण के लिए 'सित तारा' का चित्रंण पवित्रता और स्वर्गिक ज्ञान के प्रतीक देवी रूप मानकर किया गया है। यदा कदा उन्हें अवलोकितेश्वर की शक्ति के रूप में भी चित्रांकित किया गया है। किन्हीं किन्हीं चित्रों में अंकित मुकुट पर अमोघ सिद्ध देवता का भी चित्रांकन हुआ है। इनको एकांकी चित्राकृति में अर्ध पर्यकं मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। दाहिना हाथ वरद मुद्रा में तथा बायें हाथ में पूर्ण विकसित कमल पकड़े चित्रित हैं। इन्हें पूर्ण आभूषणों से युक्त चित्रण किया जाता है। इसी तरह 'श्याम तारा', 'पीत तारा', 'नील तारा', रक्त तारा' आदि का चित्रण देखने को मिला है। पर यह नारी रूपा देवी चित्रण नारी के शक्ति स्वरूप को ही अभिव्यक्त करती है।

ऊपर वर्णित रक्त तारा एक ऐसी देवी है जो दो बिछुड़े प्रियजनों को मिलाने का कार्य करती है। इस कारण असफल प्रेमीजन इस देवी रूपा नारी की आराधना करते हैं। इसका विशेष सम्बन्ध तन्त्र विद्या से है। इस रूप की उपासना से किसी के ऊपर

जादू—टोना किया जा सकता है। चीन तथा तिब्बत में इस रूप का प्रचलन अत्याधिक है।

बौद्ध धर्म में प्रचलित ताराओं के रूप में अनेक चित्राकृतियों का अंकन मध्ययुग के बौद्ध ग्रन्थों में है जो नारी के शक्ति मय रूप को प्रकट करता है।

वाराणसी के कलाभवन में संग्रहीत प्रज्ञापारमिता से सम्बन्धित चित्र लगभग १२वीं शताब्दी का है। यह चित्र ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि के मध्य तथा दोनों और बनी है। मध्य के चित्र में त्रिभंग मुत्रा में नारी का चित्रण है, जो प्रज्ञापारमिता से सम्बन्धित देवी का चित्रण है। उक्त चित्राकृति में आखें चढ़ी हुयी, मुण्डमाल युक्त शक्ति स्वरूपा नारी आकृति भयंकरता को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है। लगता है जैसे उक्त कृति नारी के शक्तिमय रूप का अभिव्यक्ति करण है। शरीर की मुद्रा भयावह है। यह कृति अस्त्र—शस्त्रों से युक्त है। वक्ष पूर्ण नग्न है। विभत्स और रौद्र रस की एक साथ निस्पत्ति कराने वाली यह कृति मध्यकालीन चित्रविधा में नारी के शक्तिमयी रूप का श्रेष्ठ उदाहरण है। पार्श्व में दोनों ओर के नारी चित्र शक्ति की परिचायिका सी लगती हैं। किन्तु रंग योजना अपने ढंग की अलग ही है। पार्श्व के दोनों ओर नारी चित्रों में शरीर का रंग गहरा है। इसमें नीलिमा की अधिकता है। बौद्ध धर्म पर महायान सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ने के कारण तन्त्र—मन्त्रों के प्रभाव का स्पष्ट अभिव्यक्तिकरण इस चित्र पर देखने को मिलता है। प्रज्ञापारमिता की यह पोथी अन्य देवी कृतियों से अवश्य पूर्ण रहा होगा ऐसा अनुमान होता है।

भारत कलाभवन वाराणसी में लगभग १८वीं शताब्दी का एक ऐसा चित्र संग्रहीत है जिसे 'महिषबध' की संज्ञा दी गई है। इस चित्र का अंकन लोकचित्रण की तरह है। सीधी रेखाओ में आकृतियों का अंकन किया गया है। रंग योजना भी लोक शैली पर आधारित है। रेखाओं में प्रवाह एवं लय का सर्वथा अभाव है फिर भी कृति भावाभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है।

वैष्णव धर्म में वर्णित शक्ति देवियों का भी चित्रांकन इस

युग की देन है। उत्तर मध्यकालीन युग में 'दुर्गाशप्तशती' का भी चित्रांकन किया गया है। इस कृति में दुर्गा के कई रूपों का चित्रांकन अपभ्रंश शैली में भी मिला है। जो भरतीय चित्रकला में शक्ति के चित्रांकन के सुन्दर नमूने हैं।

मध्यकालीन जैन ग्रन्थों में भी अपभ्रंश शैली के चित्रों में नाना देवियों के ऐसे चित्र हैं जिसे हम शक्ति का प्रतिरूप ही मानते है। जैसे— विद्यादेवी का चित्र, सरस्वती का चिंत्र, लक्ष्मी का चित्र आदि। इस प्रकार भारतीय नारी जहां एक ओर श्रृंगार रूपा है, जो मनुष्य के हृदय की साम्राज्ञी बनकर उस पर अपने सौन्दर्यपाश का उपयोग कर उसे अपने वश में रखने में पूर्ण समर्थ है वहीं वह वात्सल्य की पोषिका बनकर सृष्टि की रचना का केन्द्र बिन्दु भी बनी है। भारतीय नारी ने मातृत्व का अधिकार ग्रहण करके भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। जब इस पावन धरती पर अत्याचार का बोझ बढ़ जाता है तो वहीं श्रृंगार की मोहक भंगिमा से युक्त नारी शक्ति रूप में परिवर्तित होकर प्रलय मचा देने की क्षमता भी रखती है।

इस प्रकार नारी के त्रिरूप भारतीय चित्रकारों के लिए आदियुग से वर्तमान युग तक प्रेरणा की स्रोत बनी रही। मध्यकालीन इतिहास में विशेषकर उत्तर मध्ययुग में भी इनके विभिन्न रूपों की रचना चित्रविदों ने करके भारतीय नारी के गौरव को अक्षुण रखने का प्रयत्न किया है। ☐



लोक चित्रांकन

लोक कला सरल हृदय की निष्पत्ति ही है। शची रानी गुर्टू का कहना है कि —— 'लोक कला अकृत्रिम होती है। इसीलिए उसका रूप इतना सरल और हृदयग्राही होता है कि भले ही जीवन के गूढ़तम विश्लेषण को वह व्यंजित न कर सके पर निष्ठा की अतुल गहराई अव्यवस्थित रेखाओं में भी सजीव चित्र उपस्थित कर देती है। इसके सौन्दर्य में झांकने के लिए तर्क वितर्क नहीं हृदय की संवेदनशीलता चाहिए। कहना न होगा कि लोक चित्रांकन उतनी ही पुरानी है। जितनी पुरानी मानव सभ्यता। प्राचीन काल से ही मानव अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखाओं में साकार करने का प्रयत्न करता आ रहा है। अनुष्ठानिक, अलंकारिक, मनोविनोदार्थ और कौशल प्रदर्शनार्थ।

''कितने ही उत्सव एवं पर्वों पर जैसे— दीपावली, दशहरा, श्रावणी, नागपंचमी, शीतला, अहोई, करवाचौथ, गणेशोत्सव सांझी का त्योहार, शादी—व्याह, पुत्रजन्म, उपनयन, पौराणिक कथाओं किम्वदन्तियों, आख्यान, वार्ता, नीति कथाओं, जातकों से सम्बन्धित चमत्कारपूर्ण नाटकीय दृश्यों को भावपूर्ण सार्थक चित्रों के रूप में दीवारों पर आंकने की प्रथा हैं। सुख समृद्धि एवं मांगलिक कार्यों के निमित विविध आकृति आलेखन, अल्पना, चौक, स्वस्तिक और सांकेतिक रेखाओं से तरह—तरह की आलेखनों का अंकन जन—जीवन के प्रतीक हैं। रीति—रिवाजों के अनुसार लोक चित्र बनाये जाते हैं।

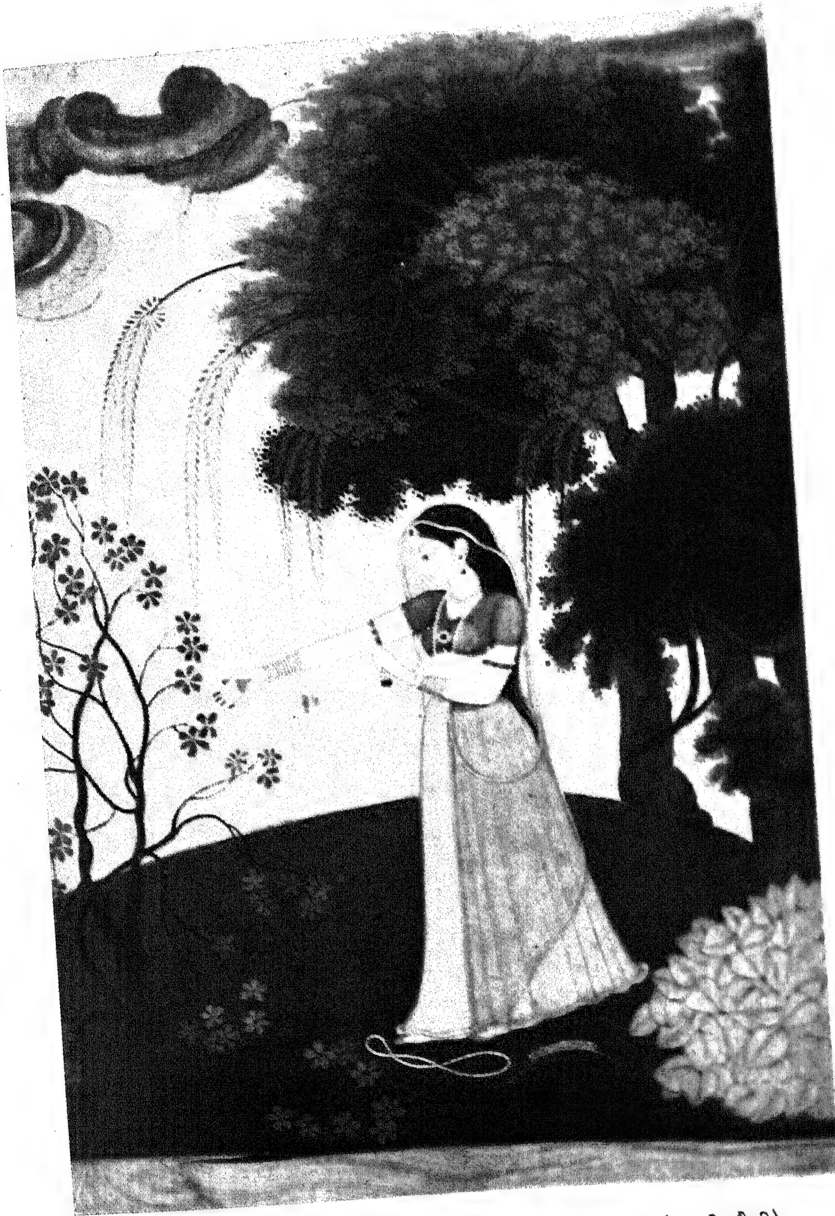
विभिन्न प्रदेशों में इसका रूप भी भिन्न ही दृष्टिगत होता है। स्थान की भिन्नता के कारण रेखाओं और रंगों में पर्याप्त भिन्नता दिखायी पड़ती है, किन्तु उनके पीछे जन मानस की पवित्र भावना की शक्ति लगी होती है। चाहे ये लोक चित्रांकन उड़ीसा की हो, चाहे आसाम, या हिमान्चल प्रदेश, बंगाल, राजस्थान और दक्षिण भारत तथा महाराष्ट्र की हो इनके स्वरूप में भिन्नता तो होती ही है, अंकन की भिन्नता भी लक्षित होती है। यही नहीं उनके भीतर से जन मानस का पावन पत्रित्र सरल हृदय भी दिखायी देता है।

लोकचित्रांकनो के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोककलाओं का स्वरूप मुख्यतया जिनका सम्बन्ध चित्रांकन से है तीन रूपों में दिखलाई पड़ता है। भित्ति पटों पर, पात्र चित्रांकन और भूमि अलंकरणों पर।

भित्ति चित्रों में नारी अंकन—

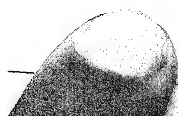
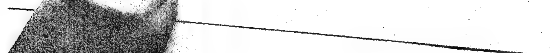
उत्तर प्रदेश का पूर्वाचंल जो आज भी उपेक्षित क्षेत्र है वहां के लोक चित्रांकनों में वहां की सहज सरलता, भोलापन एवं मन की पवित्रता ही दृष्टिगत होती है। कहना न होगा कि भोजपुरी क्षेत्र वासी कला के बड़े उपासक हैं जिस प्रकार भोजपुरी, काव्यों एवं गीतों का लालित्ययुक्त भंडार अद्वितीय है उसी प्रकार वहां की कलात्मक निधि भी अनोखी है। भोजपुरी क्षेत्रों में कला का बड़ा ही अनुरंजित रूप दिखायी देता हैं विवाह के अवसर पर कोहबर सजाने का कार्य स्त्रियां बड़े चाव से करती हैं। भित्ति पटों को साफ करके उनमें नाना चित्रांकन करना भारतीय नारी अपना कर्तव्य समझती है। विवाहोपरान्त जिस कक्ष में वर को ले जाते हें वहां गृह देवता का पूजन होता है। उस केहबर की दीवारों पर कोहबर चित्र बनाने का विधान है। इस कोहबर रचना में संसार की सारी वस्तुएं बनायी जाती हैं। लगता है विश्व सम्पुजन को इन चित्रों में साकार किया गया है उन चित्रों में पालकी, कमल, हाथी, कमल नाल, पान, पुष्प, सूर्य, चन्द्रमा और पुतरी आदि का चित्रण होता है। एक ऐसा चित्र पूर्वाचंल मे देखने को मिला है जिसमें सारी वस्तुओं का संयोजित रूप दर्शनीय है भोजपुरी लोक गीतो में भी उन चित्रों का उल्लेख मिलता है। वहां के भोले भाले अनपढ़ ग्रामीण नारियों की दक्ष उंगलियों का चातुर्य उन्हें संस्कार स्वरूप विरासत में ही मिल गया होता है। लोक गीतों में भी भित्ति चित्रों का उल्लेख मिलता है। भोजपुरी में चित्रांकन के लिए 'उरेहना' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

''विवाह के गीतों' में कोहबर का रूप दर्शनीय है। निम्न गीत में कोहबर के भित्ति पर चार चिड़ियों तथा एक जोड़े हंस को



विप्रलब्धा नायिका (पहाड़ी शैली)



चित्रित करने का प्रसंग मिलता है। दूसरे गीत में कोहबर में चन्द्रमा और सूर्य को चित्रित करने का उल्लेख है। इस कोहबर गृह में समधी द्वारा बनाये गये सुन्दर भित्ति चित्रों को देखकर समस्त संसार मोहित हो जाता है। ये चित्र सम्भवतः वर—वधू के मनोरंजन के लिए बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त कोहबर में कमलपुष्प, कमलपत्र, पालकी, गोपीचन्द्र तारिकाएं तथा पान का पत्ता भी चित्रित किया जाता है। लोकमानस, हाथी, घोड़ा, पालकी को वैभव का, गोपीचन्द्र और पुतरी को वर—वधू का, सूर्य और चन्द्रमा को दीर्घ जीवन, हंस और मयूर को मंगल का तथा पान और कमल को कला का प्रतीक समझता है। कोहबर चित्रों में इन वस्तुओं के चित्रांकन का यही रहस्य है।

''पावन मोरे बाबा मड़ंवा छवावेले, फुलवा के बान्ह बन्हाई।
ताही भीतर बाबा पुतरी उरेहले, चारि चिरइया जोड़ी हंस।
कोहबर लिखवि चान रे सुरुजवा, मंडवा लिखवि गोपीचन्द रे।
भीतर चित्र उरेहेला समधी ए मोहेला जग संसार।

उपरोक्त लोक गीतों में चित्रकला का स्वस्थ स्वरूप दृष्टिगत होता है। पुतरी का चित्रण स्पष्ट ही नारी चित्रण का प्रतीक है। कहना न होगा कि जहां गोपीचन्द (वर) का चित्रण है वहीं पुतरी (वधू) का चित्रण भी अवश्य है। इसमें गृह के अन्दर चित्रित नारी चित्रण, लोक चित्रकला का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बंगाल की कलाप्रियता भारतवर्ष में विख्यात है। बंगाल में लोक कलाओं का जितना समुन्नत रूप दृष्टिगत होता हैं शायद और कहीं का नहीं होगा। भारतवर्ष का यह प्रदेश अतीत युग से ही कला का साधक रहा है।

बंगाल की लोक कलाओ में चित्र विद्या को पट की संज्ञा दी जाती है। इनका सृजन उन अनपढ़ कलाकारों द्वारा होता है जो विभिन्न चित्र शैलियों, वादों और विभिन्न माध्यमों से अनभिज्ञ हैं। वे तो अपने वंश की परम्परा जो उन्हें वंश परम्परा की थाती के रूप में मिली है उसी की लीक पीटने वाले चित्रकार हैं। इन लोक चित्रों और चित्रकारों के विषय में श्री असित कुमार हाल्दार का कहना है

कि —— ''चितेरे एक घरेलू व्यवसाय के रूप में पिता पितामह से इस विषय की जो कुछ शिक्षा प्राप्त करते थे, केवल उसी की लकीर पर चलकर एक ही ढंग से राजसी, तामसिक और सात्विक इन तीन भावों के चित्र अंकित किया करते थे। इन कृतियों में भी नारी विभिन्न रूपों में चित्रित होती रही। ''इन तामसिक चित्रों में स्वामी—स्त्री का झगड़ा, राधा—कृष्ण के मान भंजन का अंकन होता था। सात्विक विचारों की निष्पत्ति कराने वाले चित्रों मे राधा कृष्ण की युगल मूर्ति, शती का शव ले जाते शिव, कृष्ण को गोद में लेकर दूध दुहते यशोदा, अर्ध नारीश्वर के चित्र अवलोकनीय हैं। इनमें नारी के आदर्श रूप की सुन्दर परिकल्पना देखने को मिलता है जिन पर किसी शैली का प्रभाव नहीं है। मूलत: ये भावनायें वहां के लोक जीवन और लोक हृदय की अभिव्यंजना है।

बंगाल के ये पट चित्र दो प्रकार के होते थे। एक प्रकार के वे चित्र जो केवल मेलों में बिकने के लिए निर्मित किये जाते थे। दूसरे प्रकार के चित्र जो बड़े आकार के और जड़े हुए होते थे। वे ऐसे क्रम में अंकित किये जाते थे कि रामायण तथा श्रीकृष्ण लीला की घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन आजाये। चित्रकार घर घर जाकर इन चित्रों का प्रदर्शन करते और घटनाओं का वर्णन करते थें जिस तरह आज सिनेमा चित्रों का, जो उपयोग है, उस युग में इन चित्रों का उपयोग था।

''पट चित्रों में श्रीकृष्ण लीला, गौर निताई का संकीर्तन, दशावतार तथा तान्त्रिक देवियों का स्वरूप चित्रांकन होता था। जो बंगाल लोक कला में नारी का आदर्शमय रूप अभिव्यक्त करते हैं।

''इन पट चित्रों का प्रचलन मध्ययुगीन चित्रकला से हुआ। इस चित्रकला की धारा इतनी प्रगतिशील रही कि उन दिनों समस्त भारतवर्ष कुमारी अन्तरीप से लेकर हिमालय पर्वत तक फैली महायान हिन्दू बौद्धधर्म के प्रचार के साथ—साथ भारतीय द्वीपों से कोचीन, जापान, कोरिया एवं समस्त वृहत्तर भारत मे प्रसारित हुयी थी।

वास्तव में भारतीय चित्रकला के इतिहास में पाल और सेन राजाओं के बाद बंगाल में कालीधाट, ढाका (वर्तमान बंगलादेश)

मैमनसिंह, वीरभूम, वारीसाल आदि स्थानों में ग्रामीण चितेरे चित्र अंकित करते रहे। गुजरात में जैनियों की पोथियों पर तथा दक्षिण में त्रिवांकुर और कोचीन में दीवारों पर चित्र अंकित करके चित्रकार अपना प्रभाव छोड़ गए हैं।

यहां के लोककला के पीछे पालयुग की चित्रकला ही सप्राण रही। श्री हाल्दार का कथन है कि—— ''ग्रामीण चितेरे पाल युग की कला पद्धति को ही इतने दिनों तक चलाते आयें हैं। क्रमश: बाजारों में बिकने वाली अन्य विभिन्न वस्तुओं के समान अपने चित्रितपट चित्र भी विक्रय करना चितेरों का व्यवसाय हो गया था।

भित्ति चित्र की परम्परा में हमारे देश की नारियों के कृतियों का विशेष महत्व है। इस सन्दर्भ में प्रो० चिरंजीलाल झा का कहना है कि —— ''भारतीय नारियों के द्वारा बनाये गए सांझी, करवाचौथ, और अहोई की चित्राकृतियां भी लोक चित्रांकनों में आती हैं। सांझी (सांजी, संजा, सजा—वाई) अश्विन माह के कृष्ण पक्ष में अविवाहित बालिकायें बनाती हैं। दीवारों पर नाना विधि रेखाओं से नारी आकृतियां ही इसकी रचना है।

स्थानगत भिन्नता के साथ लोक कला कृतियों में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। कुल्लू से प्राप्त पतंग लड़ाती हुयी बालिका का एक सुन्दर चित्र मिला है जो वहां के लोकचित्रण में दक्ष—तूलिका का प्रमाण है। लोक कला के भित्ति पट चित्रों के सम्बन्ध में प्रोफेसर चिरंजीलाल झा का कहना है कि —— ''इस प्रकार के चित्र भारतीय नारियां काढ़ती हैं। रक्षाबन्धन के चित्र में श्रवण कुमार के अन्धे माता—पिता को कन्धे पर चित्रित किया जाता है। इससे मातृ एवं पितृ भक्ति का उपदेश मिलता है। वास्तव में लोक कला का स्वरूप ही निराला है। कहीं—कहीं लटकाने के लिए देवी—देवताओं के चित्र वस्त्रों पर आंकने के बाद उनकी रेखाओं को धागों से काढ़ा गया मिलता है। इस प्रकार के जैन देवियों के चित्र दर्शनीय है। प्रो० चिरंजीलाल झा के विचारों में —— ''लोक कला हृदय का धन है, शास्त्रीय कला मस्तिष्क का। लोक कला में रस है, शास्त्रीय कला में अलंकार है। लोक कला सभी मनुष्यमात्र के लिए है, शास्त्रीय कला का ज्ञान थोड़े से लोगों को होता

कि —— ''चितेरे एक घरेलू व्यवसाय के रूप में पिता पितामह से इस विषय की जो कुछ शिक्षा प्राप्त करते थे, केवल उसी की लकीर पर चलकर एक ही ढंग से राजसी, तामसिक और सात्विक इन तीन भावों के चित्र अंकित किया करते थे। इन कृतियों में भी नारी विभिन्न रूपों में चित्रित होती रही। ''इन तामसिक चित्रों में स्वामी—स्त्री का झगड़ा, राधा—कृष्ण के मान भंजन का अंकन होता था। सात्विक विचारों की निष्पत्ति कराने वाले चित्रों मे राधा कृष्ण की युगल मूर्ति, शती का शव ले जाते शिव, कृष्ण को गोद में लेकर दूध दुहते यशोदा, अर्ध नारीश्वर के चित्र अवलोकनीय हैं। इनमें नारी के आदर्श रूप की सुन्दर परिकल्पना देखने को मिलता है जिन पर किसी शैली का प्रभाव नहीं है। मूलत: ये भावनायें वहां के लोक जीवन और लोक हृदय की अभिव्यंजना है।

बंगाल के ये पट चित्र दो प्रकार के होते थे। एक प्रकार के वे चित्र जो केवल मेलों में बिकने के लिए निर्मित किये जाते थे। दूसरे प्रकार के चित्र जो बड़े आकार के और जड़े हुए होते थे। वे ऐसे क्रम में अंकित किये जाते थे कि रामायण तथा श्रीकृष्ण लीला की घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन आजाये। चित्रकार घर घर जाकर इन चित्रों का प्रदर्शन करते और घटनाओं का वर्णन करते थें जिस तरह आज सिनेमा चित्रों का, जो उपयोग है, उस युग में इन चित्रों का उपयोग था।

''पट चित्रों में श्रीकृष्ण लीला, गौर निताई का संकीर्तन, दशावतार तथा तान्त्रिक देवियों का स्वरूप चित्रांकन होता था। जो बंगाल लोक कला में नारी का आदर्शमय रूप अभिव्यक्त करते हैं।

''इन पट चित्रों का प्रचलन मध्ययुगीन चित्रकला से हुआ। इस चित्रकला की धारा इतनी प्रगतिशील रही कि उन दिनों समस्त भारतवर्ष कुमारी अन्तरीप से लेकर हिमालय पर्वत तक फैली महायान हिन्दू बौद्धधर्म के प्रचार के साथ—साथ भारतीय द्वीपों से कोचीन, जापान, कोरिया एवं समस्त वृहत्तर भारत मे प्रसारित हुयी थी।

वास्तव में भारतीय चित्रकला के इतिहास में पाल और सेन राजाओं के बाद बंगाल में कालीघाट, ढाका (वर्तमान बंगलादेश)

मैमनसिंह, वीरभूम, वारीसाल आदि स्थानों में ग्रामीण चितेरे चित्र अंकित करते रहे। गुजरात में जैनियों की पोथियों पर तथा दक्षिण में त्रिवांकुर और कोचीन में दीवारों पर चित्र अंकित करके चित्रकार अपना प्रभाव छोड़ गए हैं।

यहां के लोककला के पीछे पालयुग की चित्रकला ही सप्राण रही। श्री हाल्दार का कथन है कि— ''ग्रामीण चितेरे पाल युग की कला पद्धति को ही इतने दिनों तक चलाते आयें हैं। क्रमशः बाजारों में बिकने वाली अन्य विभिन्न वस्तुओं के समान अपने चित्रितपट चित्र भी विक्रय करना चितेरों का व्यवसाय हो गया था।

भित्ति चित्र की परम्परा में हमारे देश की नारियों के कृतियों का विशेष महत्व है। इस सन्दर्भ में प्रो० चिरंजीलाल झा का कहना है कि —— ''भारतीय नारियों के द्वारा बनाये गए सांझी, करवाचौथ, और अहोई की चित्राकृतियां भी लोक चित्रांकनों में आती हैं। सांझी (सांजी, संजा, सजा—वाई) अश्विन माह के कृष्ण पक्ष में अविवाहित बालिकायें बनाती हैं। दीवारों पर नाना विधि रेखाओं से नारी आकृतियां ही इसकी रचना है।

स्थानगत भिन्नता के साथ लोक कला कृतियों में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। कुल्लू से प्राप्त पतंग लड़ाती हुयी बालिका का एक सुन्दर चित्र मिला है जो वहां के लोकचित्रण में दक्ष—तूलिका का प्रमाण है। लोक कला के भित्ति पट चित्रों के सम्बन्ध में प्रोफेसर चिरंजीलाल झा का कहना है कि —— ''इस प्रकार के चित्र भारतीय नारियां काढ़ती हैं। रक्षाबन्धन के चित्र में श्रवण कुमार के अन्धे माता—पिता को कन्धे पर चित्रित किया जाता है। इससे मातृ एवं पितृ भक्ति का उपदेश मिलता है। वास्तव में लोक कला का स्वरूप ही निराला है। कहीं—कहीं लटकाने के लिए देवी—देवताओं के चित्र वस्त्रों पर आंकने के बाद उनकी रेखाओं को धागों से काढ़ा गया मिलता है। इस प्रकार के जैन देवियों के चित्र दर्शनीय है। प्रो० चिरंजीलाल झा के विचारों में —— ''लोक कला हृदय का धन है, शास्त्रीय कला मस्तिष्क का। लोक कला में रस है, शास्त्रीय कला में अलंकार है। लोक कला सभी मनुष्यमात्र के लिए है, शास्त्रीय कला का ज्ञान थोड़े से लोगों को होता

है, जो उससे परिचित होते हैं।

उड़ीसा के भित्ति पटों पर वहां का जन—जीवन झांकता है जिसमें नारी चित्रण सुन्दर है। एक ऐसा चित्र प्राप्त हुआ है जिसमें कई लोगों के साथ पूरा परिवार कहीं जा रहा है। इस चित्र में ऊंट तथा अन्य पशुओं का चित्रण भी है। नारी चित्र भी सुन्दर है किन्तु चित्र में स्पष्टता नहीं है। चित्र सिलवटी चित्र के समान है।

पात्र चित्रों में नारी मुद्राएं——

बंगाल में इस तरह के पट चित्र विख्यात है ये बंगाल के पटवों द्वारा बनाये गए पट चित्र भारतीय लोक कला के बहुमूल्य निधि हैं जिनमें बंगाल का जन जीवन प्रतिविम्बित होता है। जिस तरह बंगाल में पट चित्रों का महत्व है पात्र चित्रण का भी अपना अलग स्थान है। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान मृण कलशों के बिना पूर्ण नहीं होता। बंगाल में किसी भी पावन अवसर पर, उत्सव पर, द्वार के दोनों पार्श्व पर अलंकृत पात्रों व कलशों में जलभर कर रखा जाता है। इसके अतिरिक्त कदली के वृक्ष एवं पत्ते खड़े किये जाते हैं, बन्दनवार बाधें जाते हैं। ये सभी क्रियाएं मंगल एवं पूर्णता के शुभ लक्षण हैं।

इन पात्रों पर नाना प्रकार के चित्र आंके जाते हैं। कहीं—कहीं देवी देवताओं के चित्र, कहीं दुर्गा व लक्ष्मी के चित्रों का अंकन बंगाल कला के प्रांण है। यही नहीं कही कहीं नवग्रह के चित्रों से इन मृण पात्रों को सज्जित किया जाता है। मृणपात्रों के ढक्कनों पर देवियों के चित्र रचना का विधान सुन्दरता के साथ ही उनके पावन पवित्र आस्था को प्रकट करता है। उड़ीसा प्रान्त में लकड़ी के छोटे—छोटे पात्र, जिसका उपयोग वहां की नारियां श्रृंगार प्रसाधनों को रखने के लिए करती हैं। उन पर नारी के मोहक चित्र बड़े ही रोचक लगते हैं। छोटे पात्रों पर जगह की कमी रहती है। उन पर नारी के मोहक चित्र बड़े ही रोचक लगते हैं। फिर भी उन नन्हें नन्हें सुन्दर पात्रों पर नारी

को विभिन्न रूपों में चित्रित किया जाता है। कहीं नारी की सुन्दर शारीरिक भंगिमा, कहीं मुकुर निरखती नारी, अंकन की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करता है। कहना न होगा कि ये चित्रकार अपने वंश परम्परा का निर्वाह शताब्दियों से करते आ रहे हैं।

उत्तर प्रदेश व विहार में विवाह इत्यादि के अवस पर मिट्टी के अलंकृत बड़े—बड़े मृण भाण्डों में मिष्ठान देने की प्रथा है। यह दहेज में सगे सम्बन्धियों या लड़की की ओर से दिया जाता है। इन घड़ों पर विभिन्न अलंकरण, मोर, तोता, पेड़ पौधे, राजा—रानी के चित्रों का रूप दर्शनीय होता हैं बिना कला का ज्ञान प्राप्त किये भोले अनपढ़ किन्तु सरल हृदय युक्त सरल भावनाअें से पूर्ण रेखाओं में सरलता के साथ ही कला का प्रवाह देखने को मिलता है। लोक कला में पात्र—चित्रणों का महत्व अत्यधिक है। ये दैनिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं। यूनान के लोग इस कला में और भी अधिक निपुण हैं। उनके पात्र चित्रणों में कहीं नारी को धान कूटते, कहीं अन्य क्रियाओं में लिप्त तो कहीं प्रणय लीन मुद्रा में चित्रण वहां के सामाजिक स्वरूप को प्रकट करते हैं।

भूमि अलंकरण और नारी चित्रण——

भित्ति पटों एवं पात्र चित्रणों के अतिरिक्त लोक कला का स्वरूप भूमि अलंकरण में भी देखने को मिलता है। बंगाल में इसे अल्पना, बम्बई में मांडन, गढ़वाल में आपना या थापना उत्तर प्रदेश में चौक पूरना आदि कहते हैं। इसमें अधिक्तर सूखे चूर्ण व रंगों का उपयोग होता है।

इस कला में भी पुष्प, पत्ते, पशु—पक्षी एवं शंख तथा मछलियों के अतिरिक्त नारी के पद्चिन्ह जो गृह लक्ष्मी का प्रतीक है चित्रित किये जाते हैं। इन अलंकरणों में नारी की विभिन्न मुद्रायें तो नहीं आंकी जाती पर किसी न किसी प्रतीक रूप में ही सही इनका अंकन होता अवश्य है। कला तीर्थ अजन्ता में तो अलंकरणों की भरमार ही है। भित्ति चित्रों के दृश्य चित्रों में नाना रूपों के अलंकरणों का अंकन वहां की निधि है। अजन्ता के भूमि अलंकरणों

में मिथुन आकृतियों का चित्रांकन हुआ है, जिनमें नारी का सौन्दर्य युक्त श्रृंगारमय छटा लक्षित होता है।

कहीं कहीं लकड़ी के पटों पर भी चित्रांकन देखने को मिलता है जो वहां के लोकरूचि का परिचायक है। विहार का मधुबनी क्षेत्र जहां की लोक कलायें आज भारत में ही नहीं विश्व में अपना स्थान बना चुकी है, दर्शनीय हैं युगों पूर्व यहां की लोक कला जीवित रही। बिहार प्रान्त के इस कला प्रिय क्षेत्र में विवाह के समय डालें (बांस की छिछली टोकरी) पर सजाने के लिए बसहा कागज (स्थान विशेष में हाथ से बना) पर चित्र बनाये जाते हैं। भोली—भाली स्त्रियां इन चित्रों को बनाने में बड़ी निपुण होती हैं जिसमें देवी देवता ही नहीं अनेकानेक नारी मुखाकृतियों का अंकन अपने ढंग का अलग ही होता है। चूंकि ये छोटे छोटे चित्र दीवालों पर टांगने के लिए नहीं बल्कि नीचे भूमि पर फैलाकर बिछाने के काम आते हैं। इसलिए इसे भी भूमि अलंकरणों की श्रेणी में रखा जाता है। भूमि अलंकरण की श्रृंखला में शादी व्याह में (वर—वधू के बैठने के लिए) पट्टों के चित्र भी आते हैं। ये लकड़ी के पट्टे, ऐसे हेते हैं जिन पर अनेक चित्र बने होते हैं। चित्रों में पशु पक्षी, बेल बूटे, मानवाकृतियों का चित्रांकन सुन्दर होता है। मधुबनी की यह चित्र परम्पराआज ही नहीं शदियों पूर्व से चली आ रही है।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला में जैन शैली का कम महत्व नहीं है। लोक चित्रांकन का आधार ही जैन शैली है— वास्तविकता यह है कि तत्कालीन लोक जीवन की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति जैनचित्र शैली में ही देखने के मिलती है। क्योंकि इसके रचनाकार ठेठ हिन्दू जैन मतवलम्बी थें उनका सीधा सम्पर्क जैन परिवारों से या यों कहें सामाजिक मानवीय स्वरूपों से था यही कारण है कि इस शैली में चित्रित आकृतियों में जन—जीवन का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित होता है। इस लोक चित्रांकन में जो लोक जीवन की झांकी झलकती है। वह जैन शैली के धार्मिक सीमओं में बंधे रहने के कारण ही है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि——"जैन शैलीकी अकृतियों, रेखाओं और साज—सज्जा में लोक कला का

समर्थ रूप विद्यमान है। उसमें लोक सौन्दर्य एवं लोक संस्कृति के ऐसे तत्व छिपे हैं, जैसे सांची और भरहुत की कृतियों में हैं। इसलिए जैसा लोक कला का वास्तविक प्रतिनिधित्व जैन कला में समाहित है वैसा न तो बौद्ध कला में ही दिखायी देता है और न राजपूत कला में ही। इन जैन कलाकृतियों का प्रमुख आधार इनके धार्मिक ग्रन्थ जैसे 'आचारांग सूत्र' 'कल्पसूत्र' में वर्णितजैन तीर्थकरों की जीवनी, और कालकाचार्य की कथा रही है। ये कथाएं बड़े ही मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत हैं जो तत्कालीन जन—मानस एवं उनकी संस्कृति और विचारों की अभिव्यंजना करती हैं।

''चौबीस जैन तीर्थांकरों के दोनों पार्श्व में जो यक्ष—यक्षिणियों के युगल चित्रण हैं उनसे लोक जीवन के प्रति अनुराग ध्वनित होता है। लोककला के उदार दृष्टिकोण को प्रकट करने वाली मथुरा की यक्षिणियों का अर्धनग्न चित्र और करधनियों से अलंकृत प्रस्तर मूर्तियां इस शैली के उत्तम दृष्टान्त हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हीं तरह के नारी चित्रण भी हुए हैं।

कहना न होगा कि प्रतिमों के प्रगति के बाद ही चित्रकला का विकास हुआ है। बुद्ध गया, भरहुत सांची के नारी प्रतिमाओं की प्रेरणा से ही मध्यकालीन चित्रांकृतियों में इतने अधिक नारी रूपों का सृजन हो सका है।

इसी प्रकार लोक चित्रांकन में देवी आकृतियों का पर्याप्त अंकन हुआ हैं। लोक शैली में दुर्गा का लोक चित्रांकन का स्वरूप दर्शनीय है। इस चित्र में नीचे किसी राक्षस का चित्रण है जिस पर दुर्गा को अपना आयुद्ध लिए हुए चित्रित किया गया है।

कुछ भी हो भारतीय लोक चित्रांकन बड़ा ही समृद्धशाली है, कारण कि इनके निर्माण में जनमानस का हृदय और मस्तिष्क दोनों लगा होता है। जनमानस में कला की संरचना करने की पूर्ण अभिलाषा तो रहती ही है चाहे इसे आंशिक ही सफलता मिले। फिर भी हम इतना तो अवश्य ही कह सकते हैं कि उसमें सरलता के साथ ही साथ हृदय की पावन अभिव्यक्ति भी जुड़ी रहती है। भारत देश तो स्वत:कलामय है। यहां ऋषियों ने साहित्य और कला से शून्य मनुष्य को पशुवत माना है।

में मिथुन आकृतियों का चित्रांकन हुआ है, जिनमें नारी का सौन्दर्य युक्त श्रृंगारमय छटा लक्षित होता है।

कहीं कहीं लकड़ी के पटों पर भी चित्रांकन देखने को मिलता है जो वहां के लोकरूचि का परिचायक है। विहार का मधुबनी क्षेत्र जहां की लोक कलायें आज भारत में ही नहीं विश्व में अपना स्थान बना चुकी है, दर्शनीय हैं युगों पूर्व यहां की लोक कला जीवित रही। बिहार प्रान्त के इस कला प्रिय क्षेत्र में विवाह के समय डालें (बांस की छिछली टोकरी) पर सजाने के लिए बसहा कागज (स्थान विशेष में हाथ से बना) पर चित्र बनाये जाते हैं। भोली—भाली स्त्रियां इन चित्रों को बनाने में बड़ी निपुण होती हैं जिसमें देवी देवता ही नहीं अनेकानेक नारी मुखाकृतियों का अंकन अपने ढंग का अलग ही होता है। चूंकि ये छोटे छोटे चित्र दीवालों पर टांगने के लिए नहीं बल्कि नीचे भूमि पर फैलाकर बिछाने के काम आते हैं। इसलिए इसे भी भूमि अलंकरणों की श्रेणी में रखा जाता है। भूमि अलंकरण की श्रृंखला में शादी व्याह में (वर—वधू के बैठने के लिए) पट्टों के चित्र भी आते हैं। ये लकड़ी के पट्टे, ऐसे हेते हैं जिन पर अनेक चित्र बने होते हैं। चित्रों में पशु पक्षी, बेल बूटे, मानवाकृतियों का चित्रांकन सुन्दर होता है। मधुबनी की यह चित्र परम्पराआज ही नहीं शदियों पूर्व से चली आ रही है।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला में जैन शैली का कम महत्व नहीं है। लोक चित्रांकन का आधार ही जैन शैली है— वास्तविकता यह है कि तत्कालीन लोक जीवन की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति जैनचित्र शैली में ही देखने के मिलती है। क्योंकि इसके रचनाकार ठेठ हिन्दू जैन मतवलम्बी थें उनका सीधा सम्पर्क जैन परिवारों से या यों कहें सामाजिक मानवीय स्वरूपों से था यही कारण है कि इस शैली में चित्रित आकृतियों में जन—जीवन का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित होता है। इस लोक चित्रांकन में जो लोक जीवन की झांकी झलकती है। वह जैन शैली के धार्मिक सीमओं में बंधे रहने के कारण ही है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि——"जैन शैलीकी अकृतियों, रेखाओं और साज—सज्जा में लोक कला का

समर्थ रूप विद्यमान है। उसमें लोक सौन्दर्य एवं लोक संस्कृति के ऐसे तत्व छिपे हैं, जैसे सांची और भरहुत की कृतियों में हैं। इसलिए जैसा लोक कला का वास्तविक प्रतिनिधित्व जैन कला में समाहित है वैसा न तो बौद्ध कला में ही दिखायी देता है और न राजपूत कला में ही। इन जैन कलाकृतियों का प्रमुख आधार इनके धार्मिक ग्रन्थ जैसे 'आचारांग सूत्र' 'कल्पसूत्र' में वर्णितजैन तीर्थकरों की जीवनी, और कालकाचार्य की कथा रही है। ये कथाएं बड़े ही मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत हैं जो तत्कालीन जन—मानस एवं उनकी संस्कृति और विचारों की अभिव्यंजना करती हैं।

''चौबीस जैन तीर्थांकरों के दोनों पार्श्व में जो यक्ष—यक्षिणियों के युगल चित्रण हैं उनसे लोक जीवन के प्रति अनुराग ध्वनित होता है। लोककला के उदार दृष्टिकोण को प्रकट करने वाली मथुरा की यक्षिणियों का अर्धनग्न चित्र और करधनियों से अलंकृत प्रस्तर मूर्तियां इस शैली के उत्तम दृष्टान्त हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हीं तरह के नारी चित्रण भी हुए हैं।

कहना न होगा कि प्रतिमों के प्रगति के बाद ही चित्रकला का विकास हुआ है। बुद्ध गया, भरहुत सांची के नारी प्रतिमाओं की प्रेरणा से ही मध्यकालीन चित्रांकृतियों में इतने अधिक नारी रूपों का सृजन हो सका है।

इसी प्रकार लोक चित्रांकन में देवी आकृतियों का पर्याप्त अंकन हुआ हैं। लोक शैली में दुर्गा का लोक चित्रांकन का स्वरूप दर्शनीय है। इस चित्र में नीचे किसी राक्षस का चित्रण है जिस पर दुर्गा को अपना आयुद्ध लिए हुए चित्रित किया गया है।

कुछ भी हो भारतीय लोक चित्रांकन बड़ा ही समृद्धशाली है, कारण कि इनके निर्माण में जनमानस का हृदय और मस्तिष्क दोनों लगा होता है। जनमानस में कला की संरचना करने की पूर्ण अभिलाषा तो रहती ही है चाहे इसे आंशिक ही सफलता मिले। फिर भी हम इतना तो अवश्य ही कह सकते हैं कि उसमें सरलता के साथ ही साथ हृदय की पावन अभिव्यक्ति भी जुड़ी रहती है। भारत देश तो स्वत:कलामय है। यहां ऋषियों ने साहित्य और कला से शून्य मनुष्य को पशुवत माना है।

में मिथुन आकृतियों का चित्रांकन हुआ है, जिनमें नारी का सौन्दर्य युक्त श्रृंगारमय छटा लक्षित होता है।

कहीं कहीं लकड़ी के पटों पर भी चित्रांकन देखने को मिलता है जो वहां के लोकरूचि का परिचायक है। विहार का मधुबनी क्षेत्र जहां की लोक कलायें आज भारत में ही नहीं विश्व में अपना स्थान बना चुकी है, दर्शनीय हैं युगों पूर्व यहां की लोक कला जीवित रही। बिहार प्रान्त के इस कला प्रिय क्षेत्र में विवाह के समय डालें (बांस की छिछली टोकरी) पर सजाने के लिए बसहा कागज (स्थान विशेष में हाथ से बना) पर चित्र बनाये जाते हैं। भोली–भाली स्त्रियां इन चित्रों को बनाने में बड़ी निपुण होती हैं जिसमें देवी देवता ही नहीं अनेकानेक नारी मुखाकृतियों का अंकन अपने ढंग का अलग ही होता है। चूंकि ये छोटे छोटे चित्र दीवालों पर टांगने के लिए नहीं बल्कि नीचे भूमि पर फैलाकर बिछाने के काम आते हैं। इसलिए इसे भी भूमि अलंकरणों की श्रेणी में रखा जाता है। भूमि अलंकरण की श्रृंखला में शादी व्याह में (वर–वधू के बैठने के लिए) पट्टों के चित्र भी आते हैं। ये लकड़ी के पट्टे, ऐसे हेते हैं जिन पर अनेक चित्र बने होते हैं। चित्रों में पशु पक्षी, बेल बूटे, मानवाकृतियों का चित्रांकन सुन्दर होता है। मधुबनी की यह चित्र परम्पराआज ही नहीं शदियों पूर्व से चली आ रही है।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला में जैन शैली का कम महत्व नहीं है। लोक चित्रांकन का आधार ही जैन शैली है— वास्तविकता यह है कि तत्कालीन लोक जीवन की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति जैनचित्र शैली में ही देखने के मिलती है। क्योंकि इसके रचनाकार ठेठ हिन्दू जैन मतवलम्बी थें उनका सीधा सम्पर्क जैन परिवारों से या यों कहें सामाजिक मानवीय स्वरूपों से था यही कारण है कि इस शैली में चित्रित आकृतियों में जन–जीवन का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित होता है। इस लोक चित्रांकन में जो लोक जीवन की झांकी झलकती है। वह जैन शैली के धार्मिक सीमओं में बंधे रहने के कारण ही है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि——"जैन शैलीकी अकृतियों, रेखाओं और साज–सज्जा में लोक कला का

समर्थ रूप विद्यमान है। उसमें लोक सौन्दर्य एवं लोक संस्कृति के ऐसे तत्व छिपे हैं, जैसे सांची और भरहुत की कृतियों में हैं। इसलिए जैसा लोक कला का वास्तविक प्रतिनिधित्व जैन कला में समाहित है वैसा न तो बौद्ध कला में ही दिखायी देता है और न राजपूत कला में ही। इन जैन कलाकृतियों का प्रमुख आधार इनके धार्मिक ग्रन्थ जैसे 'आचारांग सूत्र' 'कल्पसूत्र' में वर्णितजैन तीर्थकरों की जीवनी, और कालकाचार्य की कथा रही है। ये कथाएं बड़े ही मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत हैं जो तत्कालीन जन—मानस एवं उनकी संस्कृति और विचारों की अभिव्यंजना करती हैं।

''चौबीस जैन तीर्थांकरों के दोनों पार्श्व में जो यक्ष—यक्षिणियों के युगल चित्रण हैं उनसे लोक जीवन के प्रति अनुराग ध्वनित होता है। लोककला के उदार दृष्टिकोण को प्रकट करने वाली मथुरा की यक्षिणियों का अर्धनग्न चित्र और करधनियों से अलंकृत प्रस्तर मूर्तियां इस शैली के उत्तम दृष्टान्त हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हीं तरह के नारी चित्रण भी हुए हैं।

कहना न होगा कि प्रतिमों के प्रगति के बाद ही चित्रकला का विकास हुआ है। बुद्ध गया, भरहुत सांची के नारी प्रतिमाओं की प्रेरणा से ही मध्यकालीन चित्रांकृतियों में इतने अधिक नारी रूपों का सृजन हो सका है।

इसी प्रकार लोक चित्रांकन में देवी आकृतियों का पर्याप्त अंकन हुआ हैं। लोक शैली में दुर्गा का लोक चित्रांकन का स्वरूप दर्शनीय है। इस चित्र में नीचे किसी राक्षस का चित्रण है जिस पर दुर्गा को अपना आयुद्ध लिए हुए चित्रित किया गया है।

कुछ भी हो भारतीय लोक चित्रांकन बड़ा ही समृद्धशाली है, कारण कि इनके निर्माण में जनमानस का हृदय और मस्तिष्क दोनों लगा होता है। जनमानस में कला की संरचना करने की पूर्ण अभिलाषा तो रहती ही है चाहे इसे आंशिक ही सफलता मिले। फिर भी हम इतना तो अवश्य ही कह सकते हैं कि उसमें सरलता के साथ ही साथ हृदय की पावन अभिव्यक्ति भी जुड़ी रहती है। भारत देश तो स्वत:कलामय है। यहां ऋषियों ने साहित्य और कला से शून्य मनुष्य को पशुवत माना है।

है। महायान सम्प्रदाय से प्रभावित जिन लघु चित्रों का स्वरूप हमें जैन और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में प्रज्ञापारमिता की पोथियों में देखने को मिलता है उन्हीं का विशाल रूप तिब्बत और नेपाल में बने बड़े—बड़े पट चित्रों में (कपड़े पर बने चित्रों में) दिखायी देता है। ''सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जो चित्र आंके गए पट चित्रों के समान वस्त्रों और कागजों पर चित्र रचना होती थी। उनकी भीतरी दीवारोंपर चित्रित कृतियों को देख कर ऐसा लगता है कि उस युग में भी वस्त्रों और कागजों पर लटकने वाले चित्र बनाये गये हैं। उनका भीतरी चित्रांकन भारत की कलात्मक प्रेरणाओं का ऋणी है।

भारतीय गुहा चित्रों से चीन की चित्रकला अत्याधिक प्रभावित हुयी थी कहना न होगा कि लगभग ६ठवीं व सातवीं शताब्दी में निर्मित अजन्ता के गुहा चित्रों के चीन की चित्रकला पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि ——''भारतीय गुफाचित्रों की कमनीयता से प्रभावित होकर चीन के उत्तर पश्चिम में स्थित कान्सू प्रान्त के पहाड़ को काट कर वहां ४६९ गुफायें बनवायीं गयीं। जिनकी भित्तियों पर अजन्ता, बाघ और एलोरा की महान् कलाकृतियों का रूपात्मक रूप अंकित किया गया है।

चीन की चित्रकला पर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव है इससे हम विमुख नहीं हो सकते क्योंकि अगणित ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जो बौद्धधर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके निर्माणक भले ही चीनी चित्रकार रहे हों जिन्होंने अपने चित्र रचना में वहां की शैली विशेष को अपनाया हो किन्तु उसमें मूल भावना, आकृतियों पर अभिव्यक्ति भाव एवं चित्र की आत्मा तो पूर्ण रूपेण भारतीय है ही।

चीन की चित्राकृतियों पर बौद्ध कला के प्रभाव को स्वीकार करते हुए डा० चाउसिआंग — कुआंग ने लिखा है कि ——'बौद्ध धर्म के चीन में आने के बाद हमारी चित्रकला को नूतन प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों को बौद्ध धर्म ने नये भाव दिये। हमारे मन्दिरों के भित्ति चित्रों

इस प्रकार भारतीय चित्रकला में अल्पना आलेखनों से लेकर भूमि, पात्र और पट चित्रों में अगणित मानवाकृतियों का स्वरूप उजागर होता है। भारतीय चित्र कला की आधारशिला यही लोक चित्रांकन है जिसमें सभी आकार युक्त कृतियों का समावेश होता है। खड़िया मिट्टी तथा उससे सम्बन्धित रंगों से युक्त विभिन्न रंगतों में नारियों के पर्याप्त चित्रांकन दर्शनीय हैं। लोक चित्रांकन के विषय में प्रोफेसर चिरंजीलाल झा का कथन ठीक ही है कि—— "भारतीय लोक चित्रकला लोक संस्कृति का चित्रपट है।" इसमें लोक मानस झांकता दृष्टिगत होता है। सभी उपलब्ध कलायें आत्मीयता और सरल भावना से ओत—प्रोत होती है। जन—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसके दर्शन होते हैं। इसमें लोक जीवन की पूर्ण झलक हैं।

भारतीय कला का आधार धर्म की व्यपकता ही है। उत्तर मध्यकालीन युग के पूर्व ही भारत देश में धार्मिक आन्दोलन की एक ऐसी लहर आयी जिसके फलस्वरूप हमारे देश का साहित्यिक मापदण्ड बदला, कला में भी हलचल पैदा हो गयी साथ ही धर्मप्राण जनता ने उस युग की चित्रकला को सर आंखों चढ़ाया। उस काल में बौद्ध धर्म अपने पराकाष्ठा के उस बिन्दु को लांघ चुका था जहां से अवनति का मार्ग अवशेष रह जाता है। बौद्ध धर्म का प्रचार सुदूरपूर्व देशों जैसे श्री लंका, नेपाल, तिब्बत, चीन, जावा सुमात्रा आदि सभी देशों में बड़े ही जोर शोर से हुआ। बौद्धधर्म में महायान शाखा से प्रभावित होने के कारण तन्त्र का प्रभाव बढ़ गया जिसके फलस्वरूप तान्त्रिक देवियों का अंकन होने लगा।

भारतवर्ष के उत्तर पूर्व में नेपाल और तिब्बत ऐसे स्थल हैं जहां बौद्ध धर्म की यह शाखा अधिक विकसित हुई और महायान शाखा से प्रभावित होकर अनेकानेक बौद्ध देवियों तथा देवताओं के चित्र एवं मूर्तियां बनने लगीं। नेपाल तथा तिब्बत में अनेक कृतियां आज भी सुरक्षित हैं जिन पर भारतीय शिल्प एवं चित्रों का प्रभाव

है। महायान सम्प्रदाय से प्रभावित जिन लघु चित्रों का स्वरूप हमें जैन और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में प्रज्ञापारमिता की पोथियों में देखने को मिलता है उन्हीं का विशाल रूप तिब्बत और नेपाल में बने बड़े—बड़े पट चित्रों में (कपड़े पर बने चित्रों में) दिखायी देता है। ''सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जो चित्र आंके गए पट चित्रों के समान वस्त्रों और कागजों पर चित्र रचना होती थी। उनकी भीतरी दीवारोंपर चित्रित कृतियों को देख कर ऐसा लगता है कि उस युग में भी वस्त्रों और कागजों पर लटकने वाले चित्र बनाये गये हैं। उनका भीतरी चित्रांकन भारत की कलात्मक प्रेरणाओं का ऋणी है।

भारतीय गुहा चित्रों से चीन की चित्रकला अत्याधिक प्रभावित हुयी थी कहना न होगा कि लगभग ६ठवीं व सातवीं शताब्दी में निर्मित अजन्ता के गुहा चित्रों के चीन की चित्रकला पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि ——''भारतीय गुफाचित्रों की कमनीयता से प्रभावित होकर चीन के उत्तर पश्चिम में स्थित कान्सू प्रान्त के पहाड़ को काट कर वहां ४६९ गुफायें बनवायीं गयीं। जिनकी भित्तियों पर अजन्ता, बाघ और एलोरा की महान् कलाकृतियों का रूपात्मक रूप अंकित किया गया है।

चीन की चित्रकला पर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव है इससे हम विमुख नहीं हो सकते क्योंकि अगणित ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जो बौद्धधर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके निर्माणक भले ही चीनी चित्रकार रहे हों जिन्होंने अपने चित्र रचना में वहां की शैली विशेष को अपनाया हो किन्तु उसमें मूल भावना, आकृतियों पर अभिव्यक्ति भाव एवं चित्र की आत्मा तो पूर्ण रूपेण भारतीय है ही।

चीन की चित्राकृतियों पर बौद्ध कला के प्रभाव को स्वीकार करते हुए डा० चाउसिआंग — कुआंग ने लिखा है कि ——''बौद्ध धर्म के चीन में आने के बाद हमारी चित्रकला को नूतन प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों को बौद्ध धर्म ने नये भाव दिये। हमारे मन्दिरों के भित्ति चित्रों

इस प्रकार भारतीय चित्रकला में अल्पना आलेखनों से लेकर भूमि, पात्र और पट चित्रों में अगणित मानवाकृतियों का स्वरूप उजागर होता है। भारतीय चित्र कला की आधारशिला यही लोक चित्रांकन है जिसमें सभी आकार युक्त कृतियों का समावेश होता है। खड़िया मिट्टी तथा उससे सम्बन्धित रंगों से युक्त विभिन्न रंगतों में नारियों के पर्याप्त चित्रांकन दर्शनीय हैं। लोक चित्रांकन के विषय में प्रोफेसर चिरंजीलाल झा का कथन ठीक ही है कि—— "भारतीय लोक चित्रकला लोक संस्कृति का चित्रपट है।" इसमें लोक मानस झांकता दृष्टिगत होता है। सभी उपलब्ध कलायें आत्मीयता और सरल भावना से ओत—प्रोत होती है। जन—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसके दर्शन होते हैं। इसमें लोक जीवन की पूर्ण झलक हैं।

भारतीय कला का आधार धर्म की व्यपकता ही है। उत्तर मध्यकालीन युग के पूर्व ही भारत देश में धार्मिक आन्दोलन की एक ऐसी लहर आयी जिसके फलस्वरूप हमारे देश का साहित्यिक मापदण्ड बदला, कला में भी हलचल पैदा हो गयी साथ ही धर्मप्राण जनता ने उस युग की चित्रकला को सर आंखों चढ़ाया। उस काल में बौद्ध धर्म अपने पराकाष्ठा के उस बिन्दु को लांघ चुका था जहां से अवनति का मार्ग अवशेष रह जाता है। बौद्ध धर्म का प्रचार सुदूरपूर्व देशों जैसे श्री लंका, नेपाल, तिब्बत, चीन, जावा सुमात्रा आदि सभी देशों में बड़े ही जोर शोर से हुआ। बौद्धधर्म में महायान शाखा से प्रभावित होने के कारण तन्त्र का प्रभाव बढ़ गया जिसके फलस्वरूप तान्त्रिक देवियों का अंकन होने लगा।

भारतवर्ष के उत्तर पूर्व में नेपाल और तिब्बत ऐसे स्थल हैं जहां बौद्ध धर्म की यह शाखा अधिक विकसित हुई और महायान शाखा से प्रभावित होकर अनेकानेक बौद्ध देवियों तथा देवताओं के चित्र एवं मूर्तियां बनने लगीं। नेपाल तथा तिब्बत में अनेक कृतियां आज भी सुरक्षित हैं जिन पर भारतीय शिल्प एवं चित्रों का प्रभाव

है। महायान सम्प्रदाय से प्रभावित जिन लघु चित्रों का स्वरूप हमें जैन और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में प्रज्ञापारमिता की पोथियों में देखने को मिलता है उन्हीं का विशाल रूप तिब्बत और नेपाल में बने बड़े—बड़े पट चित्रों में (कपड़े पर बने चित्रों में) दिखायी देता है। ''सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में जो चित्र आंके गए पट चित्रों के समान वस्त्रों और कागजों पर चित्र रचना होती थी। उनकी भीतरी दीवारोंपर चित्रित कृतियों को देख कर ऐसा लगता है कि उस युग में भी वस्त्रों और कागजों पर लटकने वाले चित्र बनाये गये हैं। उनका भीतरी चित्रांकन भारत की कलात्मक प्रेरणाओं का ऋणी है।

भारतीय गुहा चित्रों से चीन की चित्रकला अत्याधिक प्रभावित हुयी थी कहना न होगा कि लगभग ६ठवीं व सातवीं शताब्दी में निर्मित अजन्ता के गुहा चित्रों के चीन की चित्रकला पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि ——''भारतीय गुफाचित्रों की कमनीयता से प्रभावित होकर चीन के उत्तर पश्चिम में स्थित कान्सू प्रान्त के पहाड़ को काट कर वहां ४६९ गुफायें बनवायीं गयीं। जिनकी भित्तियों पर अजन्ता, बाघ और एलोरा की महान् कलाकृतियों का रूपात्मक रूप अंकित किया गया है।

चीन की चित्रकला पर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव है इससे हम विमुख नहीं हो सकते क्योंकि अगणित ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जो बौद्धधर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके निर्माणक भले ही चीनी चित्रकार रहे हों जिन्होंने अपने चित्र रचना में वहां की शैली विशेष को अपनाया हो किन्तु उसमें मूल भावना, आकृतियों पर अभिव्यक्ति भाव एवं चित्र की आत्मा तो पूर्ण रूपेण भारतीय है ही।

चीन की चित्राकृतियों पर बौद्ध कला के प्रभाव को स्वीकार करते हुए डा० चाउसिआंग — कुआंग ने लिखा है कि ——'बौद्ध धर्म के चीन में आने के बाद हमारी चित्रकला को नूतन प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों को बौद्ध धर्म ने नये भाव दिये। हमारे मन्दिरों के भित्ति चित्रों

तथा बौद्ध चित्रों पर अजन्ता चित्रों का प्रभाव हो सकता है।

उत्तर मध्यकालीन भारतीय चित्र कला का प्रभाव तो बौद्ध देवी चित्रों में स्पष्ट ही दृष्टिगत होने लगता है। भारत में तांत्रिक देवियों के चित्र बौद्ध धर्म के महायानी सम्प्रदाय की देन है इसी प्रभाव से प्रभावित चित्रों की रचना चीन की चित्रकला में दर्शनीय है। कहना न होगा कि चीन में बड़े—बड़े रेशमी वस्त्रों पर (स्क्रोल के रूप में) इन देवियों के चित्र बने जिनसें जादू—टोने को प्रश्रय मिला बाद में इन चित्रों के कोनों में कुछ लिख भी दिया जाता था जो सुलिपि का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

शची रानी गुर्टू का कहना है कि—— ''होनान के नानसिंह थङ्ग गुफा मंदिरों में जो भित्ति चित्रकारी मिली है वह भारतीय दक्षिणी कला की विशेषताओं को दर्शाती है।

चीन की चित्रकला में उड़ते हुये बादलों के बीच जो देवी रूपा नारियों के चित्र हैं भारतीय गुहा चित्रों एवं मध्यकालीन भारतीय चित्र कला में चित्रित अनेक बौद्ध देवियों के चित्रों के अधिक निकट जान पड़ते हैं।

इस तरह नेपाल और तिब्बत में चित्रित बौद्ध देवी तारा,मजुश्री की अनेक चित्राकृतियां उपलब्ध हैं जो भारतीय चित्रकला की देन हैं। वाचस्पति गैरोला का कथन है कि—— ''शिरोवस्त्र आदि में पर्याप्त साम्य है। तिब्बतीय चित्रों और वहां की गुफाओं के भित्ति चित्रों में प्राप्त होने वाली लम्बी दाढ़ी व कलम सर्वथा भारतीय अनुकृति मानी जाती है।'' तिब्बत में धार्मिक कृतियों में समुन्नत चित्र सूती एवं रेशमी कपड़ों पर बने वे चित्र हैं जिन्हें विशेष अवसरों पर मन्दिरों में लटकाया जाता है जो पर्दों पर बने हैं। उनमें झुण्ड में नारियां चित्रित हैं। मध्य में बौद्ध देवीतारा का चित्रण है ये सभी संयोजन एवं अंकन शैली भारतीय चित्रकला से प्रभावित है। मानवाकृतियों के चित्रण में तिब्बतीय चित्रकार बड़े निपुण थे इनकी कृतियों के सुन्दर नमूने काठमांडू के नेपाल संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन कृतियों में लामाओं तथा उनके परिवार के चित्र हैं।

तिब्बत के द्वारा ही भारतीय चित्रकला का प्रवेश नेपाल में हुआ। चूंकि तिब्बत का चीन के साथ घनिष्ठ संस्कृतिक आदान–प्रदान हो चुका था इसलिए तिब्बत के द्वारा कला की जो विरासत नेपाल को गयी उसमें चीनी प्रभाव स्पष्ट है। नेपाल ने अपने चित्रकारों को तिब्बत और चीन भी भेजा। वहां उन्होंने भारतीय, चीनी और तिब्बतीय शैली के अनेक चित्रों की रचना की और अनेक शिष्य तैयार किये । यह आदान–प्रदान चूंकि १२वीं से १४वीं शती तक बना रहा जिससे स्वाभाविक ही था कि इन चित्र शैलियों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता। इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलत: बौद्धकला ने एशिया के विस्तृत भूभाग तक में कला चेतना को शताब्दियों तक प्रभावित किया।

उत्तर मध्यकालीन चित्राकृतियों में विशेषकर मध्यकाल के बाद के युग में जो नारियों का चित्रण देखने को मिलता है उसका प्रभाव इन समीप के देशों पर अवश्य ही पड़ा है किन्तु यह प्रभाव अधिकतर धर्म से सम्बन्धित चित्रों में ही लक्षित होता है जनमानस के साधारण चित्रों में नहीं।

जहां तक दैनिक जीवन से सम्बन्धित चित्रों का प्रश्न है भारतीय चित्रकला में चित्रित दैनिक जीवन के चित्र, चीनी दैनिक जीवन के चित्रों से साम्य रखते हैं। सूक्ष्मता अंकन में चीनी चित्रकार विशेष निपुण हैं। भारतीय जनमानस में नारी के चित्रांकन का विशिष्ट रूप चित्राकृतियों में दिखायी पड़ता है पर आदर्शमय न तो चीन की चित्रकला में, न तिब्बत, न नेपाल की ही कला में दृष्टिगत होता है। मध्यकालीन चित्राकृतियों में भारतीय नारी का प्रत्येक रूप झलकता है। इस तरह का सौन्दर्य चित्रण अन्य सुदूर पूर्व देशों की कला में देखने को नहीं मिलता।

नेपाल की चित्रकला पर भारतीय चित्रकला का, विशेषकर उत्तर मध्यकालीन चित्रकला के विशेष शैली अपभ्रंश का प्रभाव भी स्पष्ट ही दिखायी देता है। बंगाल में पाल शैली जब विनष्ट प्राय हो गयी उस समय अपभ्रंश का प्रभाव बढने लगा और बहुत दिनों तक

पाल शैली नेपाल में जीवित रही। नेपाल में भी इसी अपभ्रंश शैली में अनेक पट चित्रों का निर्माण हुआ। ये बड़े ही लम्बे—लम्बे आकार में बनते थे। इसका आकार दस—बारह फुट तक होता था। बुद्ध धर्म से प्रेरित इन चित्रों में भी नारी चित्रण देखने को मिलता है। श्री रायकृष्णदास जी का कहना है कि—— ''तिब्बत में इस शैली का प्रभाव बहुत बाद तक बना रहा है। यद्यपि वह बहुत ही सूक्ष्म है। हां, ब्रह्म देश के पगान में कुछ चित्रों में पाल शैली का पूर्ण प्रभाव दीखता है।

कलाभवन वाराणसी के सौजन्य से नेपाल की एक ऐसी कृति देखने को मिली है जिस पर स्पष्ट ही बौद्ध धर्म या भारतीय कला का प्रभाव व्याप्त है। इस चित्र का सृजन लगभग अठारहवीं शताब्दीं में हुआ है। जिसमें गरुणासीन विष्णु और लक्ष्मी का चित्रण मोहक है। विषय तो भारतीय है ही उनकी सर्जना शैली पर भारतीय चित्रकला का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इस चित्र पर राजस्थानी प्रभाव है। पृष्ठभूमि लाल, और नीले रंगों में रचित है। इन कृतियों में नारियों के चित्र भी हैं जो एक चश्म हैं और सुन्दर अभिव्यक्ति हैं।

इसी संग्रहालय में बुद्ध का १८वीं शती का एक चित्र संरक्षित है। यह कृति तिब्बत में चित्रित किया गया है, जिसमें पृष्ठभूमि में जन—जीवन का चित्रण है। इस समूह चित्रण में बुद्ध जीवन से सम्बन्धित चित्र है। यदा कदा नारी आकृतियां भी हैं। पर सभी तिब्बती आकृति के हैं। पर मुखार बिन्दुओं पर स्पष्ट ही भारतीय प्रभाव है। इसके पृष्ठभूमि में उड़ती हुई आकृतियां अजन्ता के उड़ते हुये गन्धर्व तथा नारियों में यक्षिणी आकृतियों से पूर्ण साम्य रखते हैं। अलंकरणों से युक्त चित्रण,दर्शनीय हैं। साथ ही जातक कथाओं का सुन्दर चित्रांकन भी इसमें है। लगता है मानों चित्र पूर्णतया विश्वसम्पुजन करना चाहता हो। इस प्रकार भारतीय चित्रकला के प्रभाव से प्रभावित चीन तिब्बत और नेपाल आदि देशों के चित्र बड़े पैमाने पर बने जिसमें अधिकतर चित्र बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। इन चित्रों में बुद्ध भगवान के दोनों ओर यक्षिणी नारियों

की तरह नारी चित्रण देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय चित्रकला का प्रभाव श्रीलंका के चित्रों में भी दिखायी देता है। लंका में स्थित सिगरिया गुहा के नारी चित्रण अजन्ता और बाघ गुहा के चित्रों से अधिकाधिक साम्य रखते हैं। भारतीय चित्र कला का सौन्दर्यमय रूप विशेष कर नारी आकृतियों में स्पष्ट लक्षित होती है। नारियों की हस्त मुद्रायें, शारीरिक भंगिमा,निर्माण शैली सभी कुछ भारतीय कला से प्रभावित लगता है। वहां के गुफा चित्रों का सम्बन्ध भी बौद्ध जीवन से है। इसके बारे में शची रानी गुर्टू ने कहा है कि---''सिगरिया में राजा कश्यप के महलों में अंकित भित्ति चित्र अजन्ता के भित्ति चित्रों से प्रेरित हैं। बौद्ध धर्म ने अपनी भाषा,साहित्य एवं कला--कौशल की ऐसी स्थायी छाप यहां छोड़ी है जिससे भारत और लंका का सांस्कृतिक एकता के सूत्र को कभी विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

मध्यकालीन शैलियों में उस कलाविशेष के जीवन का प्रतिविम्ब दिखता है। भारतीय चित्रकला के इतिहास में इस युग की चित्र विधा पूर्णत: जीवित रही,हां उनके परिवेश में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए। विशालकाय चित्रों के स्थान पर छोटे--छोटे चित्राकृतियां मानवीय हृदय की भावना को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं।





उपसंहार

मध्यकालीन भारतीय चित्रकला का इतिहास चित्रकला में ह्रास का रूप उजागर करता है क्योंकि उस युगमें सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूर्णतया उथल–पुथल व्याप्त था। कोई भी कला शान्तिमय पर्यावरण में ही प्रस्फुटित एवं विकसित होती है। इस कारण भारतीय चित्रकला जो अतीत युग से क्रमशः विकसित होती हुयी गुप्त राजाओं के युग तक अपनी चरमोन्नति पर पहुंच चुकी थी। इस युग के आते आते ह्रास की ओर उन्मुख हो चुकी थी और मध्यकाल के पूर्वार्ध में चित्रकला बहुत सीमित होकर अपने अपभ्रंशित रूप में दृष्टिगत होने लगी थी।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला के सही काल निर्धारण करने में इतिहासकारों तथा चित्रविदों के विचारों में साम्य नहीं है। हमने कला शैलियों के विकास के आधार पर उत्तर मध्यकालीन कला का समय १००० ई० से १८०० ई० तक माना है क्योंकि यही वह युग था जब मध्यकालीन चित्रशैलियों का अंकुरण होकर अन्तिम चरण १८वीं शती तक में अपने यौवन को प्राप्त कर सकी। विभिन्न चित्र विधाओं का जन्म हुआ और अन्त भी। जिनके प्रभाव से कला पर विदेशी चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा और अन्ततः भारतीय कला, भारतीय संस्कृति की भांति नाना शैलियों को आत्मसात करती हुई अपना अस्तित्व ही नहीं बनाए रक्खी बल्कि ऐसे असंख्य कृतियों को जन्म दिया जिनसे भारत ही नहीं विदेशों के भी अनेक चित्र वीथिकाएं सज्जित की गई।

कला की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट व्यक्त किया गया है कि नारी की उसमें क्या भूमिका थी और नारी का क्या महत्व था। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी नाना–विधि कला की विस्तृत चर्चा एवं व्याख्या की गई है। कला को आत्मानन्द की अनुभूति कराने वाली शक्ति का प्रतिरूप कहा गया है। यही नहीं नारी को सृष्टि की आधारशिला ही माना गया है। नारी अपने विभिन्न रूपों में तथा विभिन्न नामोंसे अभिहित की गयी है। नाना संज्ञा से पुकारे जाने

वाली भारतीय नारी के पीछे उसके कर्म की शक्ति छिपी हुयी है। मात्र शारीरिक सौन्दर्यता ही नारी को आदरयुक्त स्थान दिलाने में सक्षम नहीं है बल्कि नारी शारीरिक सौन्दर्यता के साथ ही साथ अपने विलक्षण गुणों के कारण ही पूज्य बनी हुई है। भारतीय वांगमय ऐसे दृष्टान्तों से भरे हैं।

नारी के विशिष्ट महत्व के कारण ही उसे आदि शक्ति का प्रतिरूप माना गया है तभी तो देवी के रूप में पूजित है और देवी भागवत जैसे ग्रन्थ की रचना में नारी का आदर्शमय एवं पवित्र शक्तिमय रूप का चित्रण किया गया है।

चित्रकला में नारी को आज ही नहीं आदिकालीन सभ्यता से ही स्थान दिया गया है। क्या धर्मशास्त्र, क्या नीति एवं लालित्य युक्त ललित साहित्य, काव्य सभी में नारी का पावन—पवित्र सौन्दर्य झलकता है। यही नहीं भारतीय चित्रकलामें नारीके चौंसठ प्रतिरूपों का कलामय स्वरूप प्रकट करने का प्रयत्न भारतीय चित्रविदों की देन है।

नारी सुन्दरता की खान है। रीतिकालीन कवियों की लेखनी ने नारी के जाने कितने सौन्दर्यमय रूप की अभिव्यंजना अपने काव्यों में कर डाला है। महाकवि कालिदास के काव्यों में नारी सौन्दर्य भरा पड़ा है जिसमें उसका रूपात्मक एवं गुणात्मक दोनों सौन्दर्य है।

भारत की प्रागैतिहासिक कालीन चित्रकला भी नारी के चित्रांकन से अछूता नहीं रहा। जब मानव को चित्रकला का कोई ज्ञान नहीं था तब भी उसने टेढ़े—मेढ़े रेखाओं में इस सृष्टि की सर्जना शक्ति नारी को अपना प्रेरक बिन्दु माना है। कहीं योगिनी दायी तो कहीं सप्त—मात्रिका के रूप में, कहीं देवी का प्रतिरूप मानकर तो कहीं शक्तिरूपा मानकर उसका चित्रण अवश्य ही किया गया है।

सैन्धव युग में चित्रांकन मात्र दैनिक उपयोग में आने वाले पात्रों पर ही दृष्टिगोचर होता है। पुरातात्विक अन्वेषणों के फलस्वरूप

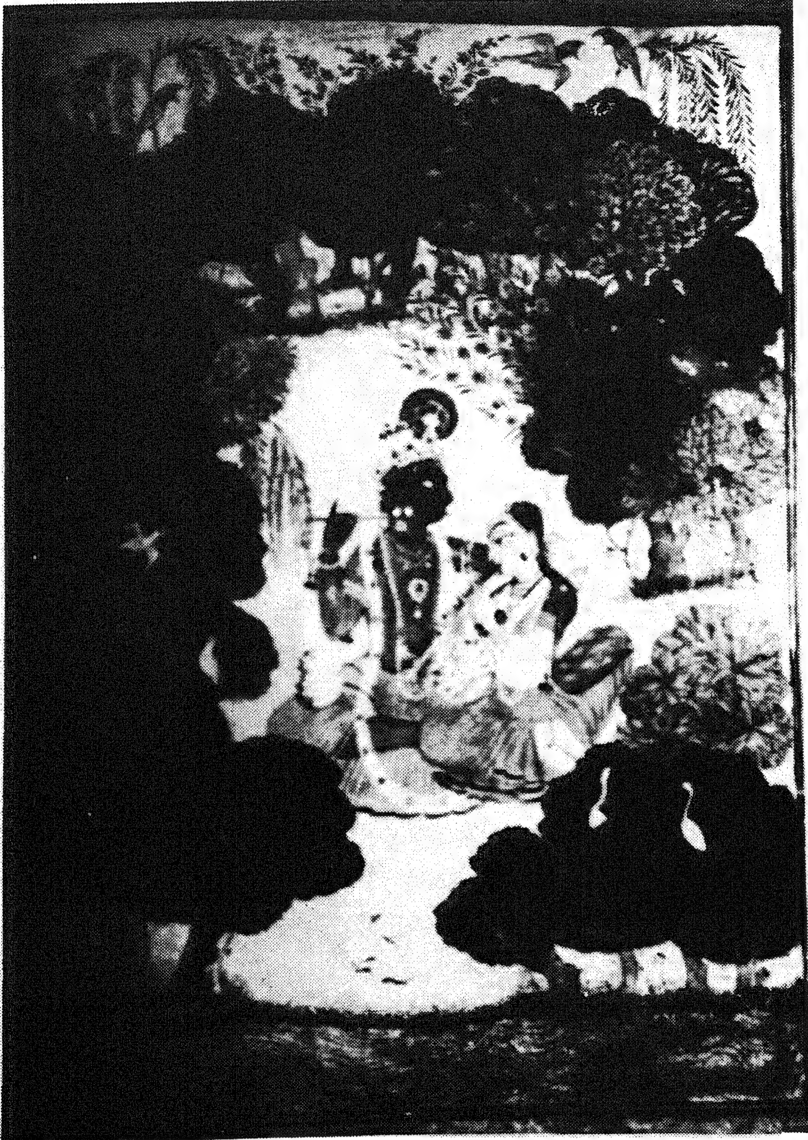
विभिन्न उपादानों में भी कहीं न कहीं नारी अंकन की झलक मिल ही जाती है।

प्रागैतिहासिक युग से लेकर सैन्धवकालीन चित्राकृतियों में किसी न किसी रूप में नारी की रचना अवश्य ही हुयी है। निश्चिय ही मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के प्राप्त टीकरों और पात्र खण्डों पर चित्रित मानवाकृतियों में मातृत्व सत्तात्मक हैं। हां चित्रों में नारी अंकन का अभाव अवश्य है किन्तु मृण टीकरों में असंख्य नारी अंकन इस बात के प्रमाण हैं कि आदि युग में नारी की सत्ता महत्वपूर्ण एवं सम्मानप्रद थीं। चित्रांकन हेतु कागज का ज्ञान न होने के कारण भी चित्राकृतियों का उतना सृजन नहीं हुआ जितना पाषाण खण्डों पर चित्रित है।

कलाओं की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी तो नारी की ही प्रतिरूप हैं फिर चित्रकला में नारी शक्ति का अभाव कैसे सम्भव होता। प्राचीन युग से ही मानव अपने जीवन को चित्र एवं अलंकरणों से सज्जित करता आ रहा है विभिन्न धार्मिक, ऐतिहासिक एवं अनैतिहासिक ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं तभी तो मनुष्य ने अजन्ता, बाघ, एलोरा, ऐलिफेन्टा, बादामी सितनवासल आदि गुहा चित्रों में नारी के श्रृंगार, त्याग, ममता व शक्ति रूपों को चित्रांकित करता रहा है। सभी धर्म, चाहे वह बौद्ध धर्म हो या जैनधर्म, ब्राह्मण सभी में चित्रोंकी संरचना हुयी है।

समय के प्रवाह के साथ ही साथ चित्रकला के इतिहास में भी उत्थान और पतनका युग आया। अजन्ता में स्वतन्त्र विचरने वाली नारी को, मांसल सौन्दर्य यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप आवरण में ढकता चला गया और भारतीय चित्रकला भी क्षीण होती हुयी पुस्तकों में लघु चित्रों के रूप में सिमटती चली गयीं ऐसे परिवेश में भी नारी चित्रांकन पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ। शैलीगत विशेषताओं के साथ लघु नारी चित्रों की परम्परा में भी नारी के विभिन्न रूप चित्रित होते रहें।

एलोरा गुहा के भित्तियों पर उरेहे गए मूल चित्रों को प्रकाश



कुँज में कृष्ण राधा (पहाड़ी शैली)

में लाने का यत्न आवश्यक है क्योंकि वे प्लास्तरों और धूयें की पर्तों में विलीन होती जा रही हैं। यदि हम इसमें सफल हुए तो सम्भव है कि भारतीय मध्ययुगीन चित्रकला में कोई नया पृष्ठ जुड़ जाय। प्राचीन युग की चित्रकला में विशेषकर मानवाकृतियों में नारी की मोहक भंगिमायें अपनी चरमाभिव्यक्ति को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं।

भारतीय इतिहास में सल्तनत काल ही ऐसा युग है जिसमें चित्रकला में जीवांकन था, अतः मानवाकृतियों का सृजन नहीं हुआ। उनकी कट्टर धार्मिक नीति ने ऐसा करने को बाध्य कर दिया किन्तु नवीं शताब्दी में भारतवर्ष का पूर्वाचंल इस व्यथा से मुक्त चित्र सृजना में दत्तचितता से संलग्न था। बौद्ध धर्म के महायान शाखा से प्रभावित बौद्ध देवियों के चित्रांकन नारी के चित्रण के स्वरूप में हैं। यही चित्रविधा जिसे पाल शैली कहा गया है नेपाल और तिब्बत तक में विकसित हो गयी जिसमें अनेक चित्रों की रचना हुयी। पाल शैली में नाना बौद्ध देवियों, नारीयों का चित्रांकन दृष्टिगोचर होता है जो महायान शाखा की देन स्वरूप हैं। इन कृतियों में चित्र अपभ्रंश के अधिक समीप होते हुए भी कुछ ईरानी प्रभाव के कारण कमनीयता, कोमलता एवं माधुर्य से युक्त हैं।

भारतीय चित्रकला के जैन चित्र विधा में नाना पुस्तक चित्रों का अंकन हुआ जो नारी चित्राकृतियों से पूर्ण हैं। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थ चित्र रूप में अंकित किए गए। सल्तनत काल में ही अपभ्रंश शैली के चित्रों पर ईरानी प्रभाव से प्रभावित चित्र—कला में राग—रागिनियों, नायक—नायिकाओं का चित्रण हुआ जिसमें नारी के शारीरिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा लक्षित होती है। इस शैली में नारी का समुन्नत सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। ईरानी प्रभाव से युक्त नव शैली का पूर्ण विकास हुआ और इस नव शैली में भगवान कृष्ण के सुन्दर रूपों के साथ ही साथ नारी के सुन्दर रूप की अभिव्यंजना भी होने लगीं। धीरे—धीरे धार्मिक बन्धनों की सीमा टूटती गयी और नारी के स्वतन्त्र चित्रण होने लगे।

प्राचीन चित्र विधा अपभ्रंश पर ईरानी प्रभाव के कारण राजस्थानी शैली का बोलबाला हो गया। चित्रों में इने—गिने रंगों के स्थान पर विविधता दृष्टिगोचर होने लगीं नारी के नख—शिख सौन्दर्य की अभिव्यंजना भी चित्रांकनों में परिलक्षित होने लगा। आज भी वे चित्र जिसमें नारी का मोहक रूप आंका गया है अपने युग की श्रेष्ठ साधना को अभिव्यक्त करती हैं, जहां राजस्थानी चित्र विधा में नारी के नख शिख सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, वहीं प्राकृतिक दृश्यों के भी मोहक चित्रांकन किए गए हैं। इस शैली के चित्रों में, रागमाला के चित्रों में नारी सौन्दर्य को श्रेष्ठता की चरम सीमा पर पहुंचा दिया है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में जहां ईरानी प्रभाव के कारण राजस्थानी चित्र विधा प्रस्फुटित हुयी मुगल शासकों की कला प्रियताने मुगल शैली को संरक्षण देकर चित्रकला का कलश बहुमूल्य कृतियों से भर दिया। क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, दोनों ही धर्म के अनेकानेक ग्रन्थ, चित्रों में आंके जाने लगे जिसका अवलोकन कर आज भी हमें नारी रूपों में मुगलकालीन दक्ष चित्रकारिता के दर्शन होते हैं। इस चित्र विधा में नारी के मनोहारी रूप का चित्रांकन सुन्दरता के साथ ही साथ अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए विख्यात हैं। प्रणय के दृश्यों में नारी, युद्ध के दृश्यों में नारी, पोलों खेलते नारी, तथा राजमहलों में नृत्य करते नारी, आदि के अंकन ऐसे चित्र हैं जो मुगल कलाकी श्रेष्ठता के परिचायक हैं।

भारत की धरती पर मुगल शासकों ने जिस कला शैली के बहुमूल्य कृतियों का सृजन किया वह आज भी बेजोड़ हैं। कहना न होगा कि इसका सारा श्रेय महान मुगल सम्राट अकबर को दिया जाता है जिसने भारतीय चित्रकला को एक स्वस्थ वातावण एवं आदरयुक्त संरक्षण दिया। मुगल चित्र शैली में चित्रित हरम के चित्रों में नारी का सुन्दरतम रूप चित्रण दर्शनीय है जिससे मुगलवंशीय शासकों की कलाप्रियता एवं चित्रकारों की पारंगतता का प्रमाण मिल जाता हैं।

राजमहल की महिलाओं के चित्र, 'दीप लिए हुये नायिका' के चित्र आदि इस शैली के भावपूर्ण विख्यात ऐसे चित्र हैं जिसमें नारी का सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। मुगल चित्र विधा जहांगीर की संरक्षता में भी अपना योग दिया था। नारी चित्रण तो मुगल शैली की निधि ही है। 'भारतीय सुन्दरी' का चित्र इस चित्रविधा का श्रेष्ठ उदाहरण है। समय के गति के साथ ही यह चित्र शैली मुगलवंश के शासक औरंजेब के काल से विलुप्त होने लगी। औरंगजेब के राज्यकाल में मुगल शैली का जो पतन प्रारम्भ हुआ तो फिर उसका अन्त ही होता गया। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीति ने कला का रूप ही विकृत कर दिया। चित्रकारों को कोई प्रोत्साहन देने वला नहीं रह गया बल्कि उन्हें प्रतारणा मिलने लगी ऐसी स्थिति में मुगल दरबारी चित्रकारों ने देशी रियासतों के यहां शरण ले ली। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के पहाड़ियों में उनके स्थानों पर चित्रकला के केन्द्र बन गये। स्थान विशेष में अंकुरित इस चित्रकला को विभिन्न स्थनीय नामों से अभिहित किया गया और विशेष कर उन देशी कला विदों की थाती इस चित्रविधा को पहाड़ी शैली की संज्ञा से सम्बोधित किया गया।

पहाड़ी चित्र शैली, जिसमें विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त, लोक जीवन पर आधारित चित्रांकनों में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है, ये चित्र जनमानस के अधिक समीप लगते हैं। पहाड़ी चित्र शैली में छः प्रमुख रागों और उनसे सम्बन्धित छत्तीस रागिनियों के, चित्रोंमें व्याख्यात्म रूप से चित्रित किया गया। इन राग रागिनियों का चित्रण नारी के सूक्ष्म मनोभावों को प्रदर्शित करने के उद्‌देश्य से ही चित्रित किये गये। पहाड़ी चित्रकारों ने हृदयगत भावनाओंऔर अनुभवों के आधार पर नायक नायिकाओं के विविध मनोदशाओं तथा नारी जीवन के उल्लासमय भावनाओं को चित्रित किया है। इन चित्रों में नारी सौन्दर्य तो है ही साथ ही वे नारी चित्राकृतियां चित्रकला के सभी गुणों से पूरित हैं।

भारत का दक्षिणी भूभाग भी ईरानी प्रभाव से प्रभावित था।



भारतीय सुन्दरी (मुगल शैली)

यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि उत्तर मध्य युग में सर्वप्रथम दक्षिण में ही विदेशी कला का प्रभाव पड़ा। वहां भी ऐसे अनेक चित्राकृतियों का अंकन हुआ है जिसमें नारी चित्रण सुन्दरतम है। वस्त्रों के पहनावे, चोलियों के बन्धन, तथा साड़ी और लहंगे का विशेष ढंग का अंकन इस शैली को अन्य चित्र शैलियों से पृथक कर उसके अस्तित्व को उजागर करता है। हांलाकि मुगलों के प्रभाव से यहां की कला भी प्रभावित हो गयी। दक्षिणी शैली में देशी पद्धति पर रागमाला चित्रों का अगणित चित्रांकन हुआ जिनमें भारतीयता की वही छाप है जो राजस्थानी चित्रविधा की विभिन्न शाखाओं के अन्तर्गत दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतीय चित्रकला के सर्वेक्षणोंपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अनेक चित्र विधाओं से लेकर लोक चित्रणों तक में जिसका रूप सरल हृदय की अभिव्यंजना को अभिव्यक्त करता है। इनमें नारी रूपों का चित्रण अवश्य ही दृष्टिगत होता है। लोक कलाओं की पोषिका नारी स्वयं अपने ही प्रतिरूप को कोहबर, माण्डन, भूमिपटों, तथा पात्र चित्रणों पर चित्रित करती है। लोक कला में जितना नारी सक्रिय दिखलायी देती है अन्य में नहीं। सम्भव है कि वह अपने गृहलक्ष्मी की सार्थकता प्रकट करने हेतु ऐसा करती हो। चूंकि लोक कला सरल हृदय की अभिव्यंजना है इसलिए इसमें नारी के सरल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी दर्शनीय है। हिन्दू धर्म में मांगलिक कार्यों का बाहुल्य है इस मांगलिक कार्यों में नारी का सक्रिय रूप हमारे समक्ष आता है।

उत्तर मध्यकालीन चित्रकला भारत में ही अपना सौन्दर्य नहीं बिखेरती है अपितु इसका प्रभाव सुदूर पूर्व देशों पर पड़ा ही नहीं बल्कि उन चित्रों में प्राण बन यही भारतीय नारी ही सप्राण रही है। चीन, तिब्बत, नेपाल आदि देशों में बुद्ध जीवन सम्बन्धी चित्राकृतियों के अवलोकन से भारतीय चित्रशैली का प्रभाव अपनी ओर अवश्य ही आकृष्ट कर लेता है। यही नहीं तिब्बत, चीन तथा नेपाल में बुद्ध धर्म के महायान शाखा से प्रभावित तन्त्र देवियों आदि

के नारी चित्रों से साम्यरखते हुए अगणित चित्र मिले हैं जो भारतीय चित्रकला के इतिहास में उत्तर मध्यकालीन चित्र विधाओं के व्यापकता के प्रमाण हैं।

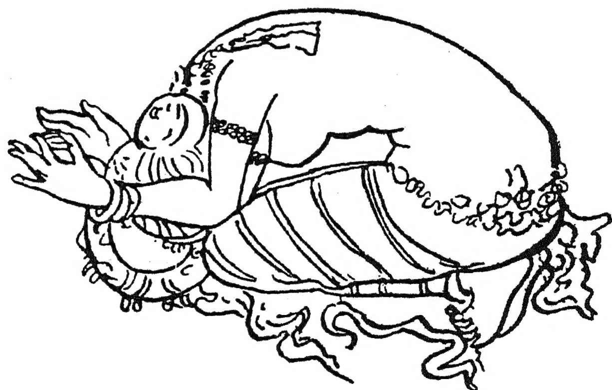
मध्यकालीन चित्रकला का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस्लाम और हिन्दूधर्म का संघर्ष चाहे सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में भले ही रहा हो कला के क्षेत्र में विनाशकारी नहीं रहा। भारतीय चित्रकला ने इस विदेशी प्रभाव को आत्मसात कर लिया। मुस्लिम शासकों के संरक्षण में भारतीय देवी—देवताओं का चित्रण इस बात का स्वस्थ प्रमाण है। यही नहीं डा० आर्शीवादी लाल ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' में तो यहां तक कहा है कि 'कुछ उच्च वंशीय मुसलमान परिवारों ने तो हिन्दुओं की सती और जौहर की प्रथाएं भी अपना लीं।

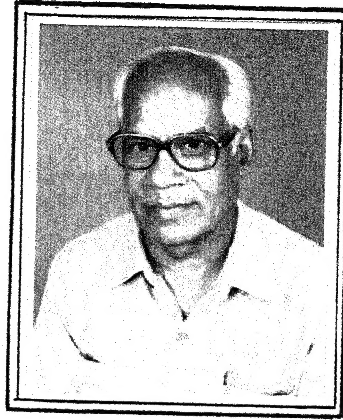
आज मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में जिन विभिन्न शैलियों का रूप दृष्टिगत होता है तथा जो चित्रकला का समुन्नत रूप दिखलाई पड़ता है। सम्भवत: इन्हीं दो हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय के कारण ही हुआ है। अत: भारतीय चित्रकला पर विदेशी प्रभाव एक समन्वयवादी दृष्टिकोण से परिलक्षित होता है।

उत्तर मध्यकालीन भारत का ऐतिहासिक पक्ष चाहे जो भी, जैसा भी रहा हो उसके नीचे उसका सृजनात्मक पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा है। इस युग को इतिहासकार भले ही अन्ध--कारमय युग की संज्ञा दें किन्तु कला की विवेचना करने वाला कभी भी इस तथ्य को नहीं ठुकरा सकता कि विदेशी शक्तियों के आगमन से भारतीय चित्रकला को बहुत सी सृजनात्मक प्रेरणायें मिली, जिसने देश की कला परम्पराओं को पुर्नजीवन दिया और बिना किसी रोक टोक के उन विजेताओं के शरण में चित्रकला नित्य विकास की ओर बढ़ती रही। उन विदेशी संस्कृतियों के स्वरूप को प्राप्त करने लगीं। चित्रकारों ने अजन्ता के, लघु चित्र पुन: अपनी विशालता को प्राप्त करने लगे। चित्रकारों ने अजन्ता

के, बाघ और एलोरा आदि के गुहा चित्रों के समान विस्तृत भित्तियों पर तो चित्रांकन नहीं किया किन्तु पुस्तक चित्रों से ऊपर उठकर पट चित्रों में या वर्णनात्मक चित्रों में बड़े—बड़े चित्रों का सृजन अवश्य किया। विदेशी कला के प्रेरणा का ही परिणाम निकला कि भारतीय चित्रकला में राजस्थानी शैली, पहाड़ी, एवं अन्य दशीय रियासतों में जैसे मालवा, बूंदी, वसोहली, कांगड़ा, आदि अनेक स्थानों पर अपने इसी नाम से कुछ भिन्नता के साथ चित्रों का सृजन होने लगा। और हमारे देश में लगभग सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र कला सृजन के केन्द्र बन गये।

अत: हम उत्तर मध्यकालीन चित्रकला के इतिहास को तो आधारशिला ही मान सकते हैं और कला आदि के सम्पर्क को एक भाग्यशाली संयोग कह सकते हैं जिसके परिणाम स्वरूप विलुप्त होती भारतीय चित्रकला को नया वातावरण मिला और स्वस्थ प्रेरणास्रोत भी, जिसके कारण भारतवर्ष की चित्रकला का जो निखरा रूप १८वीं से १९वीं शती तक में संसार के समक्ष उजागर हुआ, जिसकी बहुमूल्य कृतियां भारत देश की निधि बनी हुयी हैं, कहना न होगा कि ये उत्तर मध्यकालीन चित्रकला की ही देन हैं। उसी ने हमारी प्राचीन कला परम्पाओं को पुर्नजीवित और पुर्नगठित किया और साथ ही हमे नवीन, क्षमता और नवीन दृष्टिकोंण दिया। मध्य-काल के इस महान योगदान पर किसी भी तरह का आवरण नहीं डाला जा सकता। ❑





डॉ0 दिनेशचन्द्र गुप्त

जीवन परिचय

जन्म	:1 जुलाई, 1939.
जन्म स्थान	:जापलीनगंज, बलिया, (उ०प्र०) ।
शिक्षा	:एम०ए० (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, चित्रकला) पी-एच०डी०, ए०एम०टी०, डी०आर०एस० (लखनऊ) ।
सम्प्रति	:भूतपूर्व उपप्राचार्य, सेवा समिति विद्यामन्दिर इण्टर कालेज, इलाहाबाद ।
रचनायें	:भारत के क्रांन्तिवीर, पाल्की की पद्मिनी, भारतीय चित्रकला में नारी अंकन ।
बाल साहित्य	:बलिदान के पाँच फूल, मां की सीख, सुनहली-मछली, बेटी हिन्दुस्तान की, रोग और निदान (स्वास्थ्य ज्ञान) ।
पत्र-पत्रिकायें	:साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, संस्कृति (भारत सरकार) आज-कल (भारत सरकार) युगधर्म, नन्दन, भारत, दैनिक जागरण, आर्यावर्त, सन्मार्ग आदि पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों रचनायें प्रकाशित ।
सम्मान	:राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित ।

-सम्पर्क सूत्र

दूरभाष : 603688

355-A/1, सावित्री पार्क, मधवापुर, इलाहाबाद-211 003 (उ०प्र०)